ISSN 2277-5587

Shodh Shree

(Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

शोध श्री

Year-4 Volume -4 October-December 2014 RNI No. RAJHIN/2011/40531

SHODH SHREE
ज्ञानम् भारः क्रियाम् विना
RNI RAJHIN/2011/40531
ISSN 2277-5587

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com

Shodh Shree Volume- 4 October-December 2014

Shodh Shree

(International Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government P.G. Girls College,
Ajmer

Dr. Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof.H.S.Sharma (Retd.)
University Of Rajasthan, **Jaipur**

Prof.T.K.Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P.Saraswat
Dean of Commerce
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Rajesh Choudhary
Assistant Director (Research)
Indian Council of Historical Research, **NewDelhi**

Dr. Pankaj Gupta
Government P.G. College, **Kotputli**

Advisory Board

Prof. S.P.Vyas
Jainarayan Vyas University, **Jodhpur**

Prof. S.N.Tailor (Retd.)
S.D.Government P.G.College, **Beawar**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.)
National Archives of India, **NewDelhi**

Shodh Shree

(International Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

Contents

Year-4 Volume -4 October-December 2014 RNI No. RAJHIN/2011/40531

1. भारत की राजनीति में नेतृत्व, नैतिकता एवं भ्रष्टाचार-एक विश्लेषण 1-6
डॉ. प्रवेश कुमार पाण्डेय जबलपुर (मध्यप्रदेश)

2. प्राचीन भारतीय मुद्रा की उत्पत्ति, विकास एवं महत्व 7-10
रीता शर्मा, आगरा (उत्तर प्रदेश)

3. राजस्थान का बहुआयामी चारण साहित्य : एक विवेचन 11-16
रणजीत सिंह पवाँर, जयपुर

4. ग्वालियर जिले के प्रमुख ऐतिहासिक स्थल 17-20
डॉ. शुक्ला ओझा, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

5. आतंकवाद और जनमत 21-22
डॉ.अलका भार्गव, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

6. कार्य के परिवर्तित आयाम : सामाजिक ऐतिहासिक विवेचन 23-25
डॉ. दिनेश गुप्ता, बीकानेर

7. भारतीय विकास की धुरी ग्रामीण विकास 26-29
डॉ. (श्रीमती) वसुधा अग्रवाल, ग्वालियर(मध्य प्रदेश)

8. ग्वालियर संभाग में पर्यटन उद्योग की आधारभूत संरचना 30-32
डॉ. प्रवीण ओझा, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

9. संगीत शास्त्र एवं लोक जीवन 33-35
डॉ. कौशल किशोर गोठवाल, बून्दी

10. भगवद्गीता में वैश्विक दृष्टि 36-38
डॉ. अवधेश कुमार शर्मा, चिमनपुरा

11. मानव जीवन में पर्यावरण का महत्त्व 39-43
डॉ. संगीता कुमारी, आगरा (उत्तर प्रदेश)

12. सामाजिक प्रबन्धन के परिप्रेक्ष्य में धर्मशास्त्रीय वर्ण व्यवस्था 44-45
पूजा गौतम, आगरा (उत्तर प्रदेश)

13. ढूँढाड़ क्षेत्र में साहित्य एवं कला का ऐतिहासिक विकास 46-49
राकेश देवी, झुंझुनूं

14. प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के अध्यापकों में नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता का तुलनात्मक अध्ययन 50-54
गौरव सिंह, जयपुर

15. आधुनिकता के दौर में शान्ति शिक्षा 55-58
पूनम शर्मा, अजमेर

16. व्यावसायिक प्रशिक्षणार्थियों में महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता का अध्ययन 59-63
विपिन कुमार, अचरोल, जयपुर

17. एडुसेट : नई राह – नई दिशा — 64-66
मीना, जयपुर

18. **Devadasi System And Social Legislation In Tamilnadu** — 67-71
Dr. R. Velmurugan, Lawspet, Puducherry

19. **Personal financial literacy among Women - A boon to freedom** — 72-75
Dr Minakshi Kumawat, Pune, (Maharastra)

20. **Relevance of the NAM and Indian policy** — 76-79
Dr. Shahnaz Khan, Jaipur

21. **Empowering Women: Planning and Policy in India** — 80-84
Santosh Kumar, Hazaribag (Jharkhand)

22. **The Arab Spring and India-West Asia Relations** — 85-91
Dr. Akila Azad, Kota

23. **FDI in Retailing Sector: A Model of Inclusive Growth for India** — 92-95
Tara Ram, Suratgarh ; Dr. Rajani Vashishtha, Sri Ganganagar

24. **A Study of Attitude of B.Ed Students Towards Information And Communication Technology** — 96-99
Dr. Parsanjeet Kumar, Greater Noida (U.P) ; Ms. Geeta Chaudhary, Chittorgarh

25. **Cost Controlling Through Management Information System in Cement Industry of India: An Exploration** — 100-106
Mohd. Sahid, Jodhpur

26. **Consumer Protection: Problems and Prospects** — 107-111
Dr. Shalini Chaturvedi, Jaipur

27. **Gender difference in teacher effectiveness of trained graduate teachers** — 112-115
Dr. Ajay Kumar Attri, Summerhill (Himachal Pradesh)

भारत की राजनीति में नेतृत्व, नैतिकता एवं भ्रष्टाचार-एक विश्लेषण

डॉ. प्रवेश कुमार पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्यप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

व्यवस्था (पद्धति) वाली अवधारणा आधुनिक अवधारणा है। जिसे सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त से लिया गया है। सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त का सर्वप्रथम प्रतिपादन जीवशास्त्री बेरफील्ड ने 1920 में प्रतिपादित किया था। व्यवस्था से एक ऐसे कुलक (सट) का बोध होता है, जो संगठित है या जिसको एक ऐसा संगठन माना जा सकता है जिसमें इसके विभिन्न भाग आपस में संबंधित हैं।

समग्र रुप से एक संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था बनती है। इसी संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का ही एक उपपद्धति राजनीति व्यवस्था है। वैसे ही जैसे आर्थिक उप व्यवस्था, सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक उप व्यवस्थायें, डेविड ईस्टन, आमंड, मिचेल तथा अन्य राजनीतिक विचारकों ने राजनीतिक व्यवस्था को सामाजिक व्यवस्था का अभिन्न अंग मानते हुए तथा उसे संपूर्ण समाज तथा अन्य सामाजिक उप व्यवस्थाओं से प्रभावित मानते हुए संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में विशिष्ट और सभी सामाजिक व्यवस्थाओं पर अभिव्याप्त माना है। यह राजनीतिक उप पद्धति मनुष्य के विशेष संबंध एवं अंतक्रियाओं में राजनीतिक संबंधित एवं अंत:क्रियाओं की विभिन्न इकाईयों का समुच्चय है।

ज्यादातर परिभाषाओं में एक समानता है, कि वे राजनीतिक व्यवस्था को इस रुप में देखते हैं जो समाज में वैधानिक बाधाकारी भौतिक शक्ति का उपयोग करती है। डेविड ईस्टन का मत है कि, ''पद्धति विश्लेषण का प्रयोग करने के बाद राजनीतिक जीवन के चित्र का प्रत्येक भाग एक दूसरे से संबंधित प्रतीत होने लगता है, या अगर दूसरे शब्दों में कहा जाये तो कहना होगा कि राजनीतिक जीवन के इसी पहलू को समझना मुश्किल है, जब तक उसे संपूर्ण ज्ञान नहीं हो जाये जिसका वह भाग है'', इसलिये ईस्टन का कहना है कि राजनीतिक जिन्दगी को हम देखते हैं, एक व्यवहारों की व्यवस्था के रुप में जो पर्यावरण से घिरी रहती है, जिसके प्रभाव से राजनीतिक व्यवस्था स्वयं प्रगट हो जाती है, तथा उसके प्रभाव से प्रतिक्रिया करती है।

राजनीतिक व्यवस्था की पारिस्थितिकीय होती है तथा वो अन्य व्यवस्थाओं की पारिस्थितिकीय से प्रभावित होती है। रिग्स ने लोक प्रशासन की पारिस्थितिकीय पर विचार करते हुए कहा है कि ''सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, शिल्प विद्या, आदि लोक प्रशासन के संचालन को प्रभावित करते हैं तथा उसके बदले में लोक प्रशासन के संचालन को प्रभावित करते हैं, ये प्रारुप लोक प्रशासन के पारिस्थितिकीय से संबंधित है।'' राजनीतिक व्यवस्था के निर्गतन (कानून) के रुप में प्रगट होने वाले राजनीतिक नीतियों एवं निर्णयों से उसका पर्यावरण परिवर्तित हो जाता है। जो भविष्य में स्वयं राजनीतिक पद्धति की क्रियाओं को दूसरे ढंग से प्रभावित करता है। इस प्रक्रिया को पुर्ननिवेशन प्रक्रिया (फीड बैक प्रोसेस) कहा जाता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से राजनीतिक पद्धति पहले से प्रारंभिक मांगों एवं समर्थनों रुपी निवेशन से प्रभावित होकर राजनीतिक निर्णय रुपी निर्गतन का कार्य करती है, किंतु इन निर्णयों से वह अपने पर्यावरण को प्रभावित कर भविष्य में उठने वाली मांगों एवं निर्गत राजनीतिक व्यवस्था भी पारिस्थितिकीय का निर्माण करते हैं।

राजनीतिक पद्धति के औपचारिक एवं अनौपचारिक तत्व होते हैं। औपचारिक तत्वों में व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका एवं अन्य सरकारी संगठन या संस्थायें आती हैं। इसे हम राजनीतिक व्यवस्था की उप पद्धति कहते हैं। राजनीतिक दल निर्वाचक, दबाव गुट इसके अनौपचारिक तत्व या उप पद्धतियाँ हैं। नेतृत्व इन्हीं औपचारिक उप पद्धतियों का महत्वपूर्ण भाग है, अर्थात् नेतृत्व की संरचनाओं के माध्यम से विभिन्न प्रकार्य या भूमिकायें होती हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य यह विश्लेषित करना है, कि राजनीतिक व्यवस्था की पारिस्थितिकीय, नेतृत्व के लिए किन किन परिस्थितियों का निर्माण करती है, जिसमें उसकी नैतिकता या जीवन मूल्य प्रभावित होते हैं, और नेतृत्व सद से असद या शुभ से अशुभ की ओर अग्रसर होता है। सिर्फ राजनीतिक व्यवस्था की परिस्थितिकीय को विश्लेषण का केन्द्र बिन्दु बनाया गया है।

नेतृत्व से हमारा अभिप्राय व्यक्तियों को प्रोत्साहित या निर्देशित करने वाली योग्यता से है, जो व्यक्तिगत गुणों पर आधारित है, न कि पद पर। नेतृत्व एक महत्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित पद है, जो दूसरों के व्यवहार को नियंत्रित करने, मार्ग दिखाने अथवा व्यवहार का आदर्श निश्चित करने की योग्यता द्वारा अर्जित किया जाता है। अत: नेतृत्व वह मानवीय तत्व है, जो राजनीतिक व्यवस्था में समूह को सुसंगठित कर देता है, और उसे लक्ष्य की ओर अभिप्रेरित करता है। उसमें अभिप्रेरित करने की क्षमता बहुत कुछ उसके जीवन मूल्यों पर आधारित होती है, जिसके आधार पर उसका चरित्र बनता है। जीवन मूल्य निर्धारित करने में नैतिकता की प्रमुख भूमिका होती है, क्योंकि हर एक मनुष्य अपनी जिन्दगी निर्वहन करने में जो निर्णय लेता है, उसमें सोचना है कि क्या उचित है और क्या अनुचित है। इसी संदर्भ में नैतिकता उसके निर्णय में अपनी भूमिका अदा करती है। इसीलिए मैकेंजी ने नीति शास्त्र को सत या शुभ के रुप में परिभाषित किया है। ''सामाजिक संस्था के रुप में नैतिकता का अपने सदस्यों में स्वयं बौद्धिक निर्देशन एवं निर्धारण करने के रुप में समझा जा सकता है।'' व्यक्ति एवं छोटे समूह को निर्देशित करने के लिए समाज का एक साधन है।

स्पष्टत: यदि नेतृत्व सद या शुभ के अनुसार आचरण नहीं करता तो उसका आचरण बिगड़ा हुआ आचरण माना जायेगा, जिसे हम भ्रष्टाचार के शाब्दिक अर्थों में मान सकते हैं। आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार भ्रष्टाचार को आचरण की शुद्धता की कमी के रुप में बतलाया गया है। संचानम समिति के अनुसार सार्वजनिक पद अथवा जन जीवन में उपलब्धता एक विशेष स्थिति के साथ संलग्न शक्ति तथा प्रभाव का अनुचित या स्वार्थपूर्ण प्रयोग करना भ्रष्टाचार की श्रेणी में आता है। चिंतन का पहलू यह है कि राजनीतिक व्यवस्था की परिस्थितिकीय में वे कौन से तत्व हैं जो नेतृत्व को इस बिगड़े हुये आचरण की ओर धकेलते हैं या उसको सत या शुभ आचरण से विचलित करते हैं।

भ्रष्ट आचरण में वे सारे नियम एवं कानून आ जायेंगे जो समय समय पर बनाये गये हैं, जैसे-भ्रष्टाचार निरोधक 1988 का अधिनियम निर्वाचन के संबंध में भ्रष्टाचार के संबंध बनाये गये नियम। इंडियन पेनल कोड में दिए गए भ्रष्टाचार से संबंधित कानूनी नेतृत्व के इस भ्रष्ट आचरण के संदर्भ में चिंतन का इसलिये भी अधिक महत्व हो जाता है, क्योंकि वो समाज को अभिप्रेरित करने वाला तत्व होता है, जिसका अनुगमन समाज के लोग करते हैं। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के संविधान में कुछ ऐसी अवधारणाओं को आदर्श रुप में स्वीकार किया गया है, जिसके माध्यम से भ्रम की स्थिति उदित हुई है, साथ ही उनके क्रियान्वयन से ऐसी परिस्थितिकीय उदित हुई जिनके माध्यम से नेतृत्व अभ्रष्टाचार मार्ग प्रशस्त हुआ। इनमें से समाजवाद एवं धर्मनिरपेक्षता दो प्रमुख रुप से हैं।

समाजवाद शब्द 42 वें संवैधानिक संशोधन की प्रस्तावना में जोड़ा गया है। 1959 तथा 1964 के कांग्रेस के प्रस्तावों से यह निश्चय हो गया था कि कांग्रेस की नीति लोकतांत्रिक समाजवाद का उद्देश्य एक जाति विहीन, वर्ग विहीन समाज की स्थापना करना था। इसके बावजूद भी समाजवाद की अवधारणा अस्पष्ट ही रही क्योंकि समाजवाद एक ऐसा शब्द है जैसा कि माईन पोलिटिकल थ्यौरी में जोड़ का कहना है कि समाजवाद एक ऐसी हैट की तरह है जिसका आकार बिगड़ चुका है, क्योंकि हर कोई इसे पहनता है। अत: भारत के बदलते नेतृत्व के साथ इसका रुप भी बदलता रहा। इसे प्राप्त करने के लिये पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से प्रयास किए गए ताकि गरीबी हटे, कमजोर वर्गो को समाज के अन्य वर्गो से जोड़ा जा सके। करोड़ों रुपयों की योजनायें निरंतर बन रही हैं, किंतु जैसा कि राजीव गाँधी ने स्वयं स्वीकार किया था कि एक रुपये में मात्र पन्द्रह पैसे नींव तक पहुंच पाता है बाकी पच्चीस प्रतिशत पैसा नेताओं, बिचौलियों और अधिकारियों के बीच में ही रह जाता है।

पिछले कई दशकों तक हर एक राजनीतिक दल में यह होड़ लगी है कि कौन कितना चुनावी लुभावना घोषणा पत्र समाजवाद के अनुरुप जनता के सामने रख सके। समाजवाद के साथ ही साथ मिश्रित अर्थव्यवस्था के माध्यम से पूंजीवाद से आर्थिक लक्ष्य एवं सामाजिक लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास किया गया।

वर्तमान में समाजवाद की लीक से हटकर निजीकरण की ओर प्रयास किए जा रहे हैं, और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आकर्षित किया जा रहा है जिसकी ओट में भ्रष्टाचार को फलने-फूलने का अवसर मिल रहा है। उदाहरण महाराष्ट्र में कांग्रेस शासन में एनरॉन समझौता की आलोचना भारतीय जनता पार्टी एवं शिवसेना ने भ्रष्टाचार के रुप में जोर शोर से की तथा स्वयं सत्ता में आने पर नया एनरॉन समझौता करके वही काम किया जिसकी आलोचना उसने पूर्व के शासन से की थी जबकि एनरॉन समझौता को रद्द करना ही भारतीय जनता पार्टी एवं शिवसेना का प्रमुख चुनावी मुद्दा था।

धर्म निरपेक्षता भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का एक आदर्श रखा गया है। ये एक ऐसी अवधारणा है, जो वर्तमान समय तक स्पष्ट नहीं हो पाई है। परिणाम स्वरुप विभिन्न राजनीतिक दलों ने अपने अपने अनुसार इसकी व्याख्या की, चुनावी घोषणा पत्रों में अपने अनुकूल रखकर मतदाताओं को आकर्षित किया तथा व्यवहार में भी कार्य करे जो उनकी स्वयं की व्याख्या के अनुसार लगते हैं। भारतीय जनता पार्टी हिन्दुत्व धर्म निरपेक्षता के रुप में देखती है और अन्य दल इसे

धर्म सापेक्षता मानते हैं। ये सारी भ्रांतियां मतदाताओं में भ्रांतियां फैलाती है तथा बाबरी मस्जिद ढहाना या राम मंदिर का निर्माण करने की नीति को वोट बैंक की नीति की ओर ढकेल देती हैं, पर व्यवहार में हम पाते हैं धर्म निरपेक्षता में जो लिखा गया है उसमें विपरीत विभिन्न प्रकार के कानून हिन्दू एवं मुसलमानों के लिये लागू किये गये हैं, जबकि संविधान में एक समान सिविल संहिता अनुच्छेद 44 में स्पष्ट रुप से है जिसके लिये न्यायालय बार बार कह रहा है। धर्म का तुरुप की रुप में चलाना, निर्वाचन की रणनीतियों के रुप में तथा अल्पसंख्यक को बहुमत के दम पर संतुष्टिकरण की राज्य की नीति को स्पष्ट करता है। इस अवधारणा को अन्य अवधारणा के समान ब्रिटिष व्यवहार से हमने लिया ब्रिटेन का शासन जो भारत में या उसने तटस्थता वाला मॉडल धर्म निरपेक्षता को अपनाया था। संविधान निर्माता ने इसे धर्म एवं अल्पसंख्यक के रुप में सोचा तथा वे असफल रहे इसे आधुनिक धर्मनिरपेक्ष राज्य के तत्व के रुप में समझने में।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की नई संवैधानिक धाराएँ तथा समय-समय पर बनने वाले कानूनों ने ऐसी परिस्थितिकीय को जन्म दिया जिसमें नेतृत्व को स्थितियाँ मिल गई कि वो भ्रष्टाचार कर सके। उदाहरणार्थ अनुसूची 356 में जिसमें ये प्रावधान है कि किसी इकाई का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चल रहा है, तो राष्ट्रपति उस राज्य की सरकार के सभी या कोई कृत्य और राज्यपाल में या विधान मंडल के किसी निर्णय या प्राधिकारी में निहित या उसके द्वारा प्रयोकृत्व सभी या कोई शक्तियां अपने हाथ में ले सकेगा। इस अनुच्छेद का सर्वप्रथम केरल में साम्यवादी सरकार को गिराने में उपयोग किया गया, उसके पश्चात राज्यों में जैसे उ.प्र., म.प्र., राजस्थान, प. बंगाल आदि राज्यों में दिया गया है तथा अभी भी निरंतर जारी है। अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग के परिणामस्वरुप सरकारें बनती बिगड़ती हैं और उसमें विधायकों की खरीद फरोख्त का मौका मिलता है।

1996 में उत्तर प्रदेश में चुनाव हुए, वहां राज्यपाल के अनुसार कोई भी दल बहुमत में नहीं है अत: वहां, राज्यपाल की रिपोर्ट को आधार मानकर राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। वहां विभिन्न दल विधायकों के खरीद फरोख्त में लगे हुए हैं इसी भय से बहुजन पार्टी नेताओं ने कई महीनों तक अपने विधायकों को घर में बंद रखा। इसी प्रकार संविधान का 52 वां 1985 का संवैधानिक संशोधन प्रावधान करता है, कि जहां सदन का कोई सदस्य यह दावा करता है, कि वह और उसके विधान दल के कोई अन्य सदस्य ऐसे गुट का प्रतिनिधित्व करने वाला समूह गठित करते हैं, जो उसके मूल राजनीतिक दल के विभाजन के परिणामस्वरुप उत्पन्न हुआ है और ऐसे समूह में ऐसे विधान दल के कम से कम एक तिहाई सदस्य हैं, इसमें दल परिवर्तन की निर्हरताएं लागू नहीं मानी जाती हैं। उदाहरणार्थ नरसिंहराव सरकार ने अपनी अल्प मत सरकार को बहुमत में बदलने में अजीतसिंह तथा उसके समर्थकों को कांग्रेस में शामिल किया। अजीतसिंह को मंत्री पद दिया गया।

अनुच्छेद 75 का (4) मंत्रियों को पदग्रहण करने से पहले गोपनीयता की शपथ लेने से संबंधित है। इस गोपनीयता के कानूनी प्रावधान के आधार पर बार बार सांसदों एवं विधायकों के मांग करने पर भी कई तथ्यों को प्रगट नहीं किया जाता है। इस तरह कानून पारदर्शिता के लिए व्यवधान उत्पन्न कर रहा है, जिसकी आड़ में नेतृत्व को मौका मिल जाता है, कि वो इस प्रकार से भ्रष्ट कार्य को प्रगट न करें, और इसका परिणाम है वे भीतर ही भीतर बड़ा रुप धारण करते जा रहे हैं। जैसे बोफोर्स कांड, हर्षद मेहता कांड आदि।

संविधान में अल्पसंख्यक एवं अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़ा वर्ग के आरक्षण के प्रावधान किए गए हैं। अनुसूचित तथा 30 प्रतिशत अल्पसंख्यकों के हितों को संरक्षण दिलाया है। अनुच्छेद 340 के अंतर्गत अनुसूचित जाति, जनजाति को आरक्षण दिये गये हैं। 8 सितम्बर 1993 को केन्द्र की नरसिंहराव सरकार के उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के आधार पर पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की घोषणा की। ये सारे आरक्षण एवं अल्पसंख्यक के कानून संविधान की धारा 14, 15, 16 आदि के विरुद्ध तो हैं ही किन्तु वोट बैंक की राजनीति का सशक्त माध्यम भी हो गये हैं। 11 वीं लोकसभा के चुनाव के पूर्व रामविलास पासवान ने घोषणा की थी "अगर हमारी पार्टी सत्ता में आयेगी तो हम 24 घन्टे के भीतर आपकी मांग मान लेंगे। यहां मांग थी ईसाई धर्म में दलितों को अनुसूचित जाति का दर्जा देने की।"

व्यवहार में सभी पार्टियां (उपरोक्त नीति का) समर्थन करती रहेंगी क्योंकि उन्हें इस प्रकार में चुनावी लाभ मिलते है। संविधान में प्रावधान है, कि जो दल बहुमत में आयेगा वो सरकार बनायेगा। इस प्रावधान का कारण राजनीतिक दलों को बाध्यता हो जाती है, कि बहुमत प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करें, जिसके लिये अनैतिक साधनो अर्थात पद प्रलोभन, मुद्रायें, आश्वासन आदि का उपयोग करना पड़ता है, वर्तमान में उत्तरप्रदेश की स्थिति इसका जीता जागता प्रमाण है।

1989 में केन्द्र सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में अल्प बेरोजगार एवं बेरोजगारी दूर करने के लिये जवाहर योजना की घोषणा की थी। इसमें प्रारंभिक वर्षों में पैसा सीधे पंचायतों से ही देने का प्रावधान था, बिना समुचित नियंत्रण के प्रावधान के। ऐसी ही की गई नीतियां है जैसे हर एक पंचायत में टी.वी. रहेगा, फोन रहेगा, किन्तु कई पंचायत में पंचायत भवन नहीं है तो ये सरपंच के घर में लगे हुए है। प्रश्न ये है, कि क्या ऐसी स्थिति को भ्रष्टाचार माना जावे या नहीं ? व्यवस्थापिका की भूमिका दल ही स्थिति पर निर्भर रहने सदस्यों का अपने लाभ के लिये पद ग्रहण करने आदि के कारण अपनी वास्तविक भूमिका-भ्रष्ट आचरण को रोकने में असमर्थ है।

कार्यपालिका सत्ता की धुरी है जो वर्तमान में ही नहीं कई सालों से अपनी शक्ति का दुरुपयोग इस प्रकार के लाभों के लिए लेती आ रही है। जिसमें साथ हवाला कांड ही नहीं अपितु कई घोटाले जुडे हुए है। 1970 से 1990 तक दो दशकों के भीतर विधायिका न्यायपालिका पर हावी है कि वह कोई निर्णय लेने में अपने को पंगु महसूस करती थी। इन दो दशकों तक न्यायपालिका की जो राजनीतिकरण हुआ उस पर एक लम्बी बहस की जा सकती है। वर्तमान में न्यायपालिका की जो सक्रिय भूमिका दिखाई दे रही है, उसके पीछे भी कारण है जब

सरकार इतनी स्थिर एवं कमजोर हो कि कठिनाई उपस्थित होने पर अथवा किसी संघर्ष की स्थिति में किसी वर्ग विशेष को नाराज करने वाला निर्णय न ले सकती है अथवा सत्ता खोने का डर हो तो अपनी जिम्मेदारियां न्याय पालिका पर डाल दे।

भ्रष्टाचार को रोकने के लिए 1963 में संस्थान समिति की रिपोर्ट में आधार पर केन्द्रीय जांच ब्यूरों का बनाया गया। ये सीधे प्रधानमंत्री को रिपोर्ट देता है, लेकिन इधर कुछ मामलों में प्रधानमंत्री के अनावश्यक हस्तक्षेप को देखते हुए, उच्चतम न्यायालय ने इसे रिपार्ट देने को कहा है, विभिन्न घोटालों में कोर्ट ने मामलों की कमजोर करने का आरोप लगाया। जिस पर निर्देशक जोगिंदर सिंह को अदालत से माफी मांगनी पड़ी। भ्रष्टाचार पर रोक लगाने वाले महत्वपूर्ण पद केन्द्र में लोकपाल के प्रावधान का है। 1969 वाली 1977,1985,1989 में विधेयक रखे गए पर पारित नहीं हो सकें। ये बात को स्पष्ट करता है, कि नेतृत्व भ्रष्टाचार की दूर करने में दिखाया तो करता है पर दृढ़ इच्छा शक्ति का अभाव है।

राज्यों में भ्रष्टाचार एवं भाई भतीजावाद से निपटने के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन की अनुशंसाओं के आधार पर अनेक राज्यों ने लोकायुक्त अधिनियम स्वीकार किये। सर्वप्रथम महाराष्ट्र सरकार ने पास किया। म.प्र.में 1981 के अधिनियम द्वारा बनाया गया। राज्य के लोकायुक्त अधिनियमों का एक रोचक पहलू यह है कि लोकायुक्त व्यवस्था के अंतर्गत मामले नहीं लाये जाते। कुछ राज्यों ने लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार में मुख्यमंत्री सहित सभी मंत्रियों के विरुद्ध आरोपों की जांच का उपबंध किया है। वहां अनेक राज्यों ने मुख्यमंत्री सहित उसके सहयोगी मंत्री मंडल के सदस्यों का इसके क्षेत्राधिकार से बाहर रखा है। आंध्रप्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तरप्रदेश के लोकायुक्त को अधिनियम के तहत मुख्यमंत्री की जांच के क्षेत्राधिकार से मुक्त रखा है, जबकि हिमाचल प्रदेश, केरल, उड़ीसा राज्यों ने लोकायुक्त का अपने राज्य के मुख्य मंत्रियों के विरुद्ध शिकायत की जांच करने का अधिकार प्रदान किया है।

निर्वाचन का संचालन करने वाला निर्वाचन आयोग की प्रकृति काफी विवादास्पद है जिसके कारण अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। आयोग में मुख्य आयुक्त एवं आयुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा किये जाने के परिणाम स्वरुप ये पदाधिकारियों का सत्ता रुढ़ पार्टी के प्रति झुकाव होने की संभावना बनी रहती है और ऐसा हुआ भी है इनकी सरकार अपनी इच्छा से हटा भी सकती है। उदाहरण 1984 में जनता दल द्वारा दो निर्वाचन आयुक्त की नियुक्तियां की गई, 1990 में कांग्रेस सरकार द्वारा इन पदों को समाप्त कर दिया गया। राव की सरकार ने निष्पक्ष निर्भीक आयुक्त की स्थिति को कमजोर करने के उद्देश्य में दो चुनाव आयुक्त की नियुक्ति कर दी।

इसके साथ ही साथ निर्वाचन आयोग द्वारा जो धनराशि चुनाव के लिये निश्चित की गई है, वो निश्चित मापदंडों को लेकर नहीं निर्धारित की गई है, उदाहरणार्थ पंजाब संसदीय क्षेत्र में प्रत्याशी साढे चार लाख खर्च कर सकते है पर चंडीगढ़ में केवल एक लाख नब्बे हजार कलकत्ता, मुंबई के प्रत्याशी साढे चार लाख तक खर्च कर सकते है, दिल्ली के प्रत्याशी को मात्र चार लाख पन्द्रह हजार तक खर्च करने का अधिकार है जबकि जनसंख्या बढ़ रही है मतदाता बढ़ रहे है, मंहगाई बढ़ रही हैं। संसद एवं विधान सभाओं के क्षेत्रों को देखते हुए तथा मतदाताओं की बढ़ती संख्या को देखते हयु वर्तमान में जो खर्च सीमा लगाई गई है, वो बेतुकी लगती है।

दल के सदस्य अपनी सीट खाली कर देते है। मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री या अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों के लिए ताकि बाद में उस पद का फायदा उठाया जा सके अपने लाभ के लिये। प्रत्येक पांच वर्ष बाद चुनाव का प्रावधान हैं। मतदाताओं को मत देना ही है चाहे दल भ्रष्ट हो। जैसा कि वर्तमान समय में भारत का नागरिक महसूस कर रहा है कि किसी भी पार्टी के सदस्य को मत दो सभी अपना पेट भरेंगे। भ्रष्टाचार के लिये जो दंड नियम बनाये गये है, वो ऐसा आभास देते है कि भ्रष्टाचार बहुत बड़ा गलत काम नहीं अपितु साधारण सा चोरी का अपराध जैसा है।

1991 में निर्वाचन आयोग ने चुनाव संहिता जारी की थी जिसे 1994 में कानूनी मान्यता दी गयी। यह संहिता मात्र नीति निर्देशक सिद्धांतों के समान है, जिसे कानूनी ढंग से लागू नहीं किया जा सकता है। उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर ये कहा जा सकता है कि औपचारिक तत्व अपनी स्थिति कार्य एवं शक्तियों का व्यव्हारिक रुप जो धारण करते जा रहे हैं, उससे नेतृत्व पर अंकुश के अभाव का वातावरण निर्मित हो जाता है जो भ्रष्टाचार को रोकने के लिए जगह बना देता है। राजनैतिक व्यवस्था के अनौपचारिक तत्व में राजनैतिक दल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों को जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 में संशोधन पर भाग 4(क) में प्रतिष्ठित किया गया है। जिसमें अनिवार्य किया गया है कि जो इस अधिनियिमों का लाभ उठाना चाहता है, इसको अपने आपको निर्वाचन आयोग के यहां पंजीकृत करना होगा। इस कानून के अलावा किसी अन्य कानून में राजनीतिक दलों का पंजीयन आवश्यक नहीं।

दलों के आंतरिक चुनाव पर वर्तमान में अंकुश लगाया गया है किन्तु इसके पहले नहीं था जो आलोकतांत्रिक तो दल को बनाता है साथ ही नेताओं का लेन-देन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा देती है। दलों में दल की अपेक्षा व्यक्तियों को महत्व देने की प्रवृत्ति के कारण भी भ्रष्टाचार का प्रोत्साहन मिला, क्योंकि उस व्यक्ति पद के सहारे समर्थन से उसे गलत कामों से बचाने में मदद मिलने की उम्मीद बन जाती है। राजनीतिक व्यवस्था में संरचनाओं की भूमिकायें निवेश एवं निर्गत के रुप में होती है भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में नेतृत्व इस भूमिका का निर्वाह करते हुए उन परिस्थतिकीय का निर्माण करता है या फैलाव करता है, जो भ्रष्टाचार को प्रोत्साहित करती है, क्योंकि वो स्वयं तो भ्रष्ट आचरण करती ही रही है उसका अनुमान करने अन्य लोग भी भ्रष्ट आचरण करने लगते हैं। अत: नेतृत्व के द्वारा जो भ्रष्टाचार होता है दो मुखी रुप धारण कर लेता है।

भारत में वास्तव में नेतृत्व का फैलाव गांधी जी के राष्ट्रीय आन्दोलनों के परिणामस्वरुप हुआ, क्योंकि गांधी जी ने राष्ट्रीय आंदोलन में सभी प्रकार के लोगों को एकत्र किया। ''यद्यपि सभी

समान रुप से गुणवान नहीं थे लेकिन स्वच्छ आन्दोलन के नैतिक वातावरण तथा गांधी के प्रति प्रतिभावान नैतिक स्वरुप के संसर्ग में आकर उन्होंने सहसा की उच्चता प्राप्त कर ली। दबाव काफी अधिक था कुछ ही व्यक्तियों के लिये देवता हो पाना संभव था, उससे भी कम लोगों के लिये सत्यपरक नैतिक श्रद्धालु तथा सत्ता प्राप्ति की इच्छा के बिना शक्ति सम्पन्न हो पाना संभव था। इस प्रकार नया मनुष्य अर्थात् वह कांग्रेसी व्यक्ति जो आदर्श बनने वाली था, पूर्णत: प्राप्त व्यक्ति न था।

आज के सामाजिक जीवन में इन नेताओं का अप्रतिम प्रभाव है। इसका एक परिणाम यह है कि नैतिकता का संरक्षक माना जाता है और उसे उपदेश की भाषा में ऊँची-ऊँची बात करना पड़ती है और ऐसे लंबे चौड़े आश्वासन देने पड़ते है जो सभी जानते हैं कि असंभव हैं। आज के नेताओं से ऐसी बात की अपेक्षा की जाती है जो राजनैतिक क्षेत्र में लोगों से नहीं की जानी चाहिए। दूसरी ओर इसके कारण आदर्श एवं यथार्थ में नेताओं की कथनी और करनी में जो अंतर है उस पर ज्यादा चिंता नहीं की जाती। इसीलिए हर क्षेत्र में गुटबंदी और फूट होने पर भी उपर से सहमति या आमराय पर जोर दिया जाता है इसीलिए भ्रष्टाचार के विरुद्ध बेहद शोरगुल मचाने पर भी उसके खिलाफ कार्यवाही करने या उसे राकने की गई खास कोशिश नहीं की जाती।

गांधीवादी कांग्रेसियों एवं आधुनिक राजनीतिज्ञों में एक समानता है वो सिर्फ ड्रेस में। वर्तमान के राजनीतिक पथ प्रदर्शन पीढ़ी की निरंतता नहीं रखते, न वो स्वतंत्रता आंदोलन कर्ता की पीढ़ी के है, वास्तव में वे भूतकाल से अनिरंतरता रखते है। 1993 के उत्तर प्रदेश के चुनाव में जो 140 सदस्य पदग्रहण करने वाले थे वे अपराध से जुडे हुए थे। कुछ 790 प्रत्याशी ऐसे थे जो कोई न कोई अपराध से जुडे हुये थे। 1972 में जिन-जिन राज्यों में कांगेस बहुमत में आई थी, वहां मुख्य मंत्रियों का इंदिरा द्वारा थोपा गया था, जिसके कारण उन्हें उनके भ्रष्ट आचरण में भी जुड़ जाना पड़ा।

नेतृत्व ने कानूनों में संशोधन करके भ्रष्टाचार को फैलान में मदद की है। 1971 में आम चुनाव में इंदिरा गांधी पर आरोप था कि उन्होंने चुनावी सीमा से ज्यादा खर्च किया है। श्रीमती गांधी जी उस समय प्रधान मंत्री थी, संसद द्वारा निर्वाचन विधि संशोधन अधिनियम 1974 पारित करवा कर यह प्रावधान करवा दिया कि राजनैतिक दल या अन्य लोगो के द्वारा किसी प्रत्याशी के क्षेत्र में किया गया खर्च प्रत्याशी द्वारा किया गया खर्च नही माना जावेगा। यह अधिनियम 06.08.1975 से लागू हुआ और इंदिरा गांधी इस आरोप से मुक्त हुई।

राजीव गांधी के प्रधानमंत्रीकाल में जब बोफोर्स का विवाद उठा तो उनकी पार्टी के सदस्यों ने इस सौदे की आलोचना करने वाले सरकारी लेखा परीक्षा को संसद से जोरदार हमले का निशाना बनाया और राजीव सरकार ने जांच आयोग कानून में संशोधन कर उसकी रिपोर्ट संसद में रखने की अनविार्यता खत्म कर दी। 1984 में महाराष्ट्र की कांग्रेस पार्टी भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम में संशोधन करना चाह रही थी ताकि मुख्यमंत्री ए.आर. अंतुले को भ्रष्टाचार के कानून से बचाया जा सकें। 1988 के भ्रष्टाचार निराधक कानून में विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा संशोधन करवाना चाह रहे हैं ताकि उन्हें जनसंपर्क की श्रेणी में न रखा जाये ताकि वे भ्रष्टाचार के आरोप के चुंगल से बच सके। इतना ही नहीं नेतृत्व ने भ्रष्टाचार को रोकने वाली संस्थाओं को भी प्रभावित किया तथा कर रही है, ताकि भ्रष्टाचार प्रगट न हो सकें। मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह ने लोकायुक्त पर दबाव डाला ताकि उनके भाई लक्ष्मण सिंह के खिलाफ याचिका वापिस ली जा सके।

भ्रष्टाचार की जांच में न्यायपालिका की सक्रियता से राजनीतिक दलों में इतनी बौखलाहट मच गई कि कुछ सांसदों चित्तरंजनदास मुंशी और व्यवार रवि ने इसे विधायिका के क्षेत्र में न्यायपालिका का अनावश्यक हस्तक्षेप को देखते हुए, उच्चतम न्यायलय ने उसे कोर्ट का रिपोर्ट देने के आदेश दिये।

झूठे नारे, आरक्षण के वादे, झूठे चुनावी घोषणा पत्र भारतीय नेताओं के लिये साधारण सी बात हो गई है। नेतृत्व द्वारा राजनीति को एक जीविका के साधन के रुप में लेने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। अंतिम किंतु महत्वपूर्ण चिंतन का विषय है कि राजनीतिक व्यवस्था अपने नागरिक को अपने को कहां तक जोड़कर रखती है, जिससे व्यक्ति का लगाव, वफादारी एवं उत्तरदायित्व व्यवस्था के प्रति हो एवं व्यक्ति अपने लाभ के प्रति निष्ठावान न होकर राष्ट्र के प्रति निष्ठावान हो।

स्वराज की 67 वर्ष बीतने के बाद आज भी लोकतंत्र में सत्ता का विकेन्द्रीकरण न होने से सामान्य जन की सत्ता में सहभागिता पांच साल में एक बार वोट डालने तक ही सीमित है। पंचायतीराज में जो हो रहा है व मात्र दिखावा मात्र है। व्यवस्था में संविदा सरकारों की विशिष्ट अवसरों वाली भारत में सरकारें नहीं मानी जाती है, बल्कि साधारण राजनीति का एक भाग बन गई है जिसमें व्यवस्था में अस्थिरिता तो उत्पन्न होती है, किन्तु सरकारों को बनने बिगड़ने की प्रक्रिया में धन की भूमिका महत्व ग्रहण करती है।

1967 से जब गैर कांग्रेसी सुदृढ़ विधायक दल बना, तो वो नये दल भी संगठित नहीं थे उनका पैसे की आवश्यकता थी, इसलिए उनकी सरकारी सेवकों से मदद लेना पड़ती, जिसके परिणाम स्वरुप भ्रष्टाचार का इस क्षेत्र में भी पदार्पण बढ़ता गया। जिससे व्यक्ति का जो राजनीतिक व्यवस्था को प्रशासन पर विश्वास था वो भी कम होता गया। धीरे-धीरे भ्रष्टाचार नीचे स्तर के पदों तक फैलता गया।

धर्म निरपेक्षता संतुष्टीकरण एवं आरक्षण के वोट बैंक की नीतियाँ भी जन साधारण में व्यवस्था के प्रति अविश्वास पैदा कर रही है। जैसा कि एम.एन. श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि व्यक्ति की निष्ठा में परिवर्तन हो रहा है निष्ठा गाँव की अपेक्षा जाति पर हो रही है।

अभी तक इतने घोटाले कांडों में किसी नेता को बड़ी सजा न मिलने से व्यवस्थाा की कार्यप्रणाली पर से भी विश्वास उठ गया है। शासन व्यवस्था के तीनों अंगों विधायिका, कार्यपालिका की परिकल्पानाओं से खामियां नजर आने लगी है। विधायिका सत्ता पक्ष की एजेंसी बन गई है। तो कार्यपालिका अपने कार्य का स्वार्थ तथा लाभ की

पराकाष्ठा तक ले गई है। न्याय पालिका में हो रहे विलम्ब में न्याय पालिका की विश्वसनीयता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि राजनीतिक व्यवस्था की परिस्थिति नेतृत्व को भ्रष्ट आचरण करने के लिए मार्ग प्रशस्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका रखती है किन्तु राजनीतिक व्यवस्था की परिस्थिति ही एकमात्र कारण नहीं है सामाजिक व्यवस्था जिसमें परिवार, जाति, धर्म आते है का भी भय बना रहता हैं।

भारत में और इसी तरह एशिया में अधिकांश भागों में परिवार, रिश्तेदार के संबंधों का महत्व पश्चिमी देशों की अपेक्षा अधिक है। इसमें इस विषय में निहायत गैर पश्चिमी ढंग की अपेक्षाओं का जन्म होता है अपने परिवार के लोगों के लिए क्या कुछ करना चाहिए इसी प्रकार आर्थिक व्यवस्था के परिस्थिति अंतर्गत सरकार की कर नीतियाँ, औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण वेतन नीतियां भी भ्रष्ट आचरण के लिए प्रोत्साहित करती है। अन्य व्यवस्थाओं जैसे-नैतिक भौगोलिकी, परिस्थिति की भी इसमें निश्चित रुप से भूमिका होती हैं।

अत: भ्रष्टाचार की समस्या का नैतिकता के ह्रास के संदर्भ में सोचना कि नैतिक मूल्यों के गिरने से भ्रष्टाचार बढ़ा है एकांकी दृष्टिकोण होगा। इसके लिए समग्र दृष्टिकोण को अपनाना होगा तभी इस समस्या का निदान किया जा सकता है तथा ऐसे नेतृत्व का विकास किया जा सकता है जो राष्ट्र का सच्चे अर्थों में पथ प्रदर्शन हो।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1 *Tolcott-parsons, Essays in sociological Theory, The Free press, Glencoe, Illin ois, 1981.*

2 *M.J. Levy, The Structure of Society, Prin Ceton University, New Jersey,1987.*

3 *R.M. Maclver and C.h. page, Society, macmillian and Co. Ltd, London, 1979.*

4 *Radha kamal mukerJee , the social structure of values, second Edition, S.Chand & Com. New Delhi, 1989.*

5 *Robert A. Dahl, On Democracy, East-West press, New Delhi, 2001*

6 *Huntington, Samuel P. The Third Wave: Democratization in the Late Twentith Century, Norman: University of Oklahoma press, 1991.*

7 *National Development Council report 1958 also Savita, Gandhi and Social policy in India, National publishing House New Delhi,1970.*

8 *Prasad, Narmadeshwar, "Change Strategy in a Developing society India, Meenakshi Prakashan Meerut,1970.*

9 *Yadva, J.S., Panchayat Election in Rural, Delhi Kuruksutra Journal vol.VIII No. 14 Aug. 1970.Page 41.*

10 *Bandhopadhaya, J., Mao-Tse-Tung and Gandhi perspective on social Transformation, Allied Publication Bombay, 1973.*

11 *Maheshwari, S.R., State Administration In India, Macmillon, New Delhi, 1979.*

12 *Arora, R.K., Comparative Public Administration Ecological perspective, Associated Publishing house New Delhi ,1997.*

13 *Gerald E. Caiden:, Dynamics & of public Administration Rinehart publication, New Delhi,1971.*

14 *Sharma, M.P., and B.L. Sadana, public Administration, Kitab mahal, New Delhi,1990.*

15 *Johnston, Michael and Arnold Heidenheimer, eds, political Corruption: concepts and Contexts. New Brunswick, N.J. Transaction publishers, New York, 2002.*

16 *Levi, Michael and David Nelken. The Corruption of Politics and the politics of Corruption, Oxford, Blackwell publishers, 1996.*

17 *Ward, Peter M. Corruption, Development and Inequality, London Routiedge publishers 1989.*

18 *Grint, K.(Ed.),Leadership, Classical, Contemporary and Critical Appoaches, oxford, oxford University press, U.K. 1997.*

19 *Gandhi, M. K., Iyer, R.N.(1991) The essential Writings of Mahatma Gandhi, oxford University press, Delhi, 1991.*

20 *Dharmadhikari, Dada, Sarvodaya Darshan, Sarva Seva Sangh Prakshan, Varanasi, 1957.*

21 सिंह, प्रताप, आधुनिक भारत, रिसर्च पब्लिकेशन, दिल्ली, 1987.

22 अग्रवाल, आर.सी., प्राचीन एवं मध्य भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1981.

23 डॉ. सुरेन्द्र कटारिया, कार्मिक प्रशासन, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 1997.

24 प्रशासनिक सुधार आयोग, राज्य प्रशासन पर रिपोर्ट, भारत सरकार 1969, 70.

ISSN 2277-5587

प्राचीन भारतीय मुद्रा की उत्पत्ति, विकास एवं महत्व

रीता शर्मा

शोधार्थी,दयालबाग़ एजूकेशनल इंस्टीट्यूट,

आगरा (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

प्राचीन कला अवशेषों की अमूल्य निधि संजोय भारत की कलात्मक दृष्टि अत्यन्त विस्तृत रही है। भारतीय कला अवशेषों में मूर्ति कला, स्थापत्य कला, चित्रकला के साथ-साथ प्राचीन गुहा चित्र शवों के साथ दफनायें गये पात्र मिट्टी के बर्तन, पत्थर काँसे की मूर्तियाँ और मृण्यमूर्तियाँ, मुद्राओं और टिकरों पर की गयी चित्रकारी आदि सम्मिलित होते हैं। इन प्राचीन अवशेषों में हड़प्पा एवं मोहनजादड़ो के नगर विन्यास की विस्तृत एवं समृद्ध योजना भी महत्वपूर्ण है। हड़प्पा के टीलों का ज्ञान 1878 ई. में कनिंघम के द्वारा छपवायी गई कुछ मोहरों के माध्यम से हुआ।[1]

भारतीय कला क्षेत्र के इन प्राचीन अवशेषों में से विभिन्न स्थानों से प्राप्त प्रचलित मुद्राओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय संस्कृति की विश्वस्त गरिमा इन्ही मुद्राओं की देन है।

सिक्के हमें इतिहास और संस्कृति को ठीक से समझने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। सिक्के निर्जीव होते हुए भी हमारे सामने अतीत को दिखाते हैं। वे मूक नहीं होते वे बोलते हैं। वह अपने समय की सभ्यता, संस्कृति और कला की जानकारी देते हैं। सिक्के हमारे ज्ञान भण्डार में वृद्धि करते हैं।

प्राचीनतम काल में विनिमय की प्रक्रिया वस्तुओं के माध्यम से पूर्ण होती थी। आदिम अवस्था को पार करके जब मनुष्य ने सामाजिक जीवन में पदार्पण किया तब से यह प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। समय के साथ विकसित होती हुई यह प्रक्रिया सिक्कों के रुप में प्रयोग की जाने लगी।

भारत में सिक्कों का प्रचलन प्राचीन काल से रहा है। सिक्कों के माध्यम से अनेक राजाओं, राजवंशो, निगमों एवं वर्णिक समुदायों के विषय में जानकारी प्राप्त होती रही है। सिक्कों का महत्व क्रय-विक्रय, राज्य-विस्तार, अर्थ व्यवस्था के सुधार के लिए किया जाता था तथा उन पर अंकित चिह्नों, प्रतीकों, पशुओं, प्राकृतिक वस्तुओं, वाहनों, देवी-देवताओं, अलंकरणों आदि से भी अनेक विषयों का परिज्ञान होता है।

हड़प्पा से प्राप्त मोहरों पर अंकित प्रतीक चिह्न

वैदिक काल को इतिहासकार 1500 से 800 ई0 पू0 के बीच में रखते हैं। परन्तु कुछ अन्य विद्वानों के मत से इनका काल और भी पहले हो सकता है। वैदिक साहित्य मे ही अनुमानित निश्चित आकार के और निश्चित वजन के धातु के टुकड़ों को ब्राह्मणों को दान मे देने के लिये बनाया जाता था, लेकिन ये सिक्के नही थे।

वैदिक साहित्य मे कुछ अन्य शब्द सिक्कों के लिये प्रयोग किये गये है जैसे- निष्क, शतमान, स्वर्ण, हिरण्यपिण्ड आदि। जिससे विनिमय पर आधारित निर्वाह अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। चूँकि इनके परीक्षण मे अधिक समय लगता था इसलिए आगे चलकर विद्वानों नें स्वर्ण या रजत पट्टियों को समान भार में काटकर उनका मानक मूल्य निर्धारित कर दिया।

भारत में सबसे प्राचीन सिक्कों का नाम ''पुराण'' या ''धरण'' मिलता है। इन्हें ही पंचमार्क या आहत सिक्का कहते हैं। बाद में इन सिक्कों को कार्षापण नाम दिया गया। कार्षापण का संक्षिप्त नाम ''पण'' भी है।[2] प्राचीन धारणा है कि कार्षापण तौल का नाम था जो बाद में सिक्के के लिए प्रयोग किया जाने लगा। ''मासक'' से छोटे सिक्के का बोध होता है। अत: भारत में पंचमार्क सिक्कों के अलग-अलग नाम प्राप्त होते हैं। इन सिक्कों पर लेख तथा तिथि का अभाव है। जिसके कारण इन सिक्कों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना एक जटिल समस्या है। उन पर अंकित चिन्हों के माध्यम से ही कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

वासुदेव उपाध्याय के अनुसार ''स्मृति ग्रन्थ'' में ''कार्षापण वस्तु विषय: ताम्रिक: कार्षिक: पण:'' का उल्लेख है।[3] जिससे ज्ञात होता है कि कार्षापण ताँबे के ही निर्मित किये जाते थे। बाद में चाँदी तथा ताँबे दोनों धातुओं के सिक्कों के लिए कार्षापण शब्द का प्रयोग होने लगा परन्तु दोनों धातुओं की तौल में अन्तर था चाँदी का कार्षापण 32 रत्ती का तथा ताँबे का कार्षापण 20 रत्ती का होता था।

सिक्कों पर कलात्मक प्रतीक चिन्ह का प्रारम्भ आहत सिक्कों से माना जाता है। ये सिक्के विभिन्न धातु के तथा समय के साथ साथ इनमें परिवर्तन होना प्रारम्भ हो गया था। अलग-अलग राजाओं ने अपने राज्य के विभिन्न प्रकार एंव भिन्न-भिन्न धातुओं के सिक्के निर्मित किये। इन पर ठप्पों से चिह्न उत्पादित किये जाते थे। कालान्तर में यह प्रक्रिया कला का रुप ले चुकी थी, क्योंकि मुद्राओं पर अंकित चिन्ह रुप देखने में सुन्दर है। आहत सिक्कों पर अंकित चिह्नों को अलग-अलग समूहों में विभाजित किया जा सकता है-1. मनुष्य की आकृति 2. युद्ध के हथियार, स्तूप, चैत्य आदि। 3. वृक्ष, नदी, पर्वत, सरोवर आदि। 4. पशु-पक्षी 5. शिव-पूजा से सम्बन्धित प्रतीक अथवा तांत्रिक चिह्न 6. मांगलिक चिह्न 7. विचित्र चिह्न 8. पूजा प्रतीक चिह्न आदि।

पाली साहित्य के अनुसार ई.पू. छठी शताब्दी में बिम्बसार की राजधानी राजग्रह में 20 माशे की तौल का उल्लेख है। जिसे ''विशंतिक'' कार्षापण कहते हैं। इससे भी पहले मगध, कौशल, शूरसेन जनपद में आहत मुद्राओं का चलन था। ये सिक्के अजातशत्रु से लेकर मौर्य वंश के समय ई. पू. दूसरी शती तक चलते रहे, ये सिक्के एक समान भार के है। उनका भार लगभग 50 से 56 ग्रेन था।[4]

मौर्य साम्राज्य के विघटन के बाद दो बड़ी राजनीतिक शक्तियों का उदय हुआ, उत्तरापथ मे कुषाणों का और दक्षिणापथ मे सातवाहनों का साम्राज्य था। कुषाण नरेश ने विदेशी सिक्कों का अनुकरण पर सिक्के जारी कराये किन्तु सिक्कों के लिये साने की धातु का प्रयोग भी उनके द्वारा किया।

साम्राज्यवाद चांदी का आहत सिक्का
(चौथी से दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व)

इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत में सातवाहनों का राज्य स्थापित हुआ, जिन्होंने अपने राज्य के सिक्कों का प्रचलन कराया परन्तु इन सिक्कों का उल्लेख अधिक मात्रा में देखने को नही मिलता है। इनके सिक्कों मे अधिकांश रुप से लिपि का प्रयोग होता था इनके सिक्के लाल पत्थर, ताँबा, व सोने के माध्यम से तैयार किये जाते थे। ''शिव श्री'' तथा ''चन्द्र श्री'' जैसे अन्तिम सातवाहन नरेशों के सिक्के केवल आन्ध्र प्रदेश से ही मिलते है। जिसके आधार पर अल्तेकर जी का मानना है कि सातवाहनों के पतन के समय उनका शासन आन्ध्र प्रदेश तक ही सीमित रह गया था।[5]

मौर्य काल के बाद उदित हुआ शुंग साम्राज्य भी दीर्घ काल तक स्थायी न रह सका तथा शुंग साम्राज्य का पतन हाते ही स्थाने-स्थान पर अनेक जनपदों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली। समुद्रगुप्त की दिग्विजय के पूर्व तक स्वतन्त्र जनपदों का जनपदीय-

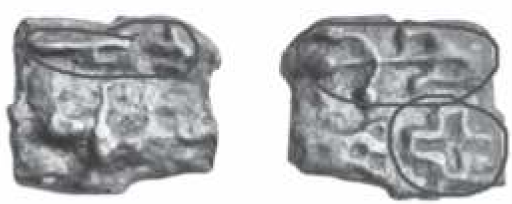

ताँबे का आहत सिक्का, कौशाम्बी तीसरी शती ई.

शासन अस्तित्व मे बना रहा। इस सुदीर्घ शासन परम्परा में अनेक जनपदों के शासकों ने अपनी-अपनी मुद्रायें भी चलायी। तक्षशिला, कौशाम्बी, मथुरा, पांचाल, एरण, उज्जैन, विदिशा तथा महिष्मती आदि ऐसे प्रमुख जनपद थे।[6]

कुषाण साम्राज्य के अवशेषों पर एक नई राजनैतिक शक्ति का उदय हुआ वह थी गुप्त साम्राज्य की शक्ति, जिसने एक सदी से भी अधिक उत्तर भारत पर राज्य किया। गुप्त कालीन मुद्राओं का ऐतिहासिक एंव कलात्मक दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। गुप्त शासकों द्वारा अपने

 ISSN 2277-5587

सिक्कों पर आकर्षक उपाधियों एवं अपनी धार्मिक प्रवित्तियों के अंकनों का विशिष्ट ऐतिहासिक महत्व है।

प्राचीन काल में सर्वाधिक सोने के सिक्कों का निर्माण चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा करवाया गया। प्राचीन भारतीय मुद्रा प्रणाली के अन्तर्गत यह आवश्यक परम्परा सी बन गयी थी कि विजयी शासक

कुषाण राजा कनिष्क, ताँबे का सिक्का

अपने द्वारा विजित प्रदेशों मे सिक्कों के लिये जिस धातु का प्रयोग करते थे, वहाँ के निवासी उस धातु से भली-भाँति परिचित थे। गुजरात, कठियावाड़, मालवा आदि प्रदेशों पर पश्चिमी क्षत्रपों का अधिकार था, उन्होंने इन क्षेत्रों में चाँदी के सिक्के जारी किये थे। जब चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इन क्षेत्रों को जीता तो उसने भी सिक्कों की अनुकृति में चाँदी के सिक्के जारी किये।[1]

छठी शताब्दी ई. के मध्य (लगभग 550 ई.) शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था। अनेक स्थानीय सामान्तों एवं शासकों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। लगभग इसी समय पश्चिमी बंगाल के कुछ सामन्त शासकों ने अपने-अपने नाम के स्वर्ण सिक्के जारी किये लेकिन इनके द्वारा जारी स्वर्ण सिक्कों में अन्य धातुओं का भी मिश्रण था।

इस प्रकार भारतीय मुद्रा प्रणाली का इतिहास विनिमय के मौद्रिक स्वरुप को छूता हुआ शैशव कालीन आहत सिक्कों की ओर बढ़ा। इसी बीच देशी-विधि से बनाये गये इन आहत सिक्कों को आने वाली विदेशी पद्धतियों एवं परम्पराओं ने सन्दर्भित एवं प्रभावित करके भारतीय मुद्रा प्रणाली में लेखों तथा तिथियों का अंकन भी प्राप्त होने लगा। इस तरह भारतीय मुद्रा प्रणाली का इतिहास अपने अन्तःकरण में अनेकों उतार-चढ़ाव लिये हुए है जिसमें विदेशी प्रेरणाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

महत्व-पुरातत्व विषयक वस्तुओं से इतिहास लिखने में पर्याप्त सहायता मिलती है। इन वस्तुओं में उत्कीर्ण लेखों के बाद इतिहास में बहुत से युग ऐसे है जिनके विषय मे जानकारी केवल सिक्कों के माध्यम से ही हो पाती है। राजनैतिक इतिहास तत्कालीन कला, साहित्य और धार्मिक अभिरुचि का भी ज्ञान सिक्कों के माध्यम से ही ज्ञात होती है। भारत के प्राचीन सिक्कों से यह ज्ञात होता है कि यहाँ गणतन्त्रतात्मक प्रणाली थी और उन्होंने अपने-अपने गणों के सिक्के चलाये थे। यूनानी राजाओं के बारे में जानकारी भी उनके

सोने का सिक्का, कुषाण राजा कनिष्क

द्वारा जारी किये गये सिक्कों से ही प्राप्त होती है क्योंकि भारतीय साहित्य में केवल मिलिन्द नामक विदेशी शासक का उल्लेख है।

शक समयकों के बारे जो इतिहास प्राप्त हुआ है उसका आधार उनके सिक्के है। उन सिक्कों के द्वारा ही उनके काल का भी निर्धारण होता है। कुछ क्षत्रियों के सिक्कों पर तिथि भी अंकित है जिससे साथ ही साथ उनके सिक्कों से वशांवली का भी ज्ञान होता है। शकों पर गुप्तों की विजय, आन्ध्रों और क्षत्रियों से युद्ध का वर्णन सिक्कों के आधार पर ही ज्ञात होता है जिसकी पुष्टि शिला पर प्राप्त लेखों से हाती है।

किसी राजा के राज्य विस्तार की जानकारी सिक्कों के माध्यम से ही सम्भव होती है। मौर्य राजाओं के सिक्कों की समानता के आधार पर ही यह पुष्टि हुई है कि उनका साम्राज्य सम्पूर्ण देश में फैला हुआ था। भारत के कार्षापण सिक्कों पर उत्कीर्ण विभिन्न आकृतियों तथा चिह्नों से यह प्रमाण प्राप्त होता है कि जनता में कला के प्रति रुझान था।

सिन्धु घाटी सभ्यता से लेकर सिक्कों के क्रमिक विकसा के विभिन्न उतार-चढ़ाव तथा उन पर उत्कीर्ण विभिन्न प्रकार के चिह्नों से कला

सोने का सिक्का, राजा समुद्रगुप्त

के विस्तृत एवं प्रचलित होते हुए स्वरुपों को भली-भाँति देखा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूचीः

1. भारतीय सिक्के: एक ऐतिहासिक परिचय अमृतेश्वर झा आई.आई.आर.एन.एस. पब्लिकेशन, नासिक, पृष्ठ सं0-7 ।
2. भारतीय सिक्कों का इतिहास, अजीत रायजादा, शारदा पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, 1993 पृष्ठ सं.-12 ।
3. प्राचीन सिक्के, राम प्रकाश ओझा, पोस्ट ऑफिस, महानगर, लखनऊ, 1978 पृष्ठ सं.-10 ।
4 वही, पृष्ठ सं.-12 ।
5 प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्रीय इतिहास में देशी एवं विदेशी तत्व, अनूप कुमार, कला प्रकाशन ,2009, पृष्ठ सं.-18
6 वही, पृष्ठ सं.-14-15 ।
7 प्राचीन सिक्कों का इतिहास, अजीत रायजादा, शारदा पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, 1993 पृष्ठ सं.-15 ।

चित्र संदर्भ - संग्रहीत सिक्के, राजकीय संग्रहालय, झाँसी।

ISSN 2277-5587

राजस्थान का बहुआयामी चारण साहित्य : एक विवेचन

रणजीत सिंह पवाँर
शोधार्थी, राजस्थान अध्ययन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति वे दर्पण हैं जो किसी भी समाज के विगत एवं वर्तमान को प्रतिबिम्बित करते हुए भविष्य के लिए एक चमकता हुआ बिन्दु या प्रश्न छोड़ जाते हैं; जिसे पीढ़ी दर पीढ़ी आने वाले विद्वान और बौद्धिक वर्ग अधिक चमकीला बनाने व उनका समाधान निकालने में अपना सहयोग देते रहते हैं।

राजस्थान की इस प्राचीन मरुधरा पर तलवारों एवं लेखनियों के धनी शाश्वत रुप से इतिहास एवं साहित्य के शिखर पर प्रकाशमान रहे हैं। जब भी भाषा, साहित्य, इतिहास एवं संस्कृति लेखन की दृष्टि से भारतवर्ष का अवलोकन किया गया है तो धोरां वाला देश 'राजस्थान' का नाम सदैव अग्रणी रहा है।

इतिहास एवं साहित्य लेखन में विभिन्न प्रान्तों के अनेक इतिहासकारों एवं साहित्यकारों के नामों की गणना बड़े ही आदर से की जाती रही है। ये लेखन के वे 'रत्न' है जिन्होंने कठिन परिस्थितियों में भी अपने जीवन का अधिकांश समय आने वाली पीढ़ियों के लिए इतिहास एवं साहित्य की एक निधि के सृजन में लगाया।

राजस्थानी साहित्य एवं इतिहास लेखन की परम्परा दीर्घकालीन रही है और इस दीर्घकालीन परम्परा के निर्वाह में चारण जाति का योगदान सराहनीय रहा है। राजस्थान की इस लोकप्रिय जाति ने राजस्थान के वंश लेखन, उसकी वीरता, अदम्य साहस, मान-सम्मान, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना आदि को क्रमबद्ध रुप में अपनी लेखनी से अमर कर दिया। वंश लेखक चारण जाति के सकारात्मक योगदान से राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति एवं पूर्वजों का इतिहास का लेखन का दीप दैदीप्यमान रहा है। उदैराज ऊजल की यह पंक्तियां उपरोक्त कथन की ओर संकेत करती नजर आती है -

'सत ऊजल संदेस, उजल चारण ऊचरै
दीपै वारा देस, ज्यारा सहित जगमगै'

यह तो विदित है कि लेखनी के इन जादूगरों का उद्भव विभिन्न समुदायों या जातियों में ही हुआ है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि राजस्थान के इन रत्नों में से अनेक बहुमूल्य रत्न 'चारण जाति' में हुए हैं जिन्हें भाट, चारण, राव, मोतीसर, ब्रह्मभट्ट आदि नामों से जाना जाता है।

इन वंश लेखकों की उत्पत्ति को लेकर भिन्न-भिन्न मत प्रचलित रहे हैं। जो निम्नलिखित है -

चारण जाति का उद्भव : विभिन्न प्रचलित मत

किसी भी जाति, समुदाय, वर्ग आदि के उद्भव को लेकर विभिन्न मत प्रचलित रहे हैं। इसी प्रकार चारण जाति की उत्पत्ति को लेकर भी विभिन्न मत प्रचलित रहे हैं। लेकिन जब भी किसी नये शब्द की व्युत्पत्ति होती है तो उसमें एक मूल भाव विद्यमान होता है और उसे ध्यान में रखना ही उसके मूल अस्तित्व को बनाये रखता है।

'चारयति कीर्ति चर-णिच्ल्यु' के अनुसार कीर्ति को चलाने अथवा आगे बढ़ाने वाला ही चारण है।

सृष्टि के आरम्भ काल में चारणों की उत्पत्ति हुई, इस प्रकार के समान विचार हमें,चारण विद्वानों द्वारा लिखित ग्रन्थों क्रमशः, 'चारणोत्पत्ति-मीमांसा-मार्तण्ड'(भँवरवदान), 'चारण कुल प्रकाश' (कृष्णसिंह), 'संक्षिप्त चारण-ख्याति' (मुरारिदान), 'चारण जाति का इतिहास' (नंदसिंह) में प्राप्त होते हैं।

इन समस्त लेखकों ने भारतीय साहित्य के प्रथम ग्रंथ वेद में -

''यथेमां वाचं कल्याणी मा वदानि जनेभ्य:
ब्रह्मराजन्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय''

उपर्युक्त ऋचा को अन्तर्साक्ष्य मान कर चार वर्णो के लिए अपनी कल्याण देने वाली वाणी का उपदेश देते हुए चारण का महत्व प्रतिपादित किया है और उसकी गणना देवताओं में की है। चारण देवताओं के कवि हैं।[3]

राजस्थान विश्वविद्यालय के डॉ. एस. एस. रत्नावत एवं डॉ. के.जी. शर्मा द्वारा संपादित 'चारण साहित्य परम्परा' नामक ग्रन्थ में श्री बद्रीदान गाडण ने अपने शोध पत्र 'चारणों की उत्पत्ति' में यजुर्वेद की उपरोक्त ऋचा (अध्याय 26 मन्त्र 2) के संबंध में रेखांकित किया है कि 'यदि वास्तव में उपरोक्त ऋचा में 'चारण' शब्द वर्तमान चारण जाति के लिए ही प्रयुक्त हुआ हो तो कहा जा सकता है कि पुराणों में जो चारण जाति के चारों वर्णो के बाहर आकाश में गमन करने वाली, स्वर्ग में निवास करने वाली देव जाति माना है, इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है। यह जाति किसी समय स्वर्ग में रहती थी और आठ प्रकार के देव-सर्ग में इसकी गणना थी। यह वाल्मीकि रामायण, श्रीमद् भागवत तथा अन्य पुराणों में अनेक स्थलों पर लिखा मिलता है।

इत्यादिक एक नहीं, सैंकड़ों या इससे भी अधिक प्रमाण इतिहास और पुराणादिक अन्य ग्रन्थों से मिलते हैं।[4]

इस प्रकार कीर्ति का संचार करने वालों (चारयन्ति कीर्तिम् इति चारणाः) को चारण कहा गया है। यह एक बहुत प्राचीन जाति है। बाल्मिकी रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत गीता आदि पुराणों में अनेक स्थानों पर इस जाति का उल्लेख मिलता है। चारण इतिहास वेत्ता स्वर्गीय कविराज श्यामलदास ने अपने 'वीर विनोद' नामक ग्रंथ में अपनी जाति का परिचय देते हुए लिखा है कि 'यह जाति सृष्टि सृजन-काल से पाई जाती है; क्योंकि हमारे भारतवर्ष का पहिला मुख्य शास्त्र वेद माना गया है उसमें भी चारण जाति का नाम मिलता है।' श्यामलदास का संकेत भी यजुर्वेद के उपरोक्त मंत्र की ओर है जिसका हिन्दी अर्थ यह है -

अर्थ - मैं जिस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र तथा वैश्य और अपने प्रिय लगने वाले और (अरणाय) प्रिय न लगने वाले जनों के लिए इस कल्याण कारिणी वाणी को बोलूँ।

डॉ. श्यामसिंह रत्नावत एवं डॉ. कृष्णगोपाल शर्मा द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'चारण साहित्य परम्परा' के निदेशकीय वक्तव्य में चारणों के संबंध में-'यद्यपि चारण अपने को रामायण और महाभारत के सिद्धों और चारणों से अवतरित देव योनि में मानते हैं परन्तु यह बाद में उत्पन्न हुई जाति लगती है जो पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में राजपूतों के साथ-साथ प्रभावशाली होने लगी थी। एक विशिष्ट चारण ने बताया कि कोई नौ सौ वर्ष पूर्व सिन्ध के किसी राजा (या बादशाह) को, जब वह अपनी सेना सहित जंगल में जा रहा था तो, कुछ लड़कियों ने बड़े चमत्कारिक ढंग से भोजन कराया था और, ये चारण उन्हीं लड़कियों की सन्तान हैं, जो स्वयं देवी स्वरुपा थीं। परन्तु, भाटों का कहना कुछ और ही है वे कहते हैं कि 'कुल' या 'कुला' शब्द का अर्थ चारण है। कवि ब्रजलाल कृत 'कुल कुलमण्डन' में लिखा है कि चारणों का उद्भव सोरठ या प्राचीन सौराष्ट्र में हुआ था। वे चारण शब्द की व्युतपत्ति 'चार' से करते हैं। चारणों की 120 शाखाएँ हैं जिनमें से लगभग आधी तो मारवाड़ में ही पाई जाती है और शेष कच्छ तथा काठियावाड़ में'।[6]

चारण जाति राजस्थान, गुजरात और मध्यप्रदेश के गाँव-गाँव में निवास करती है। इन प्रदेशों का इतिहास और संस्कृति को विशिष्ट स्वरुप प्रदान करने कमें चारण जाति का महत्वपूर्ण योगदान है। मध्यकाल और ब्रिटिश शासन के समय का इतिहास चारणों के बिना शून्य स्तर तक पहुँच सकता है। चारणों के निवास स्थान वाले सभी स्थानों, विशेषकर राजस्थान और गुजरात के युग-युगीन इतिहास का चारण केवल मूक साक्षी ही नहीं, बल्कि उसका सक्रिय भागीदार और निर्माता भी है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक सभी क्षेत्रों में चारणों की उपलब्धियाँ अद्वितीय रही है।[7]

चारण जाति को लेकर आज भी लोगों की जुबान पर कई छंद व दोहे मौजूद है जो उनकी परम्परा का परिचय देते हैं। उदाहरण के लिए -

''सुरसत ज्यॉरी जीभाँ बसै, भाखै सत री भेद
देव्याँ जग रिच्छ्या करै, चारण मुख चहुँ वेद''

अर्थ: जिनकी जीभ पर सरस्वती का निवास है, जो सत्य का मर्म बखानती है जिस वंश की देवियां संसार की रक्षा करती है। सचमुच इन चारणों के मुख में तो चारों वेद निवास करते हैं।[8]

अमरकोष में इन्हें कत्थक या कुशीलव कहा गया है। आचार, व्यवहार और कार्यकलापों में इसे भाट जाति के समतुल्य बताया जाता है।[9]

चारण लोग वस्तुत: बिलोचिस्तान से आये थे जहाँ इनका निवास स्थान था। यहाँ हिंगलाज देवी का मन्दिर था, जिसकी चारण पूजा-सेवा करते थे। मुसलमान, अरबों और तुर्को के अत्याचारों के कारण वे स्वदेश छोड़कर मारवाड़ बसे। मारवाड़ में बसने वालों को मारुचारण संज्ञा से अभिहित किया जाता था। जो कच्छ में गये वे कछेला कहे गये। कुछ समय तक वे अपने पुराने धन्धे पशुपालन में लगे रहे पर आगे चलकर शासकों से जुड़कर उनका प्रशस्ति-गान करने लगे।[10]

चारणों का उद्गम वस्तुत: एक विवादात्मक प्रश्न है। यह सम्भव प्रतीत होता है कि वे 7वीं-8वीं सदी मे ईरान से आये जब खलीफा उमर ने इस स्थान को जीत लिया। वे बिलोचिस्तान होते हुए आये। उनकी

ISSN 2277-5587

मुख्य देवी हिंगलाज माताजी मकराज के पास बिलोचिस्तान में स्थित है। पहले वे कच्छ में प्रविष्ट हुए पर आगे चलकर मारवाड़ में चले आये। इन्होंने राजपूतों से घनिष्ठ बना लिए और वे इनके मित्र और पथप्रदर्शक बन बैठे। वे केवल कवि ही नहीं थे अपितु महान् प्रशासक और राजनितिज्ञ भी थे। इन्होंने राजस्थानी भाषा की एक नई काव्य शैली प्रवर्तित की जिसे डिंगल कहते हैं। इस पद्धति में प्राकृत एवं शौरसेनी का मिश्रण था। इस डिंगल के उच्चारण की नई विधा का आविष्कार हुआ इसमें महान काव्यों का सृजन हुआ। भाषा के रुप में डिंगल शबद् का प्रयोग सर्वप्रथम चारण कवि सांयाजी झूला 'नागदमण' (1661 वि.सं. के लगभग) में मिलता है। कविराजा बांकीदास ने अपनी दो कृतियों-कुकवि-बत्तीसी और कविमत मडपा में डिंगल को मरुभाषा का पर्याय व उद्धतभाषा के रुप में वर्णित किया है-

"ऊधत भाखा औ अरथ, भाखौ डींगल भाख।
मारुभाखा मांनजे, सो ई गीता साख।।"[11]

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि चारणों के उद्‌भव संबंधित अनेक मत प्रचलित है। किस मत को प्रामाणिक माना जाये? यह अभी भी प्रश्न बना हुआ है। किन्तु राजस्थान प्रदेश की भाषा को इन्होंने अपनी लेखनी से एक नया आयाम दिया जिसका विवेचन अनेक ग्रन्थों में हुआ है।

बहुआयामी चारण साहित्य

नि:संदेह राजस्थान के साहित्यिक अवदान एवं वंश लेखन इतिहास को नया आयाम देने में चारणों का योगदान सराहनीय है। भाषायी व काव्य सौंदर्य तो है ही साथ ही देश प्रेम, त्याग, निष्ठा, भक्ति, प्रेम, कला, सौन्दर्य, श्रृंगार एवं सामाजिक सरोकारों के प्रति सजग साहित्य सेवा के प्रमाण मिलते हैं। चारण साहित्य के विवेचन से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि समाज की प्रगति के लिए, साहित्य मार्ग प्रशस्त करता है। चारण साहित्य का विभाजन प्रबंध व मुक्तक काव्य के रुप में किया जा सकता है। निम्नलिखित रुप में -

प्रबंध :- रासो, विलास, प्रकाश, गुण
मुक्तक :-दूहा, छंद, गीत पवाड़े, कवित्त[12]

पहले अधिकतर चारण राज-दरबारी हुआ करते थे और कविताएँ रचकर अपनी जीविका चलाते थे। चारण जाति राजभक्त और स्वामी-भक्त जाति रही है। इसने अनेकानेक राजपूतों को स्वातंत्र्य उत्कर्ष में सहायता प्रदान की है। अपनी वीर-वाणी से अनेक चारण-कवियों ने कई डगमगाते वीरों को साहस दिया है। निराशा को आशा में बदला है।[13]

साहित्य की विवेचना करने पर राजस्थान के चारण साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रेखांकित की जा सकती है। मौखिक वृतांत्त ही स्मृति बनकर समयानुसार जनमानस में संचरित होते रहे। इस स्मृति के माध्यम से गाथा, गीत, लोककलाएं आदि धरोहर के रुप में विकसित होती रहीं। विश्व में रीति-रिवाजों, परंपराओं, नैतिक मूल्य तथा संस्कृतिक की उत्पत्ति एवं विकास के अध्ययन की दृष्टि से भी चारण साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

राजस्थान के इतिहास के लेखन में चारण साहित्य की उपयोगिता जितनी है, उतना ही उसका वंश लेखन एवं उनके जन जीवन तथा साहित्यिक विश्लेषण में भी विशिष्ट स्थान है। राजस्थानी साहित्य के पुन:सृजन के लिए अपरिहार्य चारण साहित्य में रचित गद्य एवं पद्य विधा राजस्थान के राजनीतिक व सांस्कृतिक जीवन एवं हमारे पूर्वजों के वंश लेखन का जीवंत चित्र माना जा सकता है।

विसर काव्य (निन्दात्मक) में उलाहना देते हुए 'प्राचीन भारत दुबो प्यालां री मनवार। मात्रभूम परतंत्र हो, बार बार धिक्कार'[14] कहा गया है। वहीं सर काव्य (प्रशंसात्मक) धर्म, धरती व नारी सम्मान के लिए प्राणोत्सर्ग के भी उल्लेख मिलते हैं।

अधोलिखित पंक्तियां चारण साहित्य के महत्व को रेखांकित करती हैं -

आपी घणौ उच्छाह, गई जानियां जागीरों,
मिटिया कोट किमाड़, पडी प्रोलों प्राचीरों।
दीधा गज, गध (ऊंट), दान, अजर (घोड़े) नचता घाटी रा।
मन माटी में मिला, रमतिया वे माटी रा।
थे दियो जिको ढगला धीयो, धन सारो छत्रधारियां।
स्मपियी हमां गहणी सुजस (थांरी) अजे भारी अलमारियां।।[15]

समय अन्तराल में राजस्थान की अन्य जातियों द्वारा भी राजस्थानी भाषा में साहित्य रचना की गयी किन्तु प्रारंभिक प्रयासों का श्रेय 'चारण' जाति को दिया जा सकता है। चाहे आदिकाल हो, मध्यकाल हो या आधुनिक काल हो, राजस्थान में राजपूत समाज के साथ अभिन्न रुप से जुड़े होने के कारण उनकी संपन्नता, विपन्नता अकाल, सुकाल का प्रभाव चारणों पर गहनता से रेखांकित किया जा सकता है। लोकजीवन में गहरी पैठ के कारण इस वर्ग की पकड़ जनता की नब्ज पर रहती थी जिसकी उपेक्षा शासक, सत्ता वर्ग द्वारा असंभव होती थी। इस कारण समाज व्यवस्था में इनकी एक विशिष्ट भूमिका प्रतीत होती है।

चारणों ने जो साहित्य लिखा उसे भाषाशास्त्र, इतिहास, धर्म, नीति, तत्वज्ञान, शालिहोत्र, एवं वंश लेखन सम्मत विविध विषयों के अंतर्गत देखा जा सकता है। राजस्थानी साहित्य की जो जानकारी के स्रोत है वो ख्यात, बात, विगत, पीढ़ी, वंशावली, रासो, प्रकाश, विलास, रुपक, वचनिका, इतिहास विषयक हैं, झूलणा, वेल, झमाल, गीत, कवित्त, दूहा, छंदों पर आधारित जन जीवन की जानकारी के स्रोत हैं।

चारण-साहित्य की अनेक दृष्टिकोणों से विवेचना की जाती रही है। चारण-साहित्य को ऐतिहासिक महत्व की दृष्टि से काल्पनिक एवं अतिरंजापूर्ण मानकर उसे नकार देना संभव नहीं है। वर्तमान में अजमेर में स्थित चारण शोध संस्थान श्री ओंकारसिंह लखावत के निर्देशन में इस धरोहर को संजोने और निखारने में उल्लेखनीय कार्य कर रहा है।

अब तक राजस्थान के चारण साहित्यकारों में लक्खा बारहठ, जग्गा

खिड़िया, कृपाराम खिड़िया, करणीदान कविया, ओपाजी, बांकीदास, चण्डीदान, मुहणौत नैणसी, आशानन्द, ईसरदास, केशवदास गाडण, शिवदास गाडण, जमनाजी बारहठ, गोरधनजी बोगसा, सूरायंच टापरिया, रामा सांदू, वीठू मेहा, आसकरण, जोगीदास, ऊमरदान, किसना आढा, दुरसा आढा, माला सांदू, खेतसी साँदू, मंच्छाराम, माधौदास दधवाड़िया, रामदान लालस, कवि गिरधर, चानँण खिड़िया, हूँफा सांदू, बुधजी आशिया, मंगलाराम, कविराजा श्यामलदास, वंश भास्कर के रचयिता श्री सूर्यमल्ल मिश्रण, मुरारिदान, बारहठ बालाबख्श, उदयराज ऊजल, केसरीसिंह बारहठ, रेवतदान चारण, शक्तिदान कविया, नाथुसिंह महिरिया, विजयदान देथा, बद्रीदान गाडण, अर्जुन देव चारण आदि प्रमुख हैं।

पदमा चारणी (माला सांदू की पुत्री), बिरजूबाई (करणीदान कविया की बहिन), झीमा चारणी (वीठू चारण की बहिन), श्रीमती करणीदान (कविया करणीदान की पत्नी)[16]आदि चारण महिलाओं भी इस क्रम में उल्लेखनीय हैं।

प्रमुख चारण इतिहासकारों एवं साहित्यकारों द्वारा लिखित, इतिहास एवं साहित्य की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है जो निम्नलिखित है -

बांकीदास आशिया : बाँकीदास द्वारा अपनी ख्यात 'बाँकीदास री ख्यात' में छोटे-छोटे नोटस् के रुप में ऐतिहासिक बातें याददाश्त के लिए अपनी 'पोथी' में लिखी। उन्होंने अपनी ख्यात में 3000 बातों का संग्रह करते हुए राठौड़, यादव (भाटी), गहलोत, कछवाह और चौहान शासकों एवं सामन्तों से संबंधित अनेकानेक महत्वपूर्ण टिप्पणियां की है। ऐतिहासिक पुरुषों की मुख्य उपलब्धियों के अलावा राजाओं की रानियों, कुवंर-कुवंरियों का ब्यौरा दिया है, इसमें राजघरानों के आपस के वैवाहिक सम्बन्धों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।[17]

मुहणौत नैणसी: 'मुंहता नैणसी री ख्यात' में राजस्थान के सभी राज्यों के अलावा सिंध, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र इत्यादि राज्यों का वर्णन भी मिलता है।[18] इस ख्यात में क्षत्रियों की विभिन्न शाखाओं के विवेचन के साथ ही उनकी उपलब्धियों एवं राजस्थान की स्थापत्यकला (किलों, मठों, मन्दिरों का निर्माण) पर भी प्रकाश डाला गया है। रीति, रिवाज, त्यौंहार, पर्व, धार्मिक-सामाजिक मान्यताओं आदि सांस्कृतिक पहलूओं को भी इसमें समेटा गया है, जो कि राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास को बयां करते हैं।

बारहठ चैनदान: 'मूंदीयाड़ री ख्यात'[19] ख्यात में मारवाड़ के शासकों का परिचय मिलता है। युद्ध अभियान, जनकल्याण कार्य एवं पड़ौसी राज्यों और केन्द्र सत्ता इसके मुख्य विषय हैं जो कि इतिहास एवं साहित्य में एक अध्याय की अभिवृद्धि करती है।

आईदान खिड़िया: खिड़िया ने 'राठौड़ा री ख्यात' में मुहावरों एवं अलंकृत वाक्यों का प्रयोग कर अपनी ख्यात की रचना की। इस ख्यात में राजस्थानी भाषा का मौलिक स्वरुप देखने का मिलता है। उदाहरण के लिए राव जोधा मेवाड़ सेना को परास्त कर अपने पैतृक राज्य मंडोर पर अधिकार करता है, उसका राजस्थानी में वर्णन -

'राव जोधाजी रो साथ सारो कुसले रहयो। राणा रो साथ घणो काम आयो। जठा पछे कोसांणे वगेरे रा थांणा मारीया ने रांणा रा थाणा मार नै मंडोवर लीयो...ने राव जोधाजी सोझत ऊपर गया सो राघवदे उठा सुं भाग गयो। ने राव जोधोजी सोझत उरी लीवी ने रांहणा सुधा सोजत वीसीया'।[20]

दयालदास सिंढ़ायच: गद्य विधा में लिखी गई 'बीकानेर की ख्यात' में समुचित गीत, कवित्त, निसाणी, वचनिका, दोहे इत्यादि का प्रयोग कर समकालीन घटनाओं की पुष्टि की गयी है। मूलत: राजा का जन्म, राज्यारोहण, उनके जीवन की प्रमुख घटनाएँ, रानियों, कुंवरों एवं कुंवरियों का का विवरण दिया गया है। अनेक महत्वपूर्ण विवेचन भी जैसे-पड़ौसी राज्यों से संघर्ष, केन्द्रीय सत्ता से बीकानेर घराने का सम्बन्ध, ठिकानेदारों की भूमिका, शासन प्रबंध भी ख्यात में लिखा गया है।[21]

उपरोक्त ख्यातों में वहां के शासकों की जीवन घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन, स्थानीय भाषा, विभिन्न लेखकों, साहित्यकारों, वैवाहिक संबंधों आदि का वर्णन मिलता है। इसलिये राजस्थान के इतिहास के अध्ययन हेतु ख्यात ग्रन्थों का सर्वाधिक महत्त्व रहा है। राजस्थानी भाषा का मौलिक स्वरुप भी इन ख्यातों में दृष्टिगोचर होता है। इन ख्यातों में लिखे हुए गीत, कवित्त, दोहे, सन्दर्भ, एवं घटनाओं आदि का प्रयोग आधुनिक लेखकों, इतिहासकारों एवं साहित्यकारों ने अपने लेखन में भरपूर किया है। इस दृष्टि से चारण जाति द्वारा लिखा गया यह ख्यात साहित्य काफी समृद्ध है।

गाडण केशवदास: केशवदास की प्रमुख रचनाओं में 'गजगुण रुपक बंध', 'निसांणी' 'विवेक वारता', 'राव अमरसिंह रा दूहा', 'गजगुण चरित्र', 'महादेव जी रा छंद' आदि प्रमुख है। उपरोक्त रचनाओं में गाडण ने 'डिंगल भाषा' में वीर रस एवं चरित्र नायकों (जोधपुर नरेश गजसिंह, शूरसिंह) का अद्वितीय सौन्दर्य का सुन्दर व अलंकारिक वर्णन किया है। कवि ने प्रकृति के विविध उपादानों का वर्णन कर प्राकृतिक -सुषमा का भी परिचय दिया है। गाडण ने 'राजस्थानी भाषा' के 'डिंगल' में प्रयुक्त होने वाले सबसे प्रमुख अलंकार 'वयण सगाई'[22] का प्रयोग पर अपने काव्य का सौष्ठव का बढ़ाने का प्रयास किया है और इसी अलंकार की मदद से भक्ति, वीर और श्रृंगार-रस की त्रिवेणी बहाकर राजस्थानी साहित्य में अतुलनीय योगदान दिया है।

साँयाजी झूला: ईडर राज्य के निवासी और नरेश राव कल्याणमल के आश्रयदाता[23] सांयजी की प्रमुख कृतियां 'रुक्मणि हरण' एवं 'नागदमण'[24] की भाषा डिंगल से ओत-प्रोत है और यह श्रीकृष्ण भक्ति से सरोबार है। इन ग्रन्थों से राजस्थानी साहित्य में भक्ति की महिमा और बढ़ जाती है। श्रीकृष्ण के युग की सजीवता एवं पुष्टता का यह एक अच्छा नमूना है। राजस्थानी भाषा के डिंगल रुप में भुजंग प्रयात, दोहे, और छप्पय भाषा एवं साहित्य के स्वरुप को विस्तार देते हैं।

माधोदास दधवाड़िया: मर्यादा के परिचायक परुषोत्तम श्रीराम को

ISSN 2277-5587

चारण साहित्य में प्रतिबिम्बित करने का श्रेय चारण कवि माधोदासजी को है जिन्होंने 'राम रासो' की रचना कर राजस्थानी साहित्य में राम भक्ति का नया अध्याय जोड़ा। इस ग्रन्थ में उन्होंने श्रीराम कथा के माध्यम से समाज के मुख्य आदर्श कर्त्तव्य निष्ठा को उजागर किया गया है। राजस्थानी भाषा में दोहे पद्धरी, गाहा, मोतीदास, झूलणा, चौपाई जिअक्खरी आदि छंदों[23] का प्रयोग व वर्णन साहित्य की गरिमा और प्रासंगिकता को बढ़ा देते हैं।

कल्याणदास मेहड़: राजस्थानी भाषा के डिंगल स्वरुप को नई ऊंचाईया देने में कल्याणदास की 'राव रतनसिंह री वेलि' का भी महत्वपूर्ण योगदान है। 3 षटपदियों एवं 21 छन्दों में सृजित इस लघु काव्यकृति में वीर पुरुषों (बूंदी के रावराजा रतनसिंह, अकबर, जाहंगीर)[24] एवं ऐतिहासिक घटनाओं का समायोजन इसकी ऐतिहासिक उपयोगिता में अभिवृद्धि करता है। विविध उपमाओं (मान में दुर्योधन, दान में कर्ण, राजाओं में देवराज, देवों में कुबेर एवं पराक्रम में भीम व अर्जुन) का सुन्दर प्रयोग राजस्थानी साहित्य में महाकाव्य काल को जीवित कर देता है।

कृपाराम खिड़िया: चारण साहित्य में नीति विषयक लेखन का श्रेय मेड़ता परगने के ग्राम खराड़ी निवासी खिड़िया शाखा[25] के चारण कृपाराम को जाता है। अपने नौकर (राजिया) को संबोधित कर इन्होंने दोहे एवं सोरठो के रुप में 'राजिया रा सोरठा' नामक रचना की जिसमें 175 सोरठे है। डिंगल भाषा में रचित इन सोरठों की एक विशेषता यह है कि यह इतने सरल व सुबोध है कि प्रसाद गुण युक्त होने के कारण अनपढ़ लोग भी इनका मर्म समझ लेते है और बात बा में इनका प्रयोग करते हैं। धूर्तता, गुण, अराजकता, वचन, ईर्ष्या, स्वार्थ, वीरता, राजनीति आदि इनके सोरठों का विषय है।

किशनजी आढा: किशना जी राष्ट्रीय चेतना स्वर के कवि दुरसा आढ़ा के वंशज थे। इनका लक्षण ग्रन्थ 'रघुवरजसप्रकास' डिंगल छन्दशास्त्र की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में भगवान रामचन्द्र का यशोगान किया गया है। डिंगल, संस्कृत एवं हिन्दी के प्रमुख छंदों का प्रयोग इसमें किया गया है।

सांईदान सीलगा: मेवाड़ राज्य की झाड़ोली गांव के निवासी सांईदान ने वृष्टि विज्ञान पर अपना ग्रन्थ 'संवत् सार' लिखकर राजस्थानी भाषा के चारण साहित्य में एक नया सूत्रपात करने का प्रयास किया। 277 पद्यों की इस रचना में शिव-पार्वती संवाद द्वारा वृष्टि विज्ञान का वर्णन प्राप्त होता है।

जग्गा खिड़िया: बिलाड़ा के रामसानी ग्राम के निवासी जग्गा खिड़िया के ग्रन्थ 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री महेसदासौतरी' में वीर एवं श्रृंगार रस परिलक्षित होता है। खिड़िया ने जसवंतसिंह एवं औरंगजेब के युद्ध[26] का वर्णन करते हुए सजीव दृश्य उपस्थित किए है। युद्ध में रतनसिंह वीरगति को प्राप्त हुए थे इसलिए कवि ने इस ग्रन्थ का नाम उपरोक्तानुसार लिखा। रतनसिंह की मृत्यु के पश्चात उनकी रानियां सती होने के लिए सोलह श्रृंगार करती है।[27] इस श्रृंगार का आकर्षक वर्णन खिड़िया ने अपने ग्रन्थ में किया है। अत: यह कृति वीर एवं श्रृंगार रस का अनुपम ग्रन्थ है जो राजस्थानी के डिंगल साहित्य में अद्वितीय है।

करणीदान कविया: इनके द्वारा विरचित ग्रन्थ 'सूरजप्रकास' में जोधपुर के महाराजा अभसिंह व गुजरात के बिलन्द खां के बीच लड़े गये अहमदाबाद के युद्ध के वर्णन के साथ ही रामायण कथा भी दी गई है, लव-कुश से लेकर राजा पुंज की वंशावली तथा राजा जयचन्द से अजीतसिंह तक, सभी राजाओं का विवरण प्रस्तुत करती है।[28]

बखता: इनके द्वारा रचित 'महाराजा अभैसिंघ रा अहमदाबाद झगड़ा रा कवित्त' में सैन्य सज्जा, घोड़ो, हाथियों तथा ऊँटों की सजावट, नगर सौन्दर्य, प्राकृतिक सुषमा एवं शिकार आदि का वर्णन अत्यन्त सजीवता के साथ अभिव्यक्त हुए है।

खेतसी सांद: महाभारत की ऐतिहासिक कथा को राजस्थानी भाषा में पद्यानुवाद कर खेतसी ने अनुपम कार्य किया है। 'भाषा भारथ' डिंगल की श्रेष्ठ कृतियों में गिना जाता है। यह 13000 छंदों का एक भारी ग्रंथ है। मोतीदामं, हनुफत्ला, दूहा, कवित्त और चौपाई आदि अनेक छन्दों के प्रयोग से कृति अधिक आकर्षक एवं प्रभावशाली बनी है।

माधवदास बारहठ: 3 दोहों, 31 त्रिभंगी छन्द और 1 छप्पय में निर्मित 'अक्षर बावनी' विष्णु अवतारों भक्तों को मोक्ष प्रदान करने की घटनाओं का विवरण प्रदान करती है।

इसी संदर्भ में श्री एल.पी. तैस्सीतोरी की रचना "Bardic and Historical Survey of Rajasthan : A Deseriptive Catalogue of bardic and historical Manuscritpts वर्ष 1917 में प्रकाशित हुई अत्यंत वैज्ञानिक व महत्वपूर्ण रचना कही जा सकती है। उनका चारण साहित्य का यह प्रथम व्यवस्थित, क्रमबद्ध सर्वेक्षण भावी अनुसंधानों, शोध की पृष्ठभूमि बन सका।

ऐतिहासिक अनुसंधानों के इसी क्रम में वर्ष 1916 में प्रकाशित डॉ. हरप्रसारद शास्त्री "Search for bardic Literature in Rajasthan" नामक रचना महत्वपूर्ण प्रयास कहा जा सकता है।

वैदिक युग की अतिप्राचीन जाति चारण जो कि कृपाण एवं कलम की संवाहक, छात्र धर्म एवं इतिहास की संस्थापक, संस्कृति और हिन्दू धर्म की पुजारी जिसने वंश लेखन की एक मिसाल कायम की। यह जाति राजस्थान, गुजरात और मध्यप्रदेश के गांव गांव में निवास करती है। इन प्रदेशों के वंश लेखन, इतिहास और संस्कृति को विशिष्ट स्वरुप प्रदान करने में चारण जाति का महत्वपूर्ण योगदान है।

सामान्यत: चारणों की उपलब्धियों को उनके समूचे कृतित्व के जानकारी के अभाव में केवल साहित्यिक उपलब्धियों तक ही सीमित किया जाता रहा है। जबकि चारणों के निवास वाले सभी स्थानों विशेषकर राजस्थान और गुजरात के युग युगीन इतिहासकार चारण केवल मूक साक्षी ही नहीं बल्कि उसका सक्रिय भागीदार और निर्माता भी है। वंश लेखन सांकृतिक, धरोहर को सजोने, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक सभी क्षेत्रों में चारणों की उपलब्धियां अद्वितीय रही हैं। इसलिए भारतीय साहित्य में चारण काव्य का योगदान अतुलनीय है। चारण कवियों ने मातृभूमि की रक्षार्थ ही इस अनोखे साहित्य की सृष्टि की है। इनके साहित्य की

सर्वोपरि उपलब्धि यह है कि इन्होंने इतिहास की प्रमुख घटनाओं को बटोरकर एक मायने में इतिहास की धरोहर की रक्षा की है। इसलिए बहुआयामी चारण साहित्य राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास की एक अमूल्य निधि है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1 चारण साहित्य का इतिहास, डॉ. मोहनलाल जिज्ञासु, भाग 1, पृष्ठ 25, जैन ब्रादर्स, रातानाडा, जोधपुर, 2010

2 उपरोक्त पृष्ठ 26

3 संक्षिप्त चारण ख्याति, कविराजा मुरारीदान, पृ. 4

4 चारण साहित्य परम्परा: प्रोफेसर वीरेन्द्र स्वरुप भटनागर अभिनन्दन ग्रंथ, 'चारणों की उत्पत्ति', बद्रीदान गाडण, शोध पत्र, पृ. 59-60, (सं.) डॉ. श्यामसिंह रत्नावत, डॉ. कृष्णगोपाल शर्मा, राजस्थान अध्ययन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 2001

5 राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ. मोतीलाल मेनारिया, पृ. 23, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, तृतीय संस्करण, 2011

6 चारण साहित्य परम्परा: प्रोफेसर वीरेन्द्र स्वरुप भटनागर अभिनन्दन ग्रंथ, (सं.), निदेशकीय वक्तव्य, डॉ. श्यामसिंह रत्नावत, डॉ. कृष्णगोपाल शर्मा, पृ.4-5, राजस्थान अध्ययन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 2001

7 चारण दिग्दर्शन, शंकरसिंह आशिया, श्री बुधजी साहित्य सदन, भांडियावास, बाड़मेर, पृष्ठ 18, प्रथम संस्करण, 2013

8 उपरोक्त, पृष्ठ 37

9 कविराजा श्यामलदास का इतिहास लेखन, डॉ. गोपाल शरण गुप्ता, परिचयात्मक, पृ. 4, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2012

10 उपरोक्त, पृ. 4

11 उपरोक्त, पृ. 4

12 चारण साहित्य, शोध पत्र, अर्चना कालरा

13 राजस्थानी भाषा, साहित्य और संस्कृति, हरदान हर्ष, पृ. 10, आशीर्वाद पब्लिकेशन, जयपुर, तृतीय संस्करण, 2013

14 वीर रस रा दूहा, स्वामी नरोत्तमदास स्वामी, पृ. 49

15 चारण दिग्दर्शन, शंकरसिंह आशिया, पृ. 14, श्री बुधजी, साहित्य सदन, भाण्डियावास, बाड़मेर, 2013

16 चारण साहित्य परम्परा: प्रोफेसर वीरेन्द्र स्वरुप भटनागर अभिनन्दन ग्रंथ, (सं.), राजस्थान की ऐतिहासिक सामग्री में चारणी शैली की कवयित्रियों का योगदान, शोध पत्र, पृ. 234-239, राजस्थान अध्ययन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 2001

17 राजस्थान के ख्यातकार एवं उनके ग्रन्थों का तिथिक्रम, डॉ. हुकुमसिंह भाटी, राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर, पृ. 18, 1987

18 परम्परा, सं. डॉ. हुकुमसिंह भाटी, भाग 158-159, पृ. 15, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर, 2009

19 उपरोक्त, पृ. 22

20 उपरोक्त, पृ. 20

21 उपरोक्त, पृ. 25

22 मध्यकालीन चारण काव्य, डॉ. जगमोहनसिंह परिहार, मयंक प्रकाशन, जोधपुर, पृ. 14, 1979

23 राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ. मोतीलाल मेनारिया, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 108, 2011

24 वही, पृ. 108

25 परम्परा, सं. डॉ. हुकुमसिंह भाटी, भाग 158-159, पृ. 74, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर, 2009

26 शोध पत्रिका, कल्याणदास मेहडू री कही राव रतन री वेलि विषयक निबन्ध, सौभाग्यसिंह शेखावत, दिसम्बर, 1960

27 चारण साहित्य का इतिहास, डॉ. मोहनलाल जिज्ञासु, भाग 1, पृष्ठ 17, जैन ब्रादर्स, रातानाडा, जोधपुर, 2010

28 मध्यकालीन चारण काव्य, डॉ. जगमोहनसिंह परिहार, मयंक प्रकाशन, जोधपुर, पृ. 75, 1979

29 वही पृ. 82

30 वही, पृ. 121

 ISSN 2277-5587

ग्वालियर जिले के प्रमुख ऐतिहासिक स्थल

डॉ. शुक्ला ओझा
प्राध्यापक, डॉ. भगवत सहाय शासकीय महाविद्यालय, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

ग्वालियर संभाग के जनसंख्या की दृष्टि से सर्वाधिक बड़े जिले के रुप में ग्वालियर जिला सर्वाधिक विकसित एवं महत्वपूर्ण जिला है। यह जिला 25°24° से 25°21° उत्तरी अक्षांश तथा 77°44° से 78°54° पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। ग्वालियर जिला ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहरों का धनी क्षेत्र है। यहां की व्यापक ऐतिहासिक विरासत ही इसे पर्यटकों के आकर्षक का केन्द्र बनाती है। ग्वालियर तथा उसके निकटवर्ती ऐसे अनेक क्षेत्रों में, जो इस जिले की परिसीमा की भीतर आते हैं, अगणित ऐतिहासिक स्मारक एवं धरोहरें उपलब्ध हैं जो इसके अतीत के वैभव एवं गहनता को प्रस्तुत करती हैं। इस जिले के प्रमुख ऐतिहासिक स्थल निम्नानुसार हैं।

ग्वालियर जिले के ऐतिहासिक स्थल

- दुर्ग एवं दुर्ग स्थित स्थल
  - ग्वालियर दुर्ग
  - गूजरी महल
  - सहस्त्र बाहु मंदिर
  - तेली का मंदिर
  - मानमंदिर
  - जैन मूर्ति समूह
  - दाताबंदी छोड़ गुरुद्वारा
- मरणोपरान्त स्मारक
  - मौहम्मद गौस का मकबरा
  - तानसेन का मकबरा
  - लक्ष्मी बाई की समाधि
  - छतरियां
  - दरगाहें व मजारें
- अन्य ऐतिहासिक स्थल
  - जयविलास पैलेस
  - ऊषा किरण पैलेस
  - फूलबाग
  - मोती महल
  - बैजाताल
- ग्वालियर के निकटवर्ती ऐतिहासिक स्थल
  - तिघरा
  - पद्मावती
  - बरई का रंगमंच
  - अन्य स्थल

1. ग्वालियर दुर्ग एवं दुर्ग स्थित स्थल:

भारत वर्ष के भव्य, विशाल एवं सुदृढ़ दुर्गों में से एक जाना पहचाना नाम ग्वालियर दुर्ग का है। इस दुर्ग की लम्बाई लगभग तीन किलोमीटर तथा चौड़ाई एक किलोमीटर है। लगभग 300 फीट की ऊँचाई पर स्थित इस दुर्ग का निर्माण राजा सूरजसेन ने गालव ऋषि के कहने पर 275 ई. में करवाया था। कच्छपघात, परिहार शासन, तुर्क सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश के आक्रमणों के गवाह, तोमर शासन का साक्षी, मुगल बन्दीगृह के रुप में विख्यात यह दुर्ग ग्वालियर का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक स्थल है। इसकी प्राचीरों की मोटाई 3.5 मीटर एवं ऊँचाई 2.5 मीटर है।

पहले दुर्ग पर पहुंचने के लिये पाँच द्वार या रास्ते थे-उरवाही द्वार (पश्चिम) ग्वालियर द्वार (पूर्व), टोढ़ा पौर,

बादलगढ़ द्वार और झिलमिल खिड़की। वर्तमान में दो ही रास्ते, सामान्यतः पैदल जाने के लिये ग्वालियर द्वार तथा वाहनों से जाने के लिये उरवाही द्वार का प्रयोग होता है। इब्नेबतूता तथा मुगल सम्राट बाबर ने भी ग्वालियर दुर्ग की बहुत प्रशंसा की है। इस दुर्ग के प्रमुख आकर्षण इस प्रकार हैं :-

i. **गूजरी महल:** ग्वालियर के तोमर शासक मान सिंह तोमर ने गूजरी रानी मृगनयनी के आवास हेतु सन् 1512 ई. में इसका निर्माण करवाया था। लगभग 100 मीटर x 75 मीटर आकार वाले इस तीन मंजिला महल की बाह्य दीवारों पर विभिन्न रंगों की नक्काशी एवं नीले टाइल्स का प्रयोग दर्शनीय है।

ii. **सहस्त्रबाहु या सास-बहू का मंदिर:** ग्वालियर दुर्ग पर कच्छपघात शासक महीपाल ने सन् 1093 ई में इसका निर्माण करवाया था। भगवान विष्णु की सहस्त्र बाहुओं के नाम पर इसका नामकरण सहस्त्रबाहु हुआ। जिसका अपभ्रंश सास बहू का मंदिर नाम प्रचलित हो गया। 32 मीटर लम्बे तथा 22 मीटर चौड़े इस मंदिर की दीवारों की तक्षण कला से सज्जा विशिष्ट रुप से दर्शनीय है। राजा महीपाल द्वारा अपनी मां एवं रानी के लिये दो मंदिरों का निर्माण करवाया गया था। इस कारण भी सास-बहू का मंदिर नाम पड़ गया था।

iii. **तेली का मंदिर:** यह ग्वालियर दुर्ग के दक्षिणी भाग में 100 मीटर ऊँचाई पर कछवाहा शासक ने दक्षिणी रानी की स्मृति में किसी तैलंगानी दरबारी से बनवाया था। लगभग सन् 775-800 ई के मध्य उत्तर एवं दक्षिणी मिश्रित शैली में बने इस मंदिर का द्रविड़ शैली का पीपानुमा शिखर, नक्काशी तथा उत्तर भारतीय शैली के अलंकरण विशेष रुप से ध्यान आकर्षित करते हैं।

ग्वालियर दुर्ग (मानमंदिर पैलेस)

iv. **मानमंदिर:** दो मंजिल भूमि के नीचे तथा दो मंजिल भूमि के ऊपर बने इस आयताकार महल की दीवारों के रंग- बिरंगे टाइल्स, जालीदार झरोखे, गज-मानव - वृक्षों की आकृतियों से सज्जित दीवारें, कलात्मक एवं रंगीन पटियाओं की जुड़ाई वाली छतें इस महल को अद्भुत सौंदर्य प्रदान करती हैं तथा तत्कालीन स्थापत्य कला के सौंदर्य को प्रस्तुत करती हैं।

v. **जैन गुफा मूर्ति समूह:** दुर्ग की दीवारों को काटकर गुफानुमा लघु आकार के चैत्यों का निर्माण सन् 1440 से 1472 ई. के मध्य करवाया गया जिनमें पद्मासन तथा खड्गासन में चौबीस जैन तीर्थकरों की प्रतिमाएं इसे जैन अतिशय क्षेत्र घोषित करती हैं। एक पत्थर की बावड़ी वाली गुफा में बड़ी के साथ अनेक छोटी प्रतिमाओं वाला सबसे बड़ा जैन मूर्ति समूह जैनियों की आस्था का महत्वपूर्ण स्थल है।

vi. **दाता बंदी छोड़ गुरुद्धारा:** सिक्खों के छठवें गुरु हरगोविन्द सिंह जी यह बारह वर्षों तक मुगल सम्राट जहांगीर के कैदी के रुप में रहे। उनकी तथा उनके साथ बावन राजाओं की रिहाई की स्मृति में इस संगमरमर के विशाल भव्य गुरुद्धारे का निर्माण करवाया गया। जिसके गुम्बदों के कलश स्वर्ण निर्मित हैं। दो जल सरोवर तथा अनवरत लंगर की परम्परा वाले इस गुरुद्धारे की गणना सिक्ख तीर्थ स्थलों में की जाती है।

2. मरणोपरान्त स्मारक:

ग्वालियर के ऐतिहासिक स्थलों में स्थापत्य वैविध्य दर्शनीय है। यहां अनेक किले, महल, मन्दिर आदि के साथ प्रियजनों की स्मृति में मरणोपरान्त स्माकर बनाने की भी विशिष्ट परम्परा रही है जिनके

मोहम्मद गौस मकबरा

अन्तर्गत यहां अनेक मकबरे, समाधियाँ या छतरियां, दरगाहें हैं, जो पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र होती हैं।

i. **मोहम्मद गौस का मकबरा:** सत्तारी सिलसिले के सूफी संत, तानसेन के आध्यात्मिक गुरु के मकबरे का निर्माण मुगल सम्राट अकबर द्वारा करवाया गया था। मुगल तथा स्थानीय कला के मिश्रित इस मकबरे में चौकोर भवन, मध्य में विशाल कब्र, अर्धगोलाकार गुम्बद, छत पर मुगल कालीन चित्रकला एवं जालियों का अद्वितीय प्रयोग इसकी प्रमुख विशेषताएं है।

ii. **तानसेन का मकबरा:** भारत में महान गायक तानसेन की स्मृति में 16वीं सदी में इस मकबरे का निर्माण किया गया था। तानसेन की मृत्यु एवं अंतिम संस्कार लाहौर में हुआ था। बाद

में मुगल सम्राट अकबर के आदेश से तानसेन का शव ग्वालियर लाकर मोहम्मद गौस के मकबरे के निकट दफनाया गया एवं नक्काशीदार खम्भे, सुन्दर बारीक जालियों का कार्य इस मकबरे की विशेषतायें हैं। यहां प्रतिवर्ष तानसेन समारोह का आयोजन भी इसे विश्व भर के संगीत प्रेमियों की श्रद्धा का केन्द्र बनाता है।

iii. **झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई की समाधि:** अंग्रेजों के साथ घमासन युद्ध में घायल झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की ग्वालियर में 18 जून 1858 को मृत्यु हुई थी। स्वर्ण रेखा नदी के तट पर बाबा गंगादास की शाला के पास उनका अंतिम संस्कार किया गया था। वहीं समाधि पर सुन्दर स्मारक का निर्माण कर मराठा परम्परानुसार वहां तुलसी वृन्दावन की स्थापनाा कर दी गई थी। सन् 1957 में यहां रानी की अश्वारुढ विशाल अष्टधातु की प्रतिमा स्थापित की गई। यहां प्रतिवर्ष 18 जून को रानी की शहादत की याद में मेले का आयोजन किया जाता है तथा यह समाधि राष्ट्रभक्तों की आस्था का केन्द्र है।

iv. **छतरियाँ:** ग्वालियर सिन्धिया राजपरिवार की कर्मस्थली रहा है यहां स्थापत्य के क्षेत्र में मृत प्रियजनों की स्मृति में स्मारक बनाने की परम्परा रही है। सिन्धिया परिवार ने छतरियों के रुप में समाधि स्मारक बनाने की परम्परा को अपनाया। जय विलास पैलेस के पास एवं सावरकर सरोवर के सामने छत्री मंदिर स्थित है। यहां अम्मा महाराज अर्थात् महारानी गजराराजे का संगमरमर का स्मारक एवं आदमकद प्रतिमा है। इसके उत्तर में पुत्र जीवाजीराव का स्मारक एवं दक्षिण में पुत्रवधु महारानी विजयाराजे सिंधिया तथा उनके पुत्र माधवराव सिंधिया का स्मारक है। छत्री बाजार में जियाजी राव सिंधिया, दौलतराव सिंधिया और जनकोजी राव सिंधिया की छत्रियां दर्शनीय हैं। इनमें गुलाबी व सफेद पत्थरों का प्रयोग विशेष रुप से सराहनीय है। इन छतरियों में सर्वाधिक अलंकृत एवं सुन्दर स्मारक जयाजी राव सिंधिया का है जिसकी ऊंचाई 40 फीट की है। ये छतरियां स्थापत्य की सुन्दर नमूना हैं।

v. **प्रमुख दरगाहें:** ग्वालियर शहर में स्थित प्रमुख दरगाहों में ग्वालियर किले के निकट स्थित बाबा कपूर की दरगाह, यातायात नगर की मौलवी जरीफ साहब की 150 वर्ष पुरानी दरगाह तथा बुर्जगवार की दरगाह, बाले मियां की टेकरी वाली मजार, किले की तलहटी में विकास नगर में छिंगेशाह की सन् 1921 की दरगाह, साकेत नगर में गुर्जे वाले सैय्यद की मजार, लश्कर में मेहराबशाह दाता की भव्य मजार, आकाश वाणी के निकट कमाल खां की मजार आदि हिन्दू मुस्लिम एकता की जीवंत मिसाल हैं।

3. **अन्य ऐतिहासिक स्थल:**

ग्वालियर में दुर्ग स्थित स्थलों एवं मरणोपरान्त स्मारकों के अतिरिक्त और भी अनेक ऐतिहासिक स्थल स्थित हैं जो यहां के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के साक्षी रहे हैं।

i. **जयविलास पैलेस: जयविलासपरिसर** के आवासी महल का निर्माण सन् 1872 से 1874 ई के मध्य महाराजा जीवाजी राव सिंधिया ने 19 लाख रु. की लागत से करवाया था। 12,40,771 वर्गफुट क्षेत्रफल वाले इस महल को इटालियन आधार पर माइकल फिलोज की डिजायन पर बनाया गया था। महल के समक्ष सन् 1602 की अकबर कालीन तोप रखी है इसके अतिरिक्त यहां की चांदी की ट्रेन, कांच की रेलिंग, झाड़फानूस, दरबार हॉल के दरवाजे, छत पर सोने के वर्क लगी चित्रकारी, विशाल गलीचा इत्यादि दर्शनीय हैं।

ii. **ऊषा किरण पैलेस होटल:** जय विलास पैलेस के निकट नौ एकड़ में फैले इस महल, जो आज हैरिटेज होटल के रुप में स्थापित है, का निर्माण सन् 1902 में किया गया था। महाराज जीवाजी राव सिंधिया के विवाह के पश्चात वधू विजयाराजे के रुकने के लिये गेस्ट हाउस के रुप में यह प्रयुक्त हुआ था। इसमें सन् 1930 के रोजवुड के फर्नीचर, दो पंखों वाले सीलिंग फैन आज भी संरक्षित हैं।

iii. **फूलबाग:** सिंधिया राजपरिवार के आमोद-प्रमोद के लिये माधवराव सिन्धिया प्रथम द्वारा इसका निर्माण करवाया गया था। सन् 1922 में प्रिंस ऑफ वैल्स के आगमन के समय उनके द्वारा यह उद्घाटित हुआ था। इस परिसर में मोती मस्जिद, गोपाल मंदिर गुरुद्वारा, थियोसोफिकल भवन की एक साथ उपस्थिति ग्वालिवर के सर्वधर्म सद्भाव की सुन्दर प्रतीक है।

iv. **मोतीमहल:** सिन्धिया नरेश दौलतराव सिन्धिया के मोती प्रेम के कारण इसका मोतीमहल नामकरण हुआ है। इसकी बाह्य दीवारों पर उत्कृष्ट सफेद रंग लगाया गया था। इस पांच मंजिला भवन में अनेक विशाल चौक, लगभग 400 कक्ष, गुप्त मार्ग हैं। इसके दो दरबार हॉल पर राजपूत शैली तथा तीसरे पर यूरोपीयन शैली का प्रभाव स्पष्टत: झलकता है। मराठा शैली के भित्तिचित्रों के लिये यह विशेष रुप से प्रसिद्ध है।

v. **बैजाताल:** इस गोल आयताकार विशाल ताल का निर्माण दौलतराव सिन्धिया की महारानी बैजाबाई ने करवाया था।

इसके मध्य में विशाल मंच पर कलात्मक प्रस्तुतियां होती थीं। इसमें वर्षा के जल का संचयन वर्ष भर हेतु होता था तथा साथ ही दस किलोमीटर दूर मुरार नदी का जल भी इसमें पहुंचाने की व्यवस्था थी। मंच के चारों ओर छतरियां और सीढ़ियाँ बनी हैं।

4. ग्वालियर के निकटवर्ती ऐतिहासिक स्थल:

ग्वालियर जिले के वे ऐतिहासिक स्थल, जो ग्वालियर से बाहर निकटवर्ती क्षेत्र में अवस्थित हैं, वे भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

i. **तिघरा बाँध:-** ग्वालियर के दक्षिण-पश्चिम में लगभग 18 किलोमीटर की दूरी पर ग्वालियर नगर की पेयजल व्यवस्था का आधार ''तिघरा बांध'' स्थित है जो माधवराव सिंधिया प्रथम की कल्पना एवं इंजीनियर प्रेस्टन के प्रयासों का परिणाम है। साँक नदी के पठार पर यह बना हुआ है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय समुद्री विमान उतरने व ईंधन के लिये इसका प्रयोग ''माधव मेरिनोड्रम'' के नाम से किया जाता था। यह सुन्दर पर्यटन स्थल है।

ii. **पद्मावती या पवाया के स्थल:** ग्वालियर से दक्षिण-पूर्व दिशा में लगभग 60 किलोमीटर दूरी पर पवाया या पद्मावती नामक प्राचीन नगर सिंध एवं पार्वती के संगम स्थल पर स्थापित है। यह मूर्तियों, सिक्कों के साथ सिकन्दर लोदी द्वारा बनवाये दुर्ग एवं अन्य कई भवनों के लिये विख्यात है। यहां का धूमेश्वर महादेव का मंदिर अत्यन्त सिद्ध एवं प्राचीन है। यही धूमेश्वर पवाया इतिहास प्रसिद्ध पद्मावती था।

iii. **ग्राम बरई रंगमंच:** ग्वालियर के निकट बरई में महाराजा मानसिंह द्वारा बनवाया गया रंगमंच या रासलीला घर प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल है जो प्राचीन भारत के ओपन थियेटर के नाम से विख्यात है। यह भारत का प्राचीनतम खुला रंगमंच है। इसमें बीच में मंच बना हुआ है। तथा चारों ओर अनेक छोटे मंच भी बने हैं। जहाँ नाटकों के अन्य दृश्य एक साथ दर्शाये जाते थे।

iv. **अन्य स्थल:** ग्वालियर जिले के अन्य ऐतिहासिक स्थलों में लोहागढ़ की गढ़ी, सलवाई की गढ़ी, अजयगढ़ दुर्ग, मगरौरा दुर्ग इत्यादि हैं। मगरौरा में डबरा से 5 किलोमीटर की दूरी पर स्थित पुराना दुर्ग है जो नून नदी के तट पर स्थित है। जिसका लगभग 1100 वर्ष पुराना लम्बा इतिहास है।7 यहां के बांके बिहारी मंदिर एवं हनुमान मंदिर भी प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार ग्वालियर क्षेत्र में अनेक ऐतिहासिक स्थल हैं जो जीवंत इतिहास का पर्याय हैं। ये सभी स्थल बीते समय में घटित हुए धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक जीवन की झांकी प्रस्तुत करते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *बाजपेयी, कृष्णदत्त - मध्यप्रदेश में नये पुरातत्वीय अन्वेषण- पृष्ठ क्रमांक 6*
2. *दुबे, दीनानाथ- भारत के दुर्ग- पृष्ठ क्रमांक 124*
3. *द्विवेदी, हरिहर निवास- ग्वालियर के तोमर- पृष्ठ क्रमांक 15*
4. *लुआर्ड- जिला गजेटियर, ग्वालियर पृष्ठ क्रमांक 23*
5. *कुरैशी, नईम- ग्वालियर के आसपास- पृष्ठ क्रमांक 37*
6. *गर्दे, मो.ब.- दि साइट ऑफ पद्मावती- पृष्ठ क्रमांक 600*
7. *माहेश्वरी, हरिवल्लभ-ग्वालियर इतिहास, संस्कृति एवं पर्यटन-पृष्ठ क्र. 78*

ISSN 2277-5587

आतंकवाद और जनमत

डॉ.अलका भार्गव

प्राध्यापक ,महारानी लक्ष्मीबाई शा. उत्कृष्ट महाविद्यालय ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

आतंकवाद मुख्यतया कुछ व्यक्तियों के एक समूह द्वारा लोगों की निजी या सार्वजनिक सम्पत्ति एवं सविधाओं के खिलाफ किया गया अपराधिक कार्य है। आतंकवाद का उद्देश्य हिंसक गतिविधियों द्वारा समाज में उथल-पुथल मचाकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करना है।

वह उद्देश्य राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक कुछ भी हो सकते है। इनका मूल सिद्धान्त है, जानमाल को नुकसान पहुंचाकर जनता में भय उत्पन्न करना, जिससे जनता सरकार में अपना विश्वास खो दे। इसका परिणाम अस्थिरता से सरकार का पतन।[1]

कई बार आतंकवादी दो सम्प्रदायों में घृणा फैलाकर अपने उद्देश्य पूर्ण करने का प्रयास करते है। जैसे हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायों में टकराव, जहां भाईचारा है वहां, घृणा, भय, पृथकतावाद आदि विचारों को जन्म देना इनका मकसद होता है।

आतंकवादियो द्वारा विभिन्न साधनों का प्रयोग किया जाता है, यथा -

- **विमान अपहरण:** जिसमें समाज के धनिक गणमान्य नागरिक, विषेशज्ञ, ऊँची शिक्षा प्राप्त उच्च अधिकारी, नेता, राजनेता आदि होते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों को लेकर जनता बेहद संवेदनशील होती है। इस प्रकार के अपहरण से जनता भयभीत भी होती है। क्योंकि उच्च वर्ग यदि सुरक्षित नहीं है तो आम जनता की सुरक्षा खतरे में है, यह भाव उन्हें कायर बनाता है।

- **राजनैतिक उद्देश्यों से प्रेरित आतंकवाद:** इसमें वे प्रमुख घटनाऐं है जिनमें सियासत के भाव दिये है जिसे पृथक खलिस्तान की मांग 1982 के वर्षो में कट्टर पंथी सिक्खों द्वारा उठाई गई और पूरा देश भय के आतंक के साये तले आ गया। वास्तव में खलिस्तान की मांग सियासतदारों का सियासती खेल था। पर इन गतिविधियों के बीच पंजाब की समस्या पर विचार करें तो अरस्तू के क्रांति के विचार सामने आते हैं। जिसमें वह कहता है कि राज्य में किसी हिस्से का अनुपात से अधिक विकास एवं किसी हिस्से का पिछड़ जाना क्रांति को जन्म देता है।[2]

फिर यह सिलसिला जारी रहा। पृथक तेलंगाना, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड अब बघेलखण्ड ये सब बिसात पर बिछाई गई आतंकवादी गतिविधियां है। वास्तव में इसे जन आंदोलन का नाम दिया जाता है। राजनैतिक आंदोलन कहा जाता है। पर एक कदम आगे बढ़कर जब देश के मुस्लिम "मुस्लिम राष्ट्रवाद" से प्रेरित होकर मुस्लिम राष्ट्र दिशा में सक्रिय होते है एवं इस हेतु सही प्रत्यक्ष रास्ता न मिलने पर छापामार या छिपकर आतंक फैलाकर अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ते है तो इसे आतंकवाद कहा जाता है।

महाराष्ट्र मराठियों का नारा देने वाले क्यों नहीं इस श्रेणी में आते, देश की प्रदेश की सत्ता क्यों नहीं ऐसी घटनाओं पर अंकुश लगाकर इन बातों के प्रति उकसाने वाले नेतृत्व को राजद्रोह की संज्ञा में रखते है। हिंसा

ISSN 2277-5587

या भय उत्पन्न करना क्या आतंकवादी गतिविधियों में नहीं आता? सरकार में बैठे नुमाइन्दें भी स्वीकार करते है पर इसके पीछे के जन सहयोग से डरते है। यदि देश की जनता की सोच इस तरह विकसित हो रही है तो फिर आतंकवादी गतिविधियों को अन्जाम देने वाले इस्लामिक आतंकवादी पर ही क्यों उंगली उठाई जाती है। वे बम बनाते है, जान लेते हैं, अपहरण करते है, बदले में धर्म जेहाद के नाम पर अपना धर्म, हुकूमत पर स्थापित करना चाहते है। तोड़-फोड़ निष्कासन ये सब तो अब राज्य के विभिन्न प्रदेशों में होता है। इससे दो कदम की दूरी पर ही बम बनाना और भय, हिंसा से आतंक स्थापित करना है।

बात यह है कि मैं इन सब बातों की समर्थक नहीं, बस एक प्रश्न समाज के सामने खड़ाकर रही हूँ कि हम वास्तव में चाहते क्या है? दोहरे मापदण्ड जिन्दगी को मूल्य परक नहीं बनाते है और ना ही देश, समाज व प्रदेश को।

क्या गांधी जी के असहयोग, सविनय, सत्याग्रहक के साधनों में हिंसा थी? यदि ईमानदारी से कहे तो धरना, सत्याग्रह हड़ताल, सविनय अवज्ञा, स्वदेशी आदि शांति के साधन है तो गांधी के नाम पर आंदोलनों में हिंसा, भय कहा से आता है? तब क्या हम तिलक के उग्रवाद के समर्थक है? जिसमें नारा था ''स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा''।

तब तिलक का राष्ट्रवाद विदेशी सत्ता के लिये था। किन्तु आज का उग्र आतंकवाद किसके विरुद्ध है। स्वदेश के विरुद्ध? तब चाहे वह शिव सैनिक, संस्कृति बचाओं का नारा देकर आतंकवाद फैलाये, या हिन्दुत्व के नाम से हिन्दु महासभा या सिमी के नाम पर मुसलमानों या इस्लाम का वास्ता देने वाले मुसलमान सभी प्रतिबंधित होने चाहियें। जैसा कि अरस्तु ने कहा है कि ''राज्य में विजातीय तत्वों में संघर्ष या मतभेद क्रांति या आतंक को जन्म देकर शासन का तख्ता पलट देते हैं।''[3]

अत: देश के विभिन्न विजातीय तत्वों में कम से कम प्रतिष्ठित गणमान्य नागरिकों के मध्य तनाव, संघर्ष व मतभेद नहीं पनपने देना चाहिये।

क्या हिन्दुस्तान पर मुसलमानों का लम्बा शासन नहीं रहा? क्या स्थापत्य के सन्दर व अद्वितीय बेजोड़ नमूने देकर उन्होंने देश भारत का नाम ऊंचा नहीं किया? तब भेदभाव से न सोचकर, तोड़फोड़ हिंसा, भय जन हानि या हिंसक प्रदर्शन करने वाले सभी प्रतिबंधित जब होंगे तब ही देश में शांति की बात सोच सकते हैं। मैकियावली ने ठीक ही कहा है कि ''जनता आने वाली अच्छी बुरी बातों का पता आश्चर्यजनक ढंग से लगा लेती है और इस तरह उसके निर्णय हमेशा सत्य या सत्य के नजदीक होते हैं''।[4]

तब वह यदि जनता आतंकवादियों को पनाह देती है तो केवल गरीबी कारण नहीं होता, या लालच, लोभ नहीं होता वरन् उसके पीछे कहीं उनका भी आक्रोश होता है। इस देश में हिन्दू मुसलमान भाईचारे के साथ लम्बे समय तक रहें, हमारी सोच जब अन्तर करती है, तो दोनों तरफ से कभी मानसिक कभी शारीरिक हिंसा होती है। आज भी भाईचारा है, पर बढ़ती आतंकवादी गतिविधियों ने कही दरार, कहीं सोचने पर विवश किया है। यही पृथकवादी ताकतें चाहती है। इससे सिर्फ देश कमजोर होगा।

चाहिये यह कि कोई भी मजहब हो, जाति, सम्प्रदाय, भाषा हो सब यदि आतंकवादी दायरे में बेखौफ लाये जायें तो देश में जनमत भी सरकार और शांति के पक्ष में बनेगा अभी हाल में ब्रिक्स देशों के सम्मेलन में माननीय वर्तमान प्रधानमंत्री मोदी जी ने अपने (भाषण में) उद्बोधन में यह बात कही है कि ''आतंकवाद का कोई धर्म नहीं होता; वह विरोधी; अपराधी प्रवृतियों का वह नशा है जो व्यक्ति को हमेशा हिंसा पर उतारु रखता है। इसलिये हमें यह समझना होगा आतंकवादी सिर्फ आतंकवादी होता है। वह हर जगह, हर स्थान पर आतंकवादी है; चाहे वह अमेरिका का संदर्भ हो या फिर कश्मीर में आतंकवादी का संदर्भ हो।

इसके बाद जी-20 देशों के सम्मेलन में अपनी बात दोहराते हुये माननीय प्रधानमंत्री जी ने फिर यही बात कही है कि आतंकवाद अच्छा या बुरा नहीं; वरन सिर्फ बुरा होता है और उसका कोई वतन नहीं होता। अत: विश्व के सभी देशों की सरकारों को इस विषय पर एक राय रखते हुये इसे पनाह नहीं देनी चाहिये। आतंकवादी तरीके से उद्‌दश्य की पूर्ति नहीं वरन वतन ही नष्ट हो जाते है। अत: सरकारों के साथ-साथ विश्व के सभी देशों के नागरिकों को भी आतंकवादी ताकतों के विरुद्ध एकजुट होना पड़ेगा।

यदि ऐसा हुआ तो यह विश्वशांति का कारण बनेगा और भारत के संदर्भ में सोचे तो।

यदि ऐसा नहीं होता है तो एक अरब की जनसंख्या का भारत बटता जायेगा, बंटी हुयी जनता देश को कमजोर बनायेगी और विदेशी ताकतों को पुन: देश पर शिकंजा जमाने के लिये भूमि, वातावरण तैयार कर देगी।

हाँ! यहां में पुन: कहना चाहूंगी कि आतंकवाद किसी देश में जनसहयोग के अभाव में नहीं पनप सकता। अत: जनता के साथ समानता का व्यवहार स्थापित करके ही जड़ तक पहुंचा जा सकता है और इसको देश से दूर किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *डॉ. पुखराज जैन-भारतीय शासन एवं राज. पृष्ठ 813-14*
2. *हरिदत्त वेदालंकार-पाश्चात्य राजनैतिक विचारधारा पृ. 106*
3. *हरिदत्त वेदालंकार-पाश्चात्य राजनैतिक विचारधारा पृ. 106*
4. *हरिदत्त वेदालंकार-पाश्चात्य राजनैतिक विचारधारा पृ. 212*

 ISSN 2277-5587

कार्य के परिवर्तित आयाम : सामाजिक ऐतिहासिक विवेचन

डॉ. दिनेश गुप्ता
व्याख्याता , राजकीय महारानी सुदर्शन कन्या महाविद्यालय ,बीकानेर

shodhshree@gmail.com

औपनिवेशिक एवं उत्तर औपनिवेशिक भारतीय सामाजिक संगठन एवं समाज व्यवस्था में श्रम विभाजन की प्रक्रियाओं में गतिशीलता व्याप्त होती है। चूंकि श्रम विभाजन की यह गतिशीलता भारतीय समाज के सभी क्षेत्रों में अनुभव की गई है अत: औद्योगिक प्रतिष्ठान भी इससे अछूते नहीं रहे है। स्वचालन और नवाचार की प्रौद्योगिकीय प्रविधियों ने श्रम के मूल स्वरुप को भी परिवर्तित किया है इसलिए औद्योगिक प्रतिष्ठानों में श्रम की प्रकृति एवं श्रम-विभाजन का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है। समाजशास्त्र में इस तरह के अध्ययन ''कार्य का समाजशास्त्र'' और ''प्रबन्धन का समाजशास्त्र'' नामक शाखाओं को महत्वपूर्ण बना देते है।

कार्य ऐतिहासिक कालक्रम:

कार्य मानव जाति की महत्वपूर्ण आधारभूत क्रिया है यह ''संस्थापक पूंजी'', ''जीवन साधन'' और मनुष्य के अस्तित्व के लिए आवश्यक संसाधनों के साथ अपना गहन सम्बन्ध रखता है। कार्य का इतिहास मानव जाति के इतिहास के साथ शुरु होता है या यह कह सकते है कि अपना अस्तित्व बनाये रखता है। उद्‌विकासीय प्रक्रियाओं ने कार्य की प्रकृति में समय के साथ-साथ परिवर्तन किये है तथा इसको विशिष्ट, जटिलकारी आयामों में वर्गीकृत, परिमार्जित किया है। मानव अपने जीवन स्तर का प्रारम्भ जिस युग से करता है उसे हम आदिम अवस्था या सरल समाज कहकर सम्बोधित करते है। इस अवस्था या स्तर में मानव संग्राहक, आखेटक और पशुपालन जैसे कार्यो के आधार पर ही अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। मानव अपनी विकसित होती बुद्धि, ज्ञान और क्षमता के आधार पर कार्य की प्रकृति को परिवर्तित करता है तथा कृषि कार्यो को शुरु करता है ये कृषि कार्य मानव जाति को एक नई संस्कृति प्रदान करते है जिसे ''कृषिसंस्कृति'' कहा गया साथ ही मानव ने अपनी सामाजिक संरचना को, सामाजिक संगठन को, सामाजिक व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान किया।

कृषि कार्यो की शुरुआत से एक नई संस्कृति अस्तित्व में आती है जिसने मानव जीवन के भौतिक-अभौतिक पक्षों को नया आधार दिया। लेकिन इसका यह आशय नहीं है कि आखेटन, संग्राहण ओर पशुपालन की प्रवृतियां नष्ट हो गई थी। सम्पूर्ण वैश्विक संरचना में कृषि से कृषक वर्ग का आर्विभाव हुआ है। प्राचीन सभ्यता होने के कारण भारत में यह जाति के साथ जुड़ गया है, सामाजिक परिवर्तन प्रकृति की अपरिहार्यता है अत: इस कृषि अर्थव्यवस्था के स्तर में भी परिवर्तन शुरु होता है जिसकी शुरुआत इतिहास में पुन:जागरण से मानी जाती है लेकिन इससे पूर्व कृषि के साथ हस्तकला में अतकनीकी श्रम (कुटीर उद्योग) की शुरुआत हो चुकी थी। कार्य की प्रकृति का स्वरूप यहां श्रम ले लेता है। ईधन की नवीनी प्रविधियों ने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया जिससे कार्य के इस स्तर में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होते है।

16वीं एवं 17वीं शताब्दी में यूरोपीय देशों में औद्योगिक क्रान्ति ने अधिशेष आधारित अर्थव्यवस्था को जन्म दिया अर्थात उत्पादन बढ गया, जिसके लिए उपभोग की मात्रा बढायी जाने लगी लेकिन उपभोग की मात्रा

भी एक सीमित स्तर तक ही बढ़ायी जा सकती है। अतः इसके विकल्प खोजे गये और वह विकल्प था उपभोक्ताओं की संख्या बढ़ाना परन्तु यूरोपीय देशों की जलवायु का ठण्डा होना साथ ही एक देश में उपभोक्ताओं की संख्या तत्काल नहीं बढ़ायी जा सकती। अतः इन्हीं तथ्यों ने यूरोपीय देशों के बाहर स्थित देशों में अपना व्यापार शुरु करना ही सही अर्थों में उपभोक्ताओं की संख्या बढ़ाता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुये यूरोपीय देशों ने एशियन और अफ्रीकन महाद्वीपों के विभिन्न देशों में व्यापार की शुरुआत की जिसे उपनिवेशवाद कहां गया तथा इसी उपनिवेशवाद प्रक्रिया को अमर्त्य सेन ने वैश्वीकरण की शुरुआत कहा है। यहाँ यह कहना तर्कसंगत होगा कि इसी स्तर से वैश्वीकरण की प्रारम्भिक शुरुआत होती है जिसमें कार्य के परिवर्तित प्रतिमान अपनी महत्वपूर्ण भूमिका रखते है।

कुछ यूरोपीय देशों (ब्रिटेन,स्पेन, पुर्तगाल एवं फ्रान्स) ने एशियन और अफ्रीकन देशों में जाकर एक तरफा व्यापार शुरु किया और व्यापार के साथ-साथ ही सामाजिक, सास्कृतिक, राजनैतिक पक्षों में भी अपना प्रभाव बढ़ाना शुरु किया। एक तरह से वे अपनी सत्ता स्थापित करना चाहते थे तथा उन्होने उसे स्थापित भी किया। इस सत्ता का वास्तविक हित केवल आर्थिक लाभ ही था। यूरोपीय देशों ने इन देशों (औपनिवेशिक देश) के प्राकृतिक संसाधनों और मानवीय संसाधनों (श्रम) पर अपना एकाधिकार स्थापित किया। उदाहरण के लिए इन देशों से कच्चे माल को यूरोपीय देशों में लाया जाता यहां स्थापित उद्योगों में इनसे उत्पाद बनाये जाते तथा इनको पुनः औपनिवेशिक देशों में भेज दिया जाता और इनके बाजार मे आने से यूरोपीयन देशों को उपभोक्ता मिल जाते। अतः श्रम, कच्चा माल इन्ही औपनिवेशिक देशों का होता तथा लाभ यूरोपीय देशों को होता था। यह औपनिवेशिक संस्कृति कार्य की परिवर्तित प्रकृति का परिणाम थी। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया की बात करना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि श्रम विभाजन के परिवर्तित स्वरुप ने विश्व की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाओं को परिवर्तित किया। दूसरे शब्दों में यह कह सकते है कि औपनिवेशिक संस्कृति औद्योगिक क्रान्ति या उद्योगवाद का ही परिणाम थी।

औद्यौगीकरण, अनाद्यौगीकरण एवं भारतीय समाजः भारत के सन्दर्भ में औद्यौगीकरण की बात की जाये तो इसकी उत्पति या विकास को औपनिवेशिक संस्कृति का ही परिणाम मान जाता है। 17वीं शताब्दी के प्रथम व द्वितीय दशकों में ब्रिटिश व्यापारियों के संगठन ''ईस्ट इण्डिया कम्पनी'' ने भारत में व्यापारिक बस्तीयों की शुरुआत की जिसके लिए ''फैक्ट्री'' शब्द का प्रयोग किया। इन फैक्ट्रियों में मूलतः कच्चे माल को ब्रिटेन भेजने तथा वहां के उद्योगों से निर्मित पक्के माल को पुनः भारत के बाजार में भेजने या खपाने का कार्य किया जाता था। अतः जब औद्यौगीकरण से सम्पूर्ण वैश्विक संरचना परिवर्तित हो रही थी वहीं भारत में औद्यौगीकरण की प्रक्रिया चल रही थी यहां पर कुटीर उद्योग बन्द हो गये व ब्रिटिश कम्पनीयों ने नये उद्योगों को यहां निर्मित नहीं होने दिया। इन्ही तथ्यों से पहली बार अवगत दादा भाई नौरोजी ने अपने ''धन निकास'' के सिद्धान्त द्वारा समझाया है।

दादा भाई नौरोजी के धन निकास सिद्धान्त की बात करना इसलिए भी आवश्यक है कि यह सिद्धान्त औपनिवेशिक संस्कृति के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पक्षों की व्याख्या करता है धन निकास को नौरोजी ''अनिष्टो का अनिष्ट'' की संज्ञा देते है तथा भारत में सामाजिक समस्याओं (निर्धनता, बेरोजगारी) को इसका परिणाम मानते है। धन निकास से देश में आधारभूत संरचना का विकास नहीं हो सका, पूंजी के अभाव में औधागिक विकास की बात करना भी गलत होगा वहीं ब्रिटेन में भारतीय धन के निकास से औद्योगिक विकास तीव्र गति से हुआ। एम.एन. श्रीनिवास ने अपने पश्चिमीकरण के मॉडल में जिन अधुनातन प्रवृतियों या प्रक्रियाओं की बात की उनमें औपनिवेशिक संस्कृति के उस दमन चक्र की अवहेलना की गई जिसे समाजशास्त्रीय अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए। उदाहरण के लिए भारत में रेल विकास। उद्भव की बात करें तो भारत में रेल विकास 1853 में मुम्बई से थाणे के मध्य प्रथम रेल परीक्षण से जोडा जाता है। जिसका आधार तलाशे तो ज्ञात होगा कि ''1846 में लार्ड हार्डिग ने रेलवे की योजना बनाई ताकि यदि कोई विद्रोह हो अथवा साम्राज्य को भय हो तो शीघ्रातिशीघ्र दबाया जा सके'' इसी प्रकार 1853 में डलहोजी ने कहा कि इंग्लैण्ड को कपास की आवश्यकता है और यदि यहां(भारत में) परिवहन व्यवस्था हो जाये तो भारत से पर्याप्त मात्रा में कपास आ सकती है। इसी समय कार्ल मार्क्स ने डेली ट्रिब्यून में लिखा है कि ''यदि आप एक देश में जहां लोहा और कोयला है एक रेलवे इंजन का प्रयोग कर दे तो आप उसे इसको बनाने से नही रोक सकेंगे। आप एक बडे देश में रेल का जाल बिना उसके उद्योग को बढ़ने का अवसर दिये हुये नही रख सकते... इसलिए रेलवे व्यवस्था ही भारत के आधुनिक युग का अग्रदूत बन जायेगी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात रेलवे के विकास तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उधोगों को प्राथमिकता दिये जाने अर्थात भारत में औद्योगीकरण की बात करें तो श्रम विभाजन का नया स्वरुप देखने को मिलता है जिसकी उत्पति भारतीय सामाजिक संरचना में वर्ग व्यवस्था के रुप में दिखाई देती है। आन्द्रे बेतई ने श्रमिकों को कृषको का पूरक माना है, दोनो की सामाजिक प्रस्थितियाँ तो समान है परन्तु कार्य की प्रकृति का स्वरुप अन्तर रखता है यह अन्तर उस समय और भी बढ़ जाता है जब हम तकनीकी (कुशल श्रमिक) श्रम की बात करते है। अतः यह भी महत्वपूर्ण तथ्य है कि श्रमिक वर्ग की उत्पति मुख्यतः कृषक वर्ग से ही होती है। लेखक के स्वयं के शोध कार्य से भी इसी तरह के निष्कर्ष सामने आये है।

कार्य की प्रकृति के परिवर्तित स्वरुप ने भारतीय समाज व्यवस्था के उन संगठनात्मक घटकों को भी परिवर्तित किया जिसे हमें संयुक्त परिवार प्रणाली और जाति व्यवस्था के नाम से जानते है। एकल परिवार प्रणाली जिसे हम नगरीय समुदायों की विशेषता मानते है मूलतः कार्य की प्रकृति के परिवर्तित स्वरुप का ही भाग है। जब कृषि आधारित व्यवस्था थी या यह कहे कि तकनीक का अभाव था तो हम सहयोग आधारित जीवन शैली को अपनाते थे जिससे संयुक्त परिवार प्रणाली का उद्भव होता है परन्तु तकनीक ने या उद्योगों ने कार्य की प्रकृति के स्वरुप को परिवर्तित किया तथा कार्यो को सीमित कर दिया अतः अब हम सहयोग आधारित जीवन शैली की

ISSN 2277-5587

आवश्यकता को कम महसूस करते है फलस्वरुप भारतीय समाज में एकल परिवार प्रणाली वृहद् स्तर पर अपना अस्तित्व रखने लगी है परन्तु यह अस्तित्व या संयुक्त परिवार प्रणाली में यह परिवर्तन मूलत: संरचनात्मक स्तर पर ही दृष्टिगोचर होता है। प्रकार्यात्मक स्तर पर आज भी संयुक्त परिवार प्रणाली अपना अस्तित्व तो रखती है लेकिन यह तथ्य भी उतना ही सही है कि सामूहिकता एवं सहयोग में कमी आयी है।

भारतीय समाज व्यवस्था की अद्वितीय संस्था जाति भी कार्य की परिवर्तित प्रकृति से प्रभावित होती है। जाति के स्थानीय व क्षेत्रीय प्रतिमानों में परिवर्तन हो रहे है। जाति का एक वर्ग के रुप में अभ्युदय, अर्न्तजातिय विवाहो की बढती संख्या व उनको दी जा रही सामाजिक व कानूनी मान्यता। कार्य की परिवर्तित प्रकृति, नये व्यवसायों का सृजन करती है फलस्वरुप जाति के परम्परागत पेशे सम्बन्धी चुनाव के आधार भी समाप्त हुये है लेकिन यह भी सही है कि जाति में पूर्ण परिवर्तन नही हुआ। जातियों ने लम्बवत गतिशीलता की बजाय क्षेत्रीय गतिशीलता को अपनाया है। कार्य की प्रकृति के परिवर्तित स्वरुप ने जातियों का वर्गो में रुपान्तरण, जनजातियों का औद्योगिक व्यवस्था में प्रवेश, कृषको का श्रमिको में रुपान्तरण और संयुक्त परिवार प्रणाली का एकल परिवार प्रणाली में संरचनात्मक परिवर्तन भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन को समझने में सहायक है।

अति-उद्योगवाद एवं भारतीय समाज: औद्योगिक अवस्था में या स्तर में, कार्य की प्रकृति का स्वरुप परिवर्तित होकर श्रम का स्थान ले लेता है वही अतिउद्योगवाद में कार्य का स्वरुप पुन: परिवर्तित होता है। यह श्रम को शारीरिक की बजाय मानसिक स्वरुप में परिवर्तित करता है तथा उत्पादन की जगह सेवा को प्रमुख स्थान देता है अर्थात अतिउद्योगवाद एक ऐसी अवस्था या स्तर है जिसमें तकनीकी विशेषज्ञों और पेशेवर व्यक्तियों के सामाजिक समूह अत्यन्त महत्वपूर्ण होते है तथा वस्तुओं का निर्माण करने वाले उद्योगो की अपेक्षा सेवा उद्योगो की प्राथमिकता रहती है। यहां पूँजी का स्थान ज्ञान ले लेता है अर्थात उत्पादन का चरित्र बदल जाता है ज्ञान ही शक्ति हो जाता है। अतिउद्योगवाद ने समाज व्यवस्था में बहुलतावादी दृष्टिकोण को जन्म दिया। शक्ति, सत्ता और सामाजिक गतिशीलता ज्ञान आधारित हो जाते है इन्ही समाजों को आन्द्रे जार्ज ने "विभाजित समाज" की संज्ञा देते है। लेकिन समाज में बेरोजगारी की अति व्यापकता भी होगी। सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक संगठन एवं सामाजिक संरचना में परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होगा, परिवार एवं विवाह की संरचना में भी परिवर्तन आयेंगे परिवार जो कि एकल स्वरुप को ग्रहण करता है इस अवस्था में सन्तान की अवधारणा से वंचित हो जायेगा तथा सन्तान का विकल्प गोद सम्बन्ध ले सकते है, वही वैवाहिक सम्बन्धों का स्थान, साथ-साथ रहने के सम्बन्ध ले सकते है ये दोनो पक्ष भी सेवा से जुड जाते है।

कार्य के परिवर्तित स्वरुप ने व्यक्ति को प्राथमिक क्षेत्र से द्वितीयक क्षेत्र और फिर तृतीयक क्षेत्र (सेवा क्षेत्र) आधारित समाज व्यवस्था का हिस्सा बना दिया तथा सभी क्षेत्रों में कार्य की परिवर्तित प्रकृति समाज एवं उसकी संस्कृति के विभिन्न अंगों में व्यापक परिवर्तनों को उत्पन्न करती है। अत: प्रस्तुत लेख मानव सभ्यता का विकास एवं समाज की संरचना एवं संस्कृति को कार्य की प्रकृति के आधार पर समझने के प्रयास पर बल देता है साथ ही शोध कार्यो को अपने में समाहित करता हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *टाफलर, एल्विन : "फ्यूचर शोक" लंदन और सिडनी, पान बुक्स, (1971)*
2. *टाफलर, एल्विन : "द थर्ड वेव" लंदन और सिडनी, पान बुक्स, (1980)*
3. *नौरोजी, दादाभाई : "पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रुल्स ऑफ इंडिया", लंदन (1876)*
4. *मूर, विल्बर्ट ई. : "इम्पैक्ट ऑफ इंडस्ट्री" न्यू देहली, प्रिटिंग हाल (1968)*
5. *अमीश, माइकल जे, : "माईनाइजेशन एण्ड सौश्यल स्ट्रक्चर फैमिली, कास्ट एण्ड क्लास इन जमशेदपुर" ई.पी.डब्ल्यू 4, 1217-1224, (1969)*
6. *बैल, डेनियल: "द कमिंग ऑफ पोस्ट इंडस्ट्रीयल सोसायटी" न्यू देहली, अरनोल्ड हैलमान पब्लिकेशंस, (1974)*
7. *गोरे, एम.एस.: "अरबेनाइजेशन एण्ड फैमिली चेन्ज" बाम्बे, पापुलर प्रकाशन, (1968)*
8. *लैम्बर्ट, आर.डी.: "वर्क्स, फैक्ट्रीज एंड सोश्यल चेन्ज" बाम्बे, एशिया पब्लिशिंग हाउस, (1963)*
9. *स्नाइडर ई.वी. : "इन्डस्ट्रीयल सोश्यलॉजी" न्यूयार्क, मैक्गेन हील, (1957)*
10. *सिंगर,मिल्टर : "द इंडियन फैमिली इन मॉडर्न इन्डस्ट्री इन स्ट्रक्चर एण्ड चेन्ज इन इंडियन सोसायटी" शिकागों, एलडाइम पब्लिशिंग कम्पनी, (1981)*
11. *आन्द्रे जार्ज: "फैयरवेल टू द वर्किंग क्लास एन ऐसे आन पोस्ट इन्डस्ट्रीयल सोश्योलीज्म" ट्राम एम. स्नोस्टर लंदन प्लूटो प्रेस, (1982)*
12. *कुमार, कृष्ण: "फ्रोम पोस्ट इन्डस्ट्रीयल टू पोस्ट मार्डन सोसायटी" जयपुर, रावत पब्लिशिंग (2005)*
13. *सिंह, योगेन्द्र: "कल्चर चेन्ज इन इंडिया" जयपुर, रावत पब्लिशिंग (2005)*
14. *बेतई, आन्द्रे: एसे इन कम्परेटिव सोश्योलोजी, दिल्ली आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, (1987)*
15. *शर्मा, रामविलास : मानव सभ्यता का विकास, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर, (1956)*
16. *श्रीनिवास, एम.एन.: "आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन" दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, (1998)*
17. *मार्क्स, कार्ल: "साम्यवादी घोषणा पत्र" मास्को, प्रगति प्रकाशन, (1975)*
18. *गुप्ता, दीपाकार : "लर्निंग टू फोरगेट" देहली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, (2007)*

भारतीय विकास की धुरी ग्रामीण विकास

डॉ. (श्रीमती) वसुधा अग्रवाल

प्राध्यापक , डॉ. भगवत सहाय शासकीय महाविद्यालय,
ग्वालियर(मध्य प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

ग्रामीण विकास वर्तमान समय की बुनियादी आवश्यकता है। गाँवों की सम्पन्नता से ही राष्ट्र की प्रगति संभव है। ग्रामीण विकास ही राष्ट्रीय विकास का प्रमुख आधार स्तंभ है। इसके कई कारण हैं। शहरीकरण की गति तेज होने बावजूद अभी भी हमारी आबादी का बड़ा हिस्सा गाँव में रहता है। कई ऐतिहासिक कारणों से ग्रामीण भारत विकास की दौड़ में पीछे रह गया है। हम संतुलित विकास के पक्षधर हैं। हम नहीं चाहते हैं कि 'इण्डिया' और 'भारत' के बीच की दूरी बढ़ जाये। इसके साथ ही एक कारण और भी है जो यह स्पष्ट करता है कि त्वरित ग्रामीण विकास के बिना राष्ट्रीय विकास संभव नहीं है। हमें यह समझना होगा कि जब तक बहुसंख्यक भारतीयों की क्रयशक्ति नहीं बढ़ेगी, तब तक भारतीय अर्थव्यवस्था की मांग नहीं बढ़ेगी और इसके बिना विकास की गति धीमी ही रह जायेगी और 8 प्रतिशत विकास की दर को हासिल करना मुश्किल हो जायेगा।

वर्तमान में कई औद्योगिक तथा उपभोक्ता वस्तुयें ऐसी हैं, जिनकी मांग ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ रही है। ग्रामीण भारत के कई इलाकों में सम्पन्नता बढ़ रही है। यह समृद्धि पूरे ग्रामीण समाज में भारतीय अर्थव्यवस्था को एक स्थायी ताकत देगी। देश में ऐसे ग्रामीण अंचल हैं जहाँ अच्छी सड़कें, अच्छे मकान, स्कूल, अस्पताल का ढाँचा और आधुनिक विज्ञान तथा तकनीकी के आधार पर चलाये जाने वाले कृषि और कृषि आधारित छोटे बड़े उद्योग दिखायी देते हैं। यही ग्रामीण भारत में विकास की असीम क्षमतायें हैं, अनगिनत संभावनायें हैं जिन्हें मूर्तरूप देने से हमें अपने देश की तस्वीर और तकदीर बदल देंगें।

सारणी क्रमांक - 1

'भारत में गरीबी की स्थिति'

वर्ष	गरीबों की संख्या		
	ग्रामीण (दस लाख)	शहरी (दस लाख)	कुल (दस लाख)
2007 - 08	244.0	76.3	320.4
2008 - 09	193.2	67.0	260.2
2009 - 10	220.9	80.8	301.7

स्रोत :- भारतीय अर्थव्यवस्था

विकसित ग्रामीण भारत की कई सफलतायें हमारे सामने है। इसी की बदौलत भारत अनाज की दृष्टि से आत्मनिर्भर बन गया है। गत वर्ष हमने 6400 करोड़ रुपये का अनाज निर्यात किया था। विश्व दूध के उत्पादन में हमारा देश पहले स्थान पर है और चावल के निर्यात में दूसरा और गेंहूँ के निर्यातकों में भारत 5वां

सबसे बड़ा देश है।

लेकिन इसके बावजूद सच्चाई यह है कि आज भी हमारे देश में एक लाख साठ हजार ऐसे गांव हैं जो पक्की सड़कों से जुड़े नहीं हैं। आज भी 60 फीसदी गांवों में बिजली की सुविधा नहीं है हजारों गांव ऐसे हैं जहाँ स्कूल, प्राथमिक चिकित्सा की सुविधायें उपलब्ध नहीं हैं, पीने के लिये पानी के स्त्रोतों के लिये गांवों से मीलों दूर जाना पड़ता है, इस स्थिति कों हमें बदलना होगा। सड़कों को जोड़ने के लिये हमने प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना को प्रारंभ किया है, इसमें ढ़ाई लाख लोगों को रोजगार मिला और 10,000 सुपरवाइजर दिन-रात लगे रहे और इसका पहला चरण एक साल में पूरा हो गया। केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय ने अभी तक 7,000 करोड़ रुपये के कोषों की स्वीकृति दे दी है। लगभग 10,000 गांवों की सड़कों का निर्माण हो चुका है। इस योजना पर करोड़ ग्रामवासियों की निगाहें टिकी हैं कि कार्यान्वयन में गति लाने के लिये निजी क्षेत्रों की भागीदारी को भी बढ़ावा दिया जा सकता है। हमें न केवल महामार्गों का निर्माण करना है बल्कि पूरे भारत में अच्छी सड़कों का जाल बिछाना है।

सारणी क्रमांक - 2
'युवाओं (15 - 29 वर्ष की आयु समूह में) के बीच बेरोजगारी का प्रतिशत'
(प्रतिशत सी.ओ.एस. आधार पर)

वर्ष	ग्रामीणक्षेत्र		शहरी क्षेत्र	
	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला
2007 - 08	9.0	7.6	13.7	21.2
2008 - 09	11.1	10.6	14.7	19.1
2009 - 10	12.0	12.7	13.7	21.5

स्त्रोत :- एन.एस.एस.ओ./योजना आयोग

उपर्युक्त तालिका में भारतीय बेरोजगारी में युवाओं को स्पष्ट किया गया है कि वर्ष 2007-08 से 2009-10 की अवधि में ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र दोनों में ही बेरोजगारी दरों में वृद्धि हुई है जो भारतीय अर्थव्यवस्था की तीव्र आर्थिक समृद्धि में बाधक रही है।

रोजगार निर्माण भी देश के सामने एक बड़ी चुनौती है ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार निर्माण के लिये कुछ वर्षों में बड़े कदम उठाये गये हैं। 10 हजार करोड़ रुपये की संपूर्ण ग्रामीण योजना तथा स्वर्ण जयंती स्वरोजगार, ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना को प्रारंभ किया गया। संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना के अंतर्गत 5,000 करोड़ रुपये का अनाज राज्य सरकारों को दिया गया इसके जरिये 'काम के बदले अनाज योजना' के रुप में छोटे-छोटे काम दिये गये। देश में 11 लाख से अधिक स्वसहायता समूह बनाये गये हैं जिनमें से अनेक ग्रामीण महिलाओं द्वारा बनाये गये हैं। ग्रामीण जनता को आत्मनिर्भर बनाने में तथा परस्पर सहयोग के आधार पर छोटे-छोटे काम चलाकर स्थानीय स्तर पर रोजगार तथा स्वरोजगार के अवसर पर सृजित करने में योजना काफी काम आ रही है। ग्रामीण जनता को उनके गांव में या उसके आसपास ही रोजगार मिले, उनके द्वारा बनाई गयी वस्तुओं को अच्छा बाजार मिले। केवल पेट भरने के लिये लोग गांवों से शहरों की ओर न भागें। इसके लिये आवश्यक है ग्रामीण भागों में कृषि तथा कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना होगा। इसके लिये ग्रामीण स्तर पर आधारभूत सुविधाओं को बढ़ाना होगा।

सारणी क्रमांक - 3
'चालू दैनिक स्थिति के अनुसार रोजगार का हिस्सा'
(सी.डी.एस. के आधार पर प्रतिशत)

	वर्ष		
उद्योग	2007 - 08	2008 - 09	2009 - 10
कृषि	56.64	52.06	50.19
खान एवं खुदाई	0.67	0.63	0.61
विद्युत, जल आपूर्ति	12.13	12.90	13.33
परिवहन और संचार	4.06	4.61	5.06
निजी सेवाऐं	9.16	9.24	8.97

स्त्रोत :- एन.एस.एस.ओ./योजना आयोग

चालू दैनिक स्थिति के आधार पर भारत में कुल रोजगार का क्षेत्रवार हिस्सा देखा जाये तो निम्न सारणी के आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि आज भी कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ कहा जाने वाला क्षेत्र रहा है। देश के कुल रोजगार में कृषि क्षेत्र का 50.19 प्रतिशत योगदान है।

आवास के क्षेत्र में भी रोजगार की भारी संभावनायें हैं । आज देश में मकान निर्माण के क्षेत्र में भी भारी अवसर हैं। आज शहरों और गांवों में मकान निर्माण की गति पहले की तुलना में तेज हुई है। सन् 2020 तक 'सब के लिये आवास' का लक्ष्य रखा गया है। नई-नई उत्पादन इकाईयाँ लगाकर नये रोजगार के अवसर पैदा किये गये, परन्तु शहरों में काम करने वालों की संख्या बढ़ाने वाला परिदृश्य नहीं है। यहाँ हमें हाथ से काम करने वालों, रोजगार के आधार पर काम करने वालों की संख्या बढ़ानी होगी। शहरों में तो नौकरियाँ कम हो रही हैं क्योंकि छंटनी की प्रक्रिया चल रही है। उनसे कहा जा रहा है कि जीवन यापन के प्रबंध लायक ही वेतन ले लीजिये, आप यह नौकरी छोड़ दीजिये और भुगतान लेकर कोई नया व्यवसाय चालू करिये। लाखों मजदूरों ने ऐसा ही किया क्योंकि कम मजदूरी पर कितने दिन काम करते ? और मजदूर भी ऐसा काम चाहते थे कि जिसकी उपयोगिता हो उनका पसीना बहे तो कुछ परिणाम सामने आयें, समाज के काम आएं। केवल महीने की आमदनी का सवाल नहीं है रोजगार। इसके लिये एक ही तरीका है कि हम ऐसे तरीके अपनायें जिससे उद्यम को बढ़ावा मिले और नये उद्यमी मैदान में आयें। मकान बनाने को प्रोत्साहन देने के लिये उनके कर्ज पर ब्याज की दर कम की जा रही है। लोग मकान बनायेंगे तो सीमेंट, ईंट, गिट्टी की जरुरत होगी और रोजगार के अवसर बढ़ेंगे।

सारणी क्रमांक - 4

वर्ष	लक्ष्य (लाख में)	मकानों का निर्माण (लाख में)	खर्च (करोड़ में)
2005 - 06	74.41	15.51	3654.09
2006 - 07	15.33	14.98	4253.42
2007 - 08	21.27	19.86	5458.01
कुल	50.71	50.38	13365.52

स्त्रोत :- भारतीय अर्थव्यवस्था

सारणी क्रमांक - 5

'समष्टिगत आर्थिक मापदण्ड'

योजना	कृषि	उद्योग	सेवायें
8वीं योजना	4.72	7.29	7.28
9वीं योजना	2.44	4.29	7.87
10वीं योजना	2.30	9.17	9.30
11वीं योजना	4.0	10.11	9.11

स्त्रोत :- प्रतियोगिता दर्पण (भारतीय अर्थव्यवस्था)

सकल घरेलू उत्पादन में 9 प्रतिशत वृद्धि के लक्ष्य के अनुरुप 11वीं योजना के आंकड़ों में समष्टिगत आर्थिक चरों को निर्धारित किया गया।

आज पूरे देश में शहरी क्षेत्र हो या ग्रामीण पानी की समस्या से ग्रस्त हैं। ग्रामीण इलाकों में पेयजल की समस्या से निपटने के लिये हमने स्वजलधारा योजना को प्रारंभ किया है। इसमें जितनी लागत लगेगी उसका 10 प्रतिशत ग्रामवासियों को देना होगा। दूसरे इस योजना के क्रियान्वयन के लिये पंचायतों को काम करना होगा। पानी की समस्या हल करने के लिये पारंपरिक जल स्त्रोतों की ओर जितना ध्यान दिया जाना था उतना नहीं दिया गया, उनका जीर्णोद्धार करना होगा, रख रखाव पर बल देना होगा। ड्रिप इरीगेशन जैसी तकनीकी का विकास करना होगा। वर्षा का जल जो बहकर चला जाता है, उसका संग्रह करना होगा। हमारी नदियों, नहरों के जल की जो फिजूलखर्ची होती है उसे रोकना होगा। हमें बूंद - बूंद पानी बचाना होगा, पानी की बचत को जन आंदोलन का रुप देना होगा।

सारणी क्रमांक - 6

'विद्युत शक्ति का उपयोग' (मिलियन किलो वाट में)

वष	कृषि के लिये उपयोग	समस्त उपयोग के लिये
1980 - 81	14489	82367
1990 - 91	49469	190268
2000 - 01	80327	280435
2010 - 11	111513	367627

स्त्रोत: कृषि सांख्यिकीय एक नजर में

सारणी क्रमांक - 7

'ग्रामीण विकास में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान' (प्रतिशत में)

वर्ष	कृषि	उद्योग	सेवाएें
1995	30%	28%	42%
2005	26%	28%	46%
2011	23%	28%	49%

गांवों में बिजली की समस्या भी है। हमारे देश में पानी से बिजली बनती है। सूरज से सौर ऊर्जा का निर्माण किया जा सकता है। हवा से भी बिजली पैदा की जा सकती है। वाटरशेड मैनेजमेन्ट के तहत गांव-गांव पानी के लिये छोटी-छोटी योजनाऐं बनायी जाऐं ग्रामीण अंचल में भी हरियाली लायी जा सकती है। हरियाली योजना को गांवों में पंचायतों के माध्यम से ही लागू किया गया। बिजली का अभाव हमारी कृषि, उद्योग एवं सेवाओं को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है। ग्रामीण विकास की असीम क्षमता को दोहन नहीं हो पाने में शायद सबसे बड़ी बाधा ऊर्जा क्षेत्र की समस्याओं का बने रहना है।

संचार साधन जैसे टेलीफोन, मोबाइल, और इन्टरनेट की सुविधाऐं उपलब्ध हो रहीं हैं, उससे ग्रामीण उद्योगों को विकास मिल रहा है। लघु उद्योग का क्षेत्र रोजगार उत्पन्न करने में सदैव पथ प्रदर्शक रहा है। लघु उद्योगों को ऋण उपलब्धता पर्याप्त रुप से न मिल पाने के कारण इस क्षेत्र को काफी हानि हुई है। शिल्पकलाओं को प्रोत्साहन और लघु स्तर पर उद्यमिता को बढ़ावा मिला है। इसके लिये दीनदयाल हथकरघा प्रोत्साहन योजना के अंतर्गत वित्त, डिजाइन, मार्केटिंग निवेशक जरिये हथकरघा क्षेत्र का विकास करना तथा सहायता प्रदान करना है। हमारे ग्रामीण उद्योगों की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति बढ़ाने, नये रोजगार के लिये मार्ग प्रदान करने एवं साहसपूर्ण जोखिम उठाने वालों को काम लगाने में लघु उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है। लघु एवं मध्यम उद्योगों को बल देने का भी प्रयास किया गया है। ग्रामों में दूरसंचार और सूचना प्रौद्योगिकी के विकास में बाजारों से कनेक्टिविटी, लोगों के बीच की दूरी समाप्त कर दी है। कृषि हमारे ग्रामों की रीढ़ है। हमें कृषि उत्पादों की उत्पादकता व गुणवत्ता को बढ़ाना है।

ग्रामीण औद्योगिकीकरण के लिये (पूरा)**PURA** यानि **Provision of Urban Facilities to Rural Areas** शब्द का प्रयोग किया गया है। हम ये सुविधाऐं गांवों में ले जाना चाहते हैं, गांव वालों को देना चाहते हैं, जो सुविधाऐं आमतौर से शहरों के साथ जुड़ी हैं। मोटे तौर पर हम इनके चार भाग कर सकते हैं।

1 **Physical Connectivity** - गांवों को जोड़ने वाले अच्छे रास्तों, सड़कों की अभी तक अपेक्षा हुई है, हमारा

ISSN 2277-5587

विकास अवरुद्ध हुआ है हमें अच्छे रास्ते चाहिये, बिजली चाहिये, आवागमन के साधन चाहिये।

2 **Electronic Connectivity** – टेलीकॉम और इन्टरनेट सेवायें अब ये आम हो गयीं हैं वैभव और विलासिता की वस्तुऐं नहीं रही हैं। कई जगह सडकों पर सब्जी बेचने वाले छोटा सा यंत्र अपने पास रखे होते हैं और बीच - बीच में पता लगाते रहते हैं कि बड़ी मण्डी में क्या भाव है और उन्हें किस भाव पर गांव में सामान बेचना है। ऐसी विधा तो पहले कहीं नहीं थी, परन्तु आज भी कई गांव ऐसे हैं जहाँ टेलीकॉम और इन्टरनेट की सेवाऐं उपलब्ध नहीं है। इसे और बढ़ाने की आवष्यकता है।

3 **Knowledge Connectivity** - अच्छी शिक्षा की व्यवस्था शिक्षा के मामले में उपेक्षा नहीं होनी चाहिये। हमने शिक्षा की उपेक्षा की,खासकर बालिकाओं की शिक्षा की। शिक्षा कैसी हो यह विवाद का विषय है इस पर चर्चा हो सकती है ज्ञान कुंजी है विकास की।

4 **Market Connectivity**- खेत है, खेत में फसल तैयार खड़ी है उसको ऐसे स्थान पर ले जाने के लिये जहाँ खरीदी जा सके। अच्छे भाव में बेचा जा सके। इसके लिये आवागमन के साधन बढ़ाने होंगे और गांवों को शहरों से जोड़ना होगा। जो आर्थिक विकास में उन्नतशील हो सकें।

निष्कर्ष: उपर्युक्त लेख से स्पष्ट होता है कि भारत देश एक कृषि प्रधान दश रहा है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप से रोजगार पर आश्रित रही है। आर्थिक विकास की दृष्टि से देखा जाऐ तो भारत में बेरोजगारी का स्तर दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। जो आर्थिक विकास को कहीं ना कहीं प्रभावित करता है। यदि देश में गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, तथा जीवनयापन करने की सामाजिक एवं आर्थिक समस्या इसी प्रकार रही तो वो दिन दूर नहीं जबकि देश को समृद्ध बनाये जाने के झूठे वादे एवं आर्थिक समृद्धि का नाम केवल रह जाऐगा। हमें इस समस्या को देखते हुये आर्थिक विकास के लिये नयी-नयी योजनाओं का क्रियान्वयन करना चाहिऐ एवं ग्रामीण विकास में आ रही समस्याओं को ध्यान में रखते हुये बेरोजगारी से संबंधित समस्याओं का निवारण करना होगा क्योंकि हमारे देश की नींव कृषि है, और कृषि ग्रामीण विकास का आधार रही है।

देश में चालू योजनाओं को ग्रामीण स्तर पर अधिक जोर दिया जाना चाहिये जैसे एक गांव से दूसरे गांव में परिवहन की व्यवस्था, लघु एवं कुटीर उद्योगों को स्थापित किया जाना चाहिऐ, बिजली की सुविधा, आवास की सुविधा तथा ग्रामीण जनता को जागरुक एवं शिक्षित बनाये जाने के लिये प्रशिक्षण केन्द्रों को स्थापित किया जाना चाहिये। रोजगार निर्माण देश के सामने एक बड़ी चुनौती रही है ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार निर्माण के लिये सम्पूर्ण ग्रामीण योजना तथा स्वर्ण जयंती स्वरोजगार गारंटी योजना, रोजगार गारंटी योजना पर अधिक से अधिक जोर दिया जाना चाहिये एवं गाँव में पेयजल, बाढ़, भूखा, तथा फसल नियोजन जैसे समस्याओं के निवारण के लिये कदम उठाये जाने चाहिये। जो आर्थिक विकास को उन्नतशील बनाये जाने में सहायता प्रदान करें।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1 भारतीय कृषि आधारित उद्योग - डॉ. भारती - 163

2 कृषि अर्थशास्त्र -मिश्रा -58

3 भारतीय कृषि का अर्थशास्त्र - अग्रवाल - 128

4 भारतीय आर्थिक समस्यायें - गोयल - 132

5 भारतीय कृषि एवं ग्रामीण विकास - डी. के वर्मा - 84

6 प्रतियोगिता दर्पण - सितम्बर 2013

7 इण्डिया टुडे

8 कुरुक्षेत्र

9 योजना

ग्वालियर संभाग में पर्यटन उद्योग की आधारभूत संरचना

डॉ. प्रवीण ओझा
प्राध्यापक,डॉ. भगवत सहाय शासकीय महाविद्यालय,ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

वर्तमान युग में सूचना और प्रौद्योगिकी के विकास ने विश्व के विविध देशों की दूरियों को कम कर दिया है। इसके साथ ही ऐसे उद्योगों के विकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया है जो राष्ट्रीय सीमाओं से परे उठकर विकास और अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं। ऐसे उद्योगों मे पर्यटन उद्योग का नाम सर्वोपरि है। यह एक ऐसा उद्योग है जिसमें उत्पादन तो कुछ भी नहीं किया जाता है, किन्तु फिर भी इससे पर्याप्त आय का अर्जन होता है तथा अनेकों को रोजगार की प्राप्ति होती है। इससे पर्यटक के मनोरंजन के साथ ज्ञान का भी विकास होता है। सेवा क्षेत्र में आज पर्यटन ही एकमात्र ऐसा उद्योग है जिससे पूंजीपति, प्रबन्धक, कुशल-अकुशल श्रमिक, संगीतज्ञ व अन्य अनेक वर्ग के लोगों को रोजगार प्राप्त होता है।

ग्वालियर-चम्बल संभाग में पर्यटन उद्योग तेजी से विकसित होता उद्योग है। भव्य पर्यटन स्थलों से समृद्ध इस क्षेत्र में पर्यटन उद्योग के विकास हेतु आपार संभावनाएं हैं। यहां पर्यटन उद्योग पूर्णत: सुस्थापित हो चुका है। यहां इस उद्योग की आधारभूत संरचना निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाती है।

ग्वालियर-चम्बल संभाग में पर्यटन उद्योग (आधारभूत संरचना)

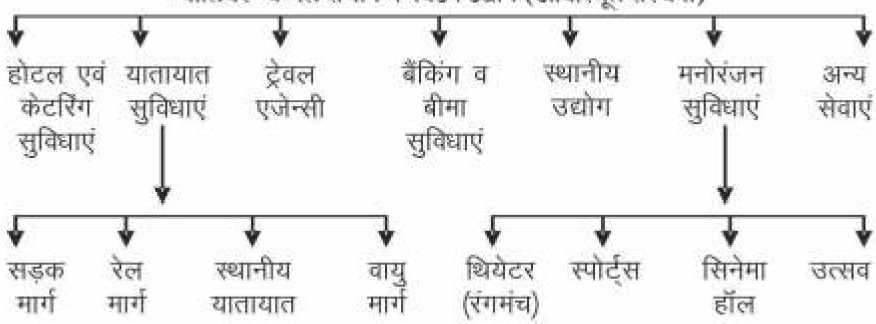

ग्वालियर-चम्बल संभाग के पर्यटन उद्योग ने पिछले दो दशकों में बहुत तीव्र गति से उन्नति की है। इस उन्नति के पीछे इसकी आधारभूत संरचना विषयक कारक उत्तरदायी हैं, जो इस प्रकार हैं।

I. **होटल एवं केटरिंग सुविधाएं:** ग्वालियर-चम्बल संभाग में पर्यटन उद्योग का विकास उसकी होटल एवं केटरिंग सुविधाओं पर आधारित है। इस हेतु बाजार के अनुरूप आवासीय व्यवस्थाओं एवं केटरिंग सुविधाओं की उपलब्धता यहां इस उद्योग का आधार है।

1. **फाईव स्टार होटल**

i. ऊषा किरण पैलेस होटल

2. **थ्री स्टार होटल**

ISSN 2277-5587

i. सेन्ट्रल पार्क
ii. आदित्यराज
iii. लैण्डमार्क
iv. तानसेन रेजीडेंसी

3. **टू स्टार होटल**
i. सनबीम
ii. रॉयल इन
iii. फॉर्च्यून
iv. रीजेन्सी
v. शेल्टर

4. **नॉन स्टार होटल**
i. ग्रेस
ii. साया
iii. नवरतन
iv. होटल डी.एम
v. सुदर्शन रेजीडेन्सी

5. **धर्मशालाएं**
i. श्री कृष्ण धर्मशाला
ii. सिन्धी धर्मशाला

6. **अन्य सुविधाएं**
i. सर्किट हाउस
ii. गेस्ट हाउस (शासकीय)
iii. गेस्ट हाउस (प्रायवेट)
iv. रेल्वे रिटायरिंग रुम

इसके अतिरिक्त चंदेरी का ताना-बाना होटल, दतिया का टूरिस्ट होटल, शिवपुरी का टूरिस्ट विलेज, तिगरा ग्वालियर में विन्ड एण्ड वेव्स नामक रेस्टोरेन्ट एण्ड केफेटेरिया भी प्रमुख हैं।

उपर्युक्त विवरण स्पष्ट करते हैं कि ग्वालियर-चम्बल संभाग में उच्च, मध्यम एवं निम्न आय वर्ग के सभी वर्गो के पर्यटकों की मांग के अनुरुप आवास एवं खानपान सुविधाएं उपलब्ध हैं।

II. **यातायात सुविधाएं:** ग्वालियर-चम्बल संभाग में पर्यटन उद्योग का दूसरा आधार यहां की यातायात सुविधाएं हैं। यहां यातायात के तीन रुप विकसित हैं:-

1. **सड़क मार्ग:** इस क्षेत्र से एन.एच. 3 या आगरा बॉम्बे राजमार्ग गुजरता है जो अंचल के पर्यटन स्थलों को एक दूसरे से जोड़ता है। अन्य स्थानीय मार्ग भी विकसित हैं जिस पर बस, टेम्पू वातानुकूलित स्लीपर बस इत्यादि बहुतायत से चलती हैं।

2. **रेल मार्ग:** यह अंचल उत्तर-मध्य रेल्वे मार्ग पर स्थित होने से इन दोनों संभागों के अनेक पर्यटन नगर जैसे ग्वालियर, शिवपुरी, दतिया, मुरैना, डबरा मुख्य मार्ग की अनवतर रेल सुविधा से लाभान्वित हैं। अंचल के अन्य अनेक नगर भी रेल्वे की ब्रॉड गेज, मीटर गेज, एवं नैरोगेज रेल सेवा से जुड़े हुये हैं।

3. **वायु मार्ग:** वायु मार्ग सेवा का लाभ यहां ग्वालियर तक ही सीमित हैं जहां से दिल्ली, मुम्बई, भोपाल आदि नगर वायु सेवा से जुड़े हैं। जिसका लाभ ग्वालियर के अतिरिक्त अन्य निकटवर्ती क्षेत्रों के पर्यटक भी उठा रहे हैं।

4. **स्थानीय यातायात:** यहां बस, टेम्पू, आटो, वैन, कैब आदि स्थानीय यातायात के साधन के रुप में पर्यटकों को उपलब्ध होते हैं।

III. **ट्रेवल एजेन्सी:** पर्यटकों की यात्रा संबंधी परेशानियों को दूर करने हेतु यहां अनेक ट्रेवल ऐजेन्सी कार्यरत हैं। जो पर्यटकों को वाहन, यात्रा टिकिट, पर्यटन स्थल, आवास संबंधी जानकारी व आरक्षण इत्यादि उपलब्ध कराते हैं तथा साधारण टेक्सी से लेकर लक्जरी टेक्सी आदि सभी की व्यवस्था करते हैं। इनमें प्रमुख हैं सुकन्या ट्रेवल्स, ग्वालियर टूर एण्ड ट्रेवल्स आदि।

IV. **बैंकिंग व बीमा सुविधाएं:** ग्वालियर-चम्बल संभाग में पर्यटन उद्योग के विस्तार में यहां सुलभ बैंकिंग व बीमा सुविधाएं भी सहायक हैं। बैंक शाखाओं की प्रचुरता, ए.टी.एम. की उपलब्धता तथा केडिट कार्ड आदि संबंधी व्यवस्थाएं एवं यात्रा में बीमा सुविधा जैसे नलकेश्वर सफारी पैकेज मे बोट पर चढ़ने से उतरने तक की अवधि का बीमा इत्यादि पर्यटकों को संतुष्ट करती हैं।

V. **स्थानीय उद्योग:** यहां स्थानीय उद्योग यथा पॉटरीज, लैदर वर्क तथा निकटवर्ती उद्योग चंदेरी साड़ी, श्योपुर का काष्ठ एवं लाख उद्योग आदि कला प्रेमी पर्यटकों को कलात्मक सामान उपलब्ध कराते हैं। मृगनयनी एम्पोरियम, खादी भण्डार से भी पर्यटक लाभान्वित होते हैं।

VI. **मनोरंजन सुविधाएं:** पर्यटन स्थल की यात्रा से शेष समय में पर्यटक के मनोरंजन की अनेक सुविधाएं यहां उपलबध हैं जो यहां पर्यटन उद्योग को सशक्त बना रही हैं।

1. **थियेटर या रंगमंच:** ग्वालियर कला की नगरी के रुप में जाना जाता है। यहां आर्टिस्ट कम्बाइन, कला मंदिर, जयविलास पैलेस में समय-समय पर आयोजित रंगमंच कार्यक्रम, प्रायवेट संस्थाओं के रंगमंच कार्यक्रम प्रसिद्ध हैं। अन्य नगरों में भी यह कला साधन जारी है।

2. **सिनेमा हॉल:** अकेले ग्वालियर में ही 7 सिनेमा हॉल एवं दीनदयाल मॉल तथा सालासर मॉल के मल्टीप्लैक्स फिल्म प्रेमी दर्शकों का प्रिय स्थल हैं जहां वे मनोरंजन के साथ-साथ नाश्ते आदि का भी आनंद उठाते हैं।

3. **उत्सव:** इस अंचल में समय-समय पर आयोजित उत्सव भी यहां पर्यटन उद्योग को दृढ़ता प्रदान करते हैं। ग्वालियर व्यापार मेला, गुना, शिवपुरी, मुरैना, भिण्ड के मेले तथा उनमें आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आनंद पर्यटक अवश्य

उठाते हैं। ग्वालियर एवं बेहट में प्रतिवर्ष तानसेन समारोह का आयोजन यहां हजारों पर्यटकों की आमद को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त स्थानीय प्रयासों में ग्वालियर कार्निवाल एवं जय विलास पैलेस में साउण्ड एण्ड सोल शो का रंगारंग आयोजन भी पर्यटकों को बहुत पसंद आया है।

4. **स्पोर्ट्स:** ग्वालियर-चम्बल संभाग हॉकी के जादूगर मेजर ध्यानचंद, कैप्टन रूप सिंह की स्थली है। यहां कैप्टन रुपसिंह स्टेडियम में क्रिकेट के स्थानीय रणजी तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्रिकेट मैचों का फ्लड लाइट में आयोजन यहां पर्यटकों की संख्या को कई गुना बढ़ा देता है। इसके अतिरिक्त चकरी के मेले, व्यापार मेले में एवं कस्बों में ग्रामीण खेल जैसे पशु दौड़, बैलगाड़ी दौड़, कुश्ती आदि का आयोजन भी महत्वपूर्ण हैं।

VII. अन्य सेवाएं: ग्वालियर-चम्बल संभाग में पर्यटन उद्योग की आधारभूत संचरना का अन्य महत्वपूर्ण घटक अन्य सेवाएं हैं जिनके अन्तर्गत, लाउण्ड्री, हेयर ड्रेसर, पार्लर, सूचना प्रदर्शन, पर्यटकों को ग्वालियर दर्शन हेतु होटल तानसेन रेजीडेन्सी से वाहन व्यवस्था इत्यादि की गणना की जा सकती है। ये समस्त तत्व मिलकर ही यहां पर्यटन उद्योग को ठोस आधार प्रदान कर रहे हैं। इसमें डाकघर, दूरभाष, इन्टरनेट, शॉपिंग केन्द्र इत्यादि भी सम्मिलित हैं।

इस प्रकार ग्वालियर संभाग में पर्यटन उद्योग का आधारभूत संरचनात्मक विकास ही उन्नति का आधार है। जिसमें होटल एवं केटरिंग, यातायात, बैंकिग व बीमा, मनोरंजन, स्थानीय उद्योग संबंधी सुविधाओं का विशेष योगदान रहा है। इनके विकास में शासन की भूमिका सराहनीय रही है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *व्यास, राजेश कुमार - सांस्कृतिक पर्यटन- पृष्ठ क्रमांक 207*
2. *समाचार पत्र - दैनिक भास्कर - दिनांक 05 मई 2014*
3. *मध्यप्रदेश ईको पर्यटन विकास बोर्ड से प्राप्त जानकारी।*
4. *व्यास, राजेश कुमार- भारत में पर्यटन- पृष्ठ क्रमांक 114*
5. *मध्यप्रदेश टूरिज्म - ग्वालियर-ए गुड अर्थ गाइड- पृष्ठ क्रमांक 94*
6. *दास गुप्ता, पापिया- पर्यटन- एक अध्ययन- पृष्ठ क्रमांक-73*
7. *भाटिया, ए.के.-टूरिज्म डेवलपमेंट- प्रिन्सीपल एण्ड प्रेक्टिस- पृष्ठ क्र. 71*

ISSN 2277-5587

संगीत शास्त्र एवं लोक जीवन

डॉ. कौशल किशोर गोठवाल
व्याख्याता ,राजकीय महाविद्यालय, बून्दी

shodhshree@gmail.com

संगीत शब्द की व्युत्पत्ति सम् उपसर्ग पूर्वक 'गै' धातु मे 'क्त' प्रत्यय के संयोग से हुई है।

संगीत शब्द को व्याख्यायित करते हुए पण्डित शारङ्ग देव ने अपने ग्रन्थ संगीत रत्नाकार में कहा है-

''गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संगीतमुच्यते।''

– संगीत रत्नाकार

अर्थात गायन , वादन एवं नृत्य इन तीनों कलाओं के समावेश को संगीत कहते है।

''ताल स्वर संयोग श्रुति, नियम बद्ध जो गीत ।
गायन वादन नृत्य को, कहे शास्त्र वह संगीत ।।''

-लक्ष्य संगीत पद्यानुवाद

भारतीय परम्परा में वाणी को अधिक महत्ता दी जाती है इसलिए गायन, वादन, एवं नृत्य में से गायन को उत्तम माना जाता है। अंग्रेजी के म्यूजिक (Music) शब्द का अरबी के 'मौसीकी' शब्द से परस्पर सम्बन्ध है। अंग्रेजी का म्यूजिक और अरबी फारसी का मौसीकी यह दोनों शब्द यूनानी भाषा के म्यूज शब्द से बने है, यूनानी परम्परा में काव्य और संगीत की देवी म्यूज मानी गई है, कोश में म्यूज शब्द का अर्थ (The In spring Goddess of song अर्थात गायन की प्रेरिका देवी)।

संगीत कला की उत्पत्ति

संगीत कला की उत्पत्ति कब और कैसे हुई इस विषय में विद्वानों के विभिन्न मत है। जिनमें से कतिपय मतों का विवेचन इस प्रकार है-

- संगीत की उत्पत्ति वेदों के निर्माता ब्रह्मा से हुई। ब्रह्मा ने यह कला शिव को प्रदान की, और शिव से यह कला सरस्वती को प्राप्त हुई । इसलिए सरस्वती को वीणा पुस्तक धारिणी कहकर, संगीत और साहित्य की अधिष्ठात्री देवी माना गया है।

- शिव ने पार्वती की शयन मुद्रा को देखकर उनके अंग प्रत्यंगों के आधार पर रुद्र वीणा बनाई और अपने पाँच मुखों से पाँच रागों की उत्पत्ति की। तत्पश्चात् छठा राग पार्वती के मुख से उत्पन्न हुआ।

- फारसी के एक विद्वान का मत है कि पहाड़ों पर मूसीकार नाम का एक पक्षी होता है, जिसकी चोंच में बाँसुरी की भाँत्ती सात सुराख होते है। उन्हीं सात सुराखों से सात स्वर ईजाद हुए। जिनकें संक्षिप्त नाम क्रमश: सा,रे,ग,म,प,ध,नि है।

वैदिक स्वरों से सांगेतिक स्वरों का सम्बन्ध:

वैदिक भाषा में स्वर के उदात्त, अनुदात्त, स्वरित नाम से तीन भेद किये गए हैं।

यथा -

''उच्चैरुदात्त: , नीचैरनुदात्त:, समाहार: स्वरित: ।''

-(पा.सू.)

संगीत शास्त्र के स्वरों का अन्तर्भाव इन्ही तीन स्वरों में समाहित करते हुए नारदीय शिक्षा में कहा गया है

यथा -

''उच्चौ निषादगान्धारी, नीचौ ऋषभधैवतौ।
शेषास्तु स्वरिता: ज्ञेया: षड्ज-मध्यम-पञ्चमा:।।''

-नारदीय शिक्षा

ललित कलाओं में संगीत का स्थान मानव सभ्यता के साथ-साथ कलाओं का विकास हुआ। 64 कलाओं में संगीत-कला, चित्रकला, और काव्य कला विशेष महत्व रखती हैं। ललित कला के लिए आवश्यक है कि उसमें सौंदर्य, माधुर्य, सहजता, सरलता प्रासाद, प्रवाह, और ओज हों। लयात्मकता लालित्य का प्रमुख गुण है। संगीत, काव्य और चित्रकला में ये सभी गुण पाये जाते हैं। मनुष्य के हृदय में सोए हुए भावों को जगाने में संगीत जितना सक्षम है, उतनी और कोई विधा नहीं। जो कुछ चित्र से नहीं कहा जा सकता, वह काव्य या भाषा से कह दिया जाता है और जिन भावों को व्यक्त करने में भाषा भी असमर्थ रहती है, उन्हे संगीत के जरिए समझा जाता है। लाटरी खुलने की प्रसन्नता, न भाषा से व्यक्त की जा सकती है और न चित्र से। उसकी अभिव्यक्ति नाचने- कूदने और उन्मत्त गान से ही संभव है। इसी प्रकार पुत्र का शोक, प्रिय-विछोह और समर्पण इत्यादि के भाव, संगीत द्वारा शीघ्र जागृत हो जाते हैं।

संगीत कला में एक विशेष गुण और भी है कि वह मनुष्य के अतिरिक्त पशु-पक्षियों को भी आकर्षित करता है। अन्य ललित-कलाओं में यह सामर्थ्य नहीं है। काव्य, चित्र, वास्तु-कला एवं शिल्प-कला, बुद्धि के संयोग से ही भावों का उत्कर्ष कराने में सफल होती है।

शॉपिन हॉवर का कहना है -केवल संगीत ही ऐसी कला है, जो श्रोताओं से सीधा संबंध रखती है। इसे किसी भी माध्यम की आवश्यकता नहीं होती है। ललित कलाओं में संगीत का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि वह गतिशील है, आनन्दानुभूति कराने और भावाभिव्यक्ति में सक्षम है, चर और अचर पर प्रभाव डालने में समर्थ है, लोक रंजक है, और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने वाला है।

लोक जीवन और संगीत- लोक शब्द की व्युत्पत्ति लोक पु0 लोक्यतेध्सी लोक् + घञ। 1. भुवने भुवन शब्दे दृश्यम् । 2. जने च अमर: । भावे घञ 3. दर्शन, तीन अर्थो में हुई है। हलायुधकोश में लोक शब्द का अर्थ संसार, सप्तलोक, एवं जन के साथ प्रजा भी किया गया है। शब्द कोशों में 'लोक' शब्द के अनेक अर्थ मिलते हैं, जिनमें से साधारणत: दो अर्थ विशेष प्रचलित हैं। एक तो वह जिससे इहलोक, परलोक अथवा त्रिलोक का ज्ञान होता है। लोक का दूसरा अर्थ है जन-सामान्य। इसी का हिन्दी रुप लोग प्रचलित है। विश्व-साहित्य में प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में लोक शब्द संसार स्थान, आलोक एवं स्वर्गान्तरिक्षादि विभिन्न लोकों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

भगवत् गीता में इहलोक, परलोक एवं सामान्य जन के अर्थ में प्रयुक्त लोक की सत्ता एवं महत्ता को स्वीकार किया गया है- अतोधस्मि लोके वेदे च प्रथित: पुरुषोत्तम:। लौकिक संस्कृत-साहित्य के काव्य-नाटक एवं काव्यशास्त्रादि ग्रन्थों में लोक शब्द विशेष रुप से संसार एव सामान्य जन के लिए ही आया है। साहित्य में प्रयुक्त विभिन्न लोक-कान्त, लोक-जीवन, लोकनाथ, लोकपाल, लोक यात्रा, लोक स्वभाव, लोक प्रसाद इत्यादि शब्दों के सन्दर्भ में लोक शब्द का अर्थ जनसामान्य या प्रजा है। अत: लोक जीवन से तात्पर्य जन साधारण के जीवन से है।

सृष्टि के स्वर्णिम विहान से लेकर प्रलय की काली सन्ध्या तक संगीत का अस्तित्व स्वीकार करना ही पड़ता है। 'जीवन ग्रन्थ' के पृष्ठों को कहीं से भी पलटिये कोई भी अध्याय तो ऐसा नहीं है, जिसे संगीत से शून्य कह दिया जाए । मानव ने जन्म लेते ही गीत सुने और मृत्यु होने पर भी गीत सुनते-सुनते उसने श्मशान की यात्रा की। तथा राम नाम सत्य है कि ध्वनियों के साथ उसका स्थूल शरीर भी शून्य विलीन हो गया।

यथा-

''क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित यह अधम शरीरा।।''

-उत्तरकाण्ड, रामचरित मानस

लोक जीवन में संगीत- भावुकता से विहीन कोई कितना भी पाषाण हृदय क्यों न हो किन्तु संगीत से विमुख होने का दावा उसका भी नहीं माना जा सकता है। कहावत है कि-

''गाना और रोना सभी को आता है।''

जिन व्यक्तियों ने अपने विवेक, अभ्यास तथा तपश्चर्या के बल पर स्वर और ताल पर अपना अधिकार कर लिया है, उनका विज्ञ समाज में अत्यन्त आदर होता है। उन्हें बड़ा गवय्या समझा जाता है। परन्तु अधिकांश जनसमूह ऐसा भी है जो ललित कला की साधना और तपस्या से सर्वथा वंचित है। ऐसे जन समुह को गायक नहीं कहा जा सकता है। परन्तु गाना ऐसे लोग भी गाते हैं, जो संगीत कला से अनभिज्ञ हैं। इन लोगों के जीवन का संबंध भी संगीत से प्रचुर मात्रा में होता है। यथा गाँवों में गाये जाने वाले लोक गीतों के विभिन्न प्रकार , कपड़े धोते समय धोबीयों का गीत, भीमकाय पाषाणों को ऊपर चढाते समय श्रमिकों का गाना , खेतों में पानी देते समय किसानों द्वारा गाये जाने वाले गीत, पनघट की ग्रामीण युवतियों के गीत तथा पशु चराते समय ग्वालों का गाना यह सभी लोक जीवन में संगीत की पुष्टि के लिए यथेष्ट प्रमाण माने जा सकते हैं।

प्रकृति और संगीत- पावस की लाजवंती संध्याओं में श्वेत श्याम मेघमालाओं से प्रस्फूटित नन्ही-नन्ही जल की बूंदो का रिमझिम-

ISSN 2277-5587

रिमझिम राग सुनते ही कोयल कुहुक उठती है। पपीहे गा उठते हैं, और मोर नाचने लगते हैं। लहलहाते हरे भरे खेतों को देखकर कृषक आनन्द विभोर हो जाता है, और वह अनायास ही किसी परिचित मलहार के बोल अलाप उठता है। यही वह समय होता है। जब प्रकृति के कण-कण में संगीत की सजीवता भासमान होती है।

''रिमझिम रिमझिम सी बूंदें ,
जग के आँगन मे आई।
अपने लघु उज्वल तन में,
कितनी सुन्दरता लाई।
मेघों ने गरज-गरज कर,
मादक संगीत सुनाया।
इस हरी भरी संध्या ने,
हमको उन्मत्त बनाया।
वन में मयूर अब नाचें,
हस हस आनंद मनाऐ।
उनकी छवि देख रही है,
नभ से घन घोर घटाऐं।''

- पावस वर्णन

संगीत और चिकित्सा विज्ञान- यह प्रसन्नता की बात है कि वर्तमान युग के कतिपय विशेषज्ञ एवं चिकित्सक संगीत के रहस्यपूर्ण तत्त्वों के अनुसंधान में संलग्न हैं। उनके परीक्षणों में अनेक ऐसी चमत्कारपूर्ण बातें सामने आई हैं, जिनके द्वारा अनुसंधानकर्ताओं का उत्साह संगीत के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। मानसिक रोगों तथा पक्षाघात आदि बीमारियों पर संगीत की स्वर लहरियों ने अत्यंत लाभ किया है। वर्तमान काल में वह दिन अधिक दूर नहीं जब विज्ञान वेत्ताओं द्वारा संगीत मे छिपी हुई अनन्त शक्ति का भण्डार सर्व साधारण के समक्ष प्रकट हो जाएगा, और मानव जीवन के सृजनात्मक कार्यो में इसके तत्त्वों का अधिकाधिक प्रयोग हो सकेगा। तब हमारा मानव समाज लोक जीवन और संगीत के सम्बन्धों को और भी अधिक स्पष्ट रुप से समझ सकेगा।

जीवन पथ के किसी भी मोड पर रुक कर देख लीजिए वहीं आपको संगीत का दिग्दर्शन हो जायेगा। दुख से, सुख से, रुदन से, हास से, योग से, वियोग से, मृत्यु से, जीवन से। सारांश यह है कि जीवन की प्रत्येक अवस्था से येन केन प्रकारेण संगीत की कडी अवश्यमेव जुड़ी रहती है। संगीत के परमाणुओं मे मानव की वृत्तियों को प्रशस्त करने के साथ-साथ आत्मशक्ति का आविर्भाव करने की क्षमता भी निहित होती है। चारित्रिक उत्थान एवं वासनाओं पर विजय प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन भी संगीत ही है।

यथा-

''श्रेष्ठतम हि संगीत है, होवत शुभ आचार।
सब जानत यह गीत है, यह है ब्रह्म विचार।।''

-कबीरदास

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *संगीत रत्नाकर*
2. *लक्ष्य संगीत (पद्यानुवाद)*
3. *अष्टध्यायी (पाणीनीय सूत्र)*
4. *नारदीय शिक्षा*
5. *हलायुध कोश*
6. *श्री मद्भगवत्गीता*
7. *रामचरितमानस (उत्तरकाण्ड)*
8. *पावस वर्णन*
9. *कबीर दोघली*

ISSN 2277-5587

भगवद्गीता में वैश्विक दृष्टि

डॉ. अवधेश कुमार शर्मा
व्याख्याता,बी.बी.डी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ,चिमनपुरा

shodhshree@gmail.com

वर्तमानकालिक वैश्विक परिदृश्य का सूक्ष्म अवलोकन करने पर यह दृष्टिगोचर होता है कि सम्पूर्ण समाज घोर भौतिकतावादी, उपभोक्तावादी संस्कृति के मकड़जाल में फंसा हुआ है। भौतिक और अनित्य संसाधनों की प्राप्ति की उसकी उत्कट इच्छा उसे घोर स्वार्थी, अहंकारी बना रही है। इच्छापूर्ति के अभाव में वह मानसिक क्लेशों एवं विषादों, निराशाओं इत्यादि जटिल परिस्थितियों से जूझने को मजबूर हो जाता है। भविष्य के प्रति आशंकित मानव अन्यों के साथ तीव्र स्पर्द्धा करते हुए प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन कर अति संग्रही बन जाता है। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की इस अन्तहीन प्रतिस्पर्द्धा से पर्यावरण क्षरण एवं सतत् विकास में अवरोध उत्पन्न होने के साथ-साथ महा शक्तियों में टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो अन्ततः वैश्विक अशांति को जन्म देती है। उक्त परिस्थितियों के परिणामस्वरुप आज का सम्पूर्ण मानव समाज घोर नैराश्य में डूबा हुआ है।

कहा गया है कि "**यत्र भवत्यपाय: तत्र तस्योपायोऽपि भवत्येव**" अर्थात जहाँ संकट होता है वहाँ उसका समाधान भी अवश्यमेव होता है। पूर्वोक्त वैश्विक समस्या रुपी तिमिर के उच्छेदन में 'श्रीमदभगवद गीता' प्रात: कालीन ज्योतिपुंज के समान है। वैश्विक उपदेश ग्रन्थों (दार्शनिक ग्रन्थों) में भगवद्गीता का अद्वितीय स्थान है। सहस्रों वर्षों से यह न केवल आध्यात्मिक शान्ति-पथ के पथिकों के लिए बल्कि सांसारिक कर्मो में रमे प्राणियों के लिए भी उत्तम पाथेय सिद्ध हुई है। गीता का वर्ण्य विषय किसी जाति, धर्म, सम्प्रदाय अथवा राष्ट्र विशेष से सरोकार न रखते हुए सम्पूर्ण मानव समाज से है। अतएव गीतोपदेश असीम एवं सम्पूर्ण विश्व चराचर जगत को अपने वृहद् कलेवर में समाहित किए हुए है।

गीता की महत्ता प्रतिदिन के जीवन में इसकी व्यावहारिक उपादेयता से सिद्ध होती है। इसके उपदेश व्यक्तिगत जीवन में सार्थकता रखते हैं, व्यक्तिगत जीवन को सार्थकता प्रदान करने का लक्ष्य लोक-कल्याण की कामना है। व्यक्तिगत जीवन में गीतोपदेश अन्त:करण के क्लेशों, विषादों, निराशाओं आदि जटिलतम परिस्थितियों से जूझने को प्रेरित करते हैं, वहाँ किंकर्त्तव्यविमूढ़ निराश मनुष्य को मानसिक संबल प्रदान करने हेतु गीतोपदेश अवलम्बन बनते हैं।

महाभारत के युद्ध के दौरान कुरुक्षेत्र की रणभूमि में स्वयं योगीराज श्री कृष्ण, किंकर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन के माध्यम से समस्त मानव समाज को जटिलतम परिस्थिति में जीवन-आचरण का उपदेश देते हैं। श्री कृष्ण विभिन्न उपविषयों यथा- निष्काम कर्मयोग, स्थितप्रज्ञ, प्रकृति की श्रेष्ठता, सत्व, रज, तम विवेचन, स्वधर्मपालन का उपदेश सम्पूर्ण जीव-जगत् हेतु प्रदान करते हैं, उनके उपदेश का लक्ष्य सिर्फ अर्जुन अथवा महाभारत का युद्ध जीतना भर न होकर कालातीत एवं वैश्विक है।

श्रीमद् भगवद्गीता में ज्ञानयोग के माध्यम से मनुष्य को मन, इन्द्रिय और शरीर से कर्त्तापन के त्याग का उपदेश दिया गया है। कर्त्तापन का त्याग अनासक्ति है। व्यावहारिक जीवन में अनासक्ति संयम को अपनाने की अनुशंसा करती है। वर्तमान में संयम के अभाव के कारण ही मनुष्य विविध मानसिक एवं शारीरिक

 ISSN 2277-5587

व्याधियों (मानसिक तनाव, एड्स, मोटापा, मधुमेह, जैसे रोग) से ग्रसित हो रहे हैं। अन्ततः संयम समत्व भाव का मार्ग प्रशस्त करता है-

''योगस्थ कुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजयः।
सिद्ध्यसिद्ध्यो समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।''

समत्व भाव से मानव सुख-दुःख से निःस्पृह हो जाता है-

''दुखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।''

फलतः मानव जीवन में असफलता व कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करता है। वस्तुतः उक्त संदेश की सार्थकता इसमें है कि मानव अनेक असफलताओं के उपरान्त नैराश्य भाव को प्राप्त होकर आत्महत्या जैसे अपराध की ओर उन्मुख हो जाता है जबकि यकायक प्राप्त सफलता से भाव-विभोर होकर अत्यन्त प्रसन्नता के कारण उसकी हृदय गति रुक जाति है। अतः उभयविध परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने हेतु ''समत्व भाव'' की स्थिति लाभकारी है।

गीता में श्रेष्ठ कर्म, अनासक्त भाव से फल की इच्छा के बिना करना बताया है क्योंकि फलेच्छा से उत्पन्न उद्विग्नता व विकलता मानव जीवन को दुष्कर बना देती है। फलतः मानसिक अशान्ति उत्पन्न होती है-

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भू मा ते संगोऽत्वकर्मणि।।''

समत्व भाव की स्थिति स्थितप्रज्ञ प्राप्त करता है। स्थित प्रज्ञ मानव को राग, भय, क्रोध से परे रहने का उपदेश देता है। फलतः मानव कामनाओं, भोगादि विषयों से निवृत्त हो जाता है।

जो पुरुष समस्त कामनाओं को त्यागकर ममता रहित अहंकार रहित एवं स्पृहा रहित विचरता है वह शांति को प्राप्त करता है। यह स्थिति भौतिकवादिता के इस युग में मानव मन की शांति हेतु उपाय है। स्थितप्रज्ञ मानव के लिए आदर्श है जो कर्मनिष्ठा, अनासक्ति, निरहंकार तथा त्याग की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है-

''विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः सः शांतिमधिगच्छति।।''

गीता में भगवान् कृष्ण के द्वारा प्रतिपादित ''स्वधर्म'' एक सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक पालनीय सिद्धान्त है। अतः वर्तमान में भी पूर्णतः प्रासंगिक है। ''स्वधर्म'' की अवधारणा पूर्णतः मानवीय प्रकृति एवं मनोविज्ञान का उन्नायक होकर पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति सम्पन्न कर जीवन को साफल्य प्रदान करता हुआ वैश्विक सामाजिक-आर्थिक समस्या समाधान हेतु उपयोगी है।

गीतोपदेश में व्यक्तिगत जीवन सार्थकता का परम लक्ष्य लोक-कल्याण की प्राप्ति है। लोक कल्याण के लिए व्यक्ति को स्वार्थ का त्याग कर अपनी समझ, सामर्थ्य से उदारतापूर्वक स्वकर्म करना चाहिए। स्वधर्म अथवा स्वकर्म सम्पूर्ण तंत्र के सुचारु संचालन के लिए परम आवश्यक है तभी सर्वभूतहित होगा।

यहाँ स्व का अर्थ है आत्मा एवं धर्म का अर्थ है कर्त्तव्य कर्म अर्थात् अपने कर्त्तव्य का पालन। स्वाभाविक प्रकृति प्रदत्त गुणों के अनुसार अपने कर्मों को करते रहना श्रेयस्कर है। भले ही दूसरों का धर्म अच्छी प्रकार से आता हो, इस प्रकार अपने धर्म में मृत्यु भी अच्छी है किन्तु दूसरे का धर्म बहुत भयावह होता है-

''श्रेयान्स्वधर्मोविगुणः पर धर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्मो भयावहः।।''

स्वभावजन्य गुणानुसार मनुष्य के जो कर्म हैं वो ही उसके स्वधर्म हैं। तद्नुसार ही भगवान् ने चातुर्वर्ण्य की सृष्टि की है-

''चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः।
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।''

यहाँ चारों वर्णो से आशय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र है एवं ''गुणकर्मविभागशः'' में गुण का तात्पर्य सत्त्व, रज एवं तमो गुण है और कर्म शब्द का अर्थ कर्त्तव्य कर्म है। इस प्रकार जन्म के समय जिसमें जिस परिमाण में सत्त्व, रज एवं तमो गुण रहता है, तदनुसार कर्त्तव्य कर्म का विभाग करके ईश्वर ने चारों वर्णो को सृजित किया है। इस प्रकार प्रकृति सिद्ध गुणों से वर्णो के कर्म निर्धारित होते हैं। उक्त सिद्धान्त का समर्थन एक ग्रीक दार्शनिक अरस्तु ने भी किया है। इसे श्रम विभाजन एवं कार्य विशिष्टीकरण का सिद्धान्त भी कहा जाता है। उक्त सिद्धान्त वैश्विक बेरोजगारी के निवारणोपायों में कारगर है।

गीतोपदिष्ट स्वधर्म आज भी पूरी तरह अपने मनोवैज्ञानिक स्वरुप को अक्षुण्ण रखते हुए प्रासंगिक है। आज सामाजिक संरचना में बहुत परिवर्तन हो चुके हैं। लोग अपनी-अपनी योग्यताओं के अनुसार अपने-अपने व्यवसायों में संलग्न है। यदि आज का व्यक्ति अपनी प्राकृतिक मनोवैज्ञानिक क्षमताओं को देखते हुए अपना कार्य चुनता है और फलासक्ति की भावना न रखते हुए कर्म करता है तथा कार्य करता हुआ स्वधर्म पालन से विमुख नहीं होगा तो निश्चित ही वह नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करता है एवं इस प्रकार सामाजिक असंतोष भी समाप्त हो जाता है। गीता कहती है कि अपने धर्म का पालन करते हुआ परधर्म की ओर विमुख होता हुआ मनुष्य पाप को भी प्राप्त नहीं करता।

''श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्।।''

इस प्रकार गीता द्वारा प्रतिपादित स्वधर्म पालन सामाजिक कल्याण का एक शाश्वत नियम है। स्वधर्म पालन करता हुआ मानव जिस परमेश्वर से सभी प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मो से पूजा कर सिद्धि को प्राप्त करता है।

इस प्रकार गीता का उपदेश सार्वभौमिक है इसकी दृष्टि वैश्विकी है। वस्तुतः जब सत्त्व, रज, तम की स्वाभाविक मानवीय प्रवृत्तियों को ज्ञान, भक्ति व निष्काम कर्म के परमार्थ की ओर अग्रसर करते हैं वहाँ स्व व पर में कोई अन्तर नहीं रहता है। स्व एवं पर के इस अभेद से आज के मनुष्य की अतिसंग्रही, उपभोक्तावादी, सुखवादी, स्वार्थी, अहंकारी एवं भौतिकतावादी प्रवृत्ति को मिटाया जा सकता है। यह

विश्व बन्धुत्व एवं विश्व कल्याण की कुंजी है।

भगवद्गीता की वैश्विक दृष्टि इन तथ्यों से भी पुष्ट होती है कि आज गीता के अनुयायी एवं अध्येता न केवल भारत में अपितु समस्त विश्व भर में विरचरण कर रहे हैं। गीता का अध्ययन-अध्यापन भारतीय विश्वविद्यालयों के साथ-साथ अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, आस्ट्रेलिया एवं फ्रांस जैसे विकसित राष्ट्रों के विश्वविद्यालयों में नियमित पाठ्यक्रम के रुप में होता है। वर्तमान तीव्र प्रतिस्पर्द्धी युग में मानसिक तनाव प्रबन्धन ग्रन्थ के रुप में गीता महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। विभिन्न प्रबन्ध की संस्थानों में गीता का अध्ययन अनिवार्य पत्र के रुप में किया जाता है। गीता की विषय वस्तु किसी एक देश, काल, परिस्थिति, समाज, जाति, धर्म, व्यक्ति से सम्बन्धित न होकर समस्त मानव जाति एवं सार्वकालिक है। गीता की भावना संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रस्तावना के अनुरुप ही है, इसकी उदार प्रवृति, विस्तृत विषय क्षेत्र, व्यापक पहुंच के आधार पर इसे सिर्फ हिन्दू धर्म ग्रन्थ न मानकर ''विश्व कल्याण ग्रन्थ'' की संज्ञा देना अत्यधिक सार्थक एवं तर्कसंगत होगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1 *गीता, अध्याय-2, श्लोक-48*

2 *गीता, अध्याय-2, श्लोक-47*

3 *विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्यदेहिन:। रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।। गीता 2/59*

4 *गीता, अध्याय-2, श्लोक-71*

5 *गीता, अध्याय-3, श्लोक-35*

6 *गीता, अध्याय-4, श्लोक-13*

7 *गीता, अध्याय-18, श्लोक-47*

ISSN 2277-5587

मानव जीवन में पर्यावरण का महत्त्व

डॉ. संगीता कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, दयालबाग शिक्षा संस्थान, आगरा (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

मानव के जीवन में पर्यावरण का अत्यंत महत्त्व है। समस्त जड़ चेतन प्राणियों, वनस्पतियों आदि के जीवन का आधार पर्यावरण है। यदि हमारी प्राचीन में पर्यावरण की स्थिति ठीक नहीं होती तो शायद हम उतना बढ़िया इतिहास नहीं पा सकते थे। पर्यावरण की ठीक स्थिति में ही ऋषि आश्रम प्रात: और सांयकाल मधुर वेदों में गूंजा करते थे। अश्वत्थ वृक्ष के नीचे ही महात्मा बुद्ध ने अपनी अमर ज्योति प्राप्त की थी। कृष्ण ने वृन्दावन के हरे-भरे कुंजो में अपनी सुरम्य बाल लीला की। हमारे कई काव्य पर्यावरण का और उसकी अतुल सुषमा से भरे पड़े हैं। वैदिक साहित्य में वन देवियों की पूजा की जाती थी। मनुस्मृति में तो पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाले को बहुत बड़ा पापी माना जाता था। इस प्रकार हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, हमारा साहित्य सभी कुछ तो पर्यावरण ही है।

प्रकृति ही पर्यावरण है। प्रकृति और प्राणी का आदि काल से ही शाश्वत सम्बंध रहा है। इसका मुख्य उदाहरण है विश्व की सर्व प्राचीन आदि पुस्तक ऋग्वेद, जिसमें प्राकृतिक तत्त्वों को मूर्त्त रुप प्रदान कर लोगों की आस्था के रुप प्रकृति प्रेम को दर्शाया है। कहते हैं कि जब प्रकृति का दोहन होता है अथवा विनष्ट होती है तब अनेक विकृतियों का उदय होता है तथा सृष्टि विनाश के कगार पर खड़ी हो जाती है। यही कारण है कि केदारनाथ जैसे परम पावन स्थल पर ऐसी विभीषिका का शिकार होना पड़ा।

पर्यावरण शब्द से तात्पर्य है परि+आवरण अर्थात् हमारे चारों ओर प्राकृतिक तत्त्वों का जो आवरण है वही पर्यावरण कहलाता है। जिसकी व्युत्पत्ति है ''परित: आवृणोतीति पर्यावरणम्'' अर्थात् जो चारों ओर से आवृत किये हुए है। आंग्ल भाषा में Environment शब्द प्रयुक्त है यह शब्द फ्रांसीसी के Environir शब्द से उद्धृत है जिसका अर्थ है घेरना। अर्थात् वायु, जल, अग्नि, आकाश, चन्द्रमा, पृथ्वी, वनस्पति, नदी, पर्वत, पशु, पक्षी इत्यादि और यही आवरण हम सब जीवों के जीवन का आधार भी है। सृष्टि के सभी तत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के विभिन्न संयोजनों से बने हैं। जगत का ही एक अंश होने के कारण मनुष्य भी इन पाँच तत्त्वों से बना है। पर्यावरण में इन पाँच तत्त्वों का सन्तुलन होना आवश्यक है। **अग्नि**- अग्नि शब्द अ x चु, अग, अगि, इण् आदि गत्यर्थक धातुओं से सिद्ध होता है। ये धातु ज्ञान के अतिरिक्त गमन, प्राप्ति अर्थवाले भी है।

योऽ x चति अच्यते अगति अंगानि अर्थात् जो प्रकाश और ज्योति स्वरुप है। ऋग्वेद मे 1400 के लगभग मन्त्र अग्निपरक है। इनसे अग्नि का पूरा विज्ञान परिलक्षित होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से अनेक मंत्रो में अग्नि से ईश्वर अपेक्षित है, पर भैतिक अग्नि की क्षमता, तेजस्विता एवं व्यापकता का संकेत बीज रुप में यहाँ परिलक्षित होता है।

अग्नि का अविष्कार ऋषिं अथर्वा ने किया था **अग्निर्जातो ऽथर्वणा**

ऋग्वेद की अग्नि परक ऋचाएँ

''अग्नि: पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवां एह वक्षतिफ''

- 1/1/2

अग्नि महान ज्ञानी, पुरुषों द्वारा तथा नये साधकों द्वारा स्तुति किये जाने योग्य है। वही इस संसार में दिव्यगुणों और पदार्थो को प्रकाशित करने वाली है।

''अग्निता रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे।
यशसं वीरक्तगम''

- 1/1/3

प्रतिदिन नियमपूर्वक अग्नि के परीक्षण द्वारा ऐश्वर्य पुष्टि कारक भौतिक पदार्थो का निश्चयपूर्वक उपभोग करो। मानव जीवन का यशस्वी, शारीरिक बलों की वृद्धि करने वाला है।

''अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्
स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी
भवा तोकाय तनयाय शं योः।।''

- 1/179/2

आप सदा तेज से युक्त हो। हम सबको सकल विकल संकटों से अपनी कल्याणकारिणी शक्तियों द्वारा पार लगाने वाले हो। हमारे नगर तथा विस्तृत उर्वरा भूमि को सुख समृद्धि से युक्त कर दो। हमारे बालकों और युवकों को बल से युक्त कर दो।

पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के पदार्थो का सूक्ष्म एवं बीजात्मक अंश विविध वनस्पतियों में होता है यज्ञ के माध्यम से वह अंश वनस्पतियों से निकलकर धुएं के साथ यत्र तत्र प्रसारित करके उस सम्पदा को अधिक पुष्ट किया जा सकता है। कभी इनकी प्रमुखता पृथ्वी मे, तो कभी अन्तरिक्ष तथा द्युलोक मे होती है। यज्ञ द्वारा इधर से उधर परिवर्तित की जा सकती है।

आकाश मण्डल को पुष्ट करने से खनिज सम्पदा की पृथ्वी तल पर वृद्धि अजीब सी लगती थी। दिनांक 5 फरवरी 80 की हिन्दुस्तान पत्रिका में कलकत्ता में होने वाली विज्ञान कान्फ्रेंस का निम्न समाचार पढ़ा-

लखनऊ से आये 3 मौसम वैज्ञानिकों ने यह सूचना दी कि लखनऊ में हुई वर्षा में टैस्ट करने पर चाँदी के कण निकले। सर्वश्री आदर्श कुमार, डी.के. गोयल एवं बी.के. हान्डा ने यह भी कहा कि उस सैम्पिल में चाँदी के अतिरिक्त काफी परिमाण में लिथियम, तांबा, जस्ता और कोबाल्ट भी पाया गया। आगे यह भी बताया कि 1976 के बाद तो लखनऊ में हुई वर्षा में चांदी की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

इस परिप्रेक्ष्य में यज्ञ द्वारा खनिज सम्पदा में वृद्धि सम्भाव्य ही है।

यज्ञ द्वारा फसलों के प्रचुर मात्रा में उत्पादन के साथ-साथ वानस्पतिक अनुपात भी कायम रहता है। वृक्षों के फलते फूलते रहने से अदृष्ट लाभ होते है जैसे वर्षा का होना, रेगिस्तान का न फैलना, वातावरण में ऑक्सीजन की प्रचुरता बने रहता। इससे सम्बन्धित मंत्र यजुर्वेद में उल्लेखित है।

''ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितृन्।।''

- 2/34

यज्ञ में प्रयुक्त किये घृत, दूध व अन्नादि के सूक्ष्म अंश जल के साथ परिसृत होकर इस पृथ्वी पर वायु, जल एवं अन्न के माध्यम से प्राप्त होते है उनसे हमारी उत्पादक शक्तियां पुष्ट होती है।

यज्ञ में हवि रुप में प्रयुक्त होने वाले गौ घृत, शहद, अर्जुन त्वक् अपामार्ग, अश्वगन्ध, गूगल, कपूर, काचरी, तगर, अगर, जटामासी, तुलसी के बीज, कमल गट्टा आदि के धूम द्वारा वात रोग, राज्य यक्ष्मा (क्षय रोग) त्वचा नेत्र सम्बंधी रोगों का नाश होता है।

अग्निदेव अपने सूर्य स्वरुप के द्वारा समस्त सृष्टि का पोषण करते है, प्राणियों के शरीर में स्थित जठराग्नि उनके द्वारा खाये अन्न को पचाती है। अग्नि रुपी सूर्य जल के वाष्पीकरण से बादलों की सहायता से वर्षा करते हैं। पवित्र अग्नि के द्वारा ही वातावरण स्वच्छ होता है। अतः अवशिष्ट पदार्थो को अग्नि में नहीं जलाना चाहिए। अग्नि को देवताओं का मुख कहा गया है अर्थात् यज्ञ अग्नि के द्वारा ही देवताओं को पहुँचायी गई हवि के द्वारा ही उन्हें शक्ति मिलती है और वे प्रसन्न होकर वर्षा करते हैं। समस्त प्रकार की तामसिक प्रवृत्तियों तथा कलुषित विचारों का ह्रास होता है, मनुष्य का मन पवित्र होता है ऋग्वेद में यह कथन वर्णित है:

''अग्निमीले पुरोहितं
यज्ञस्य देवमृत्विजं
होतारं रत्नधातमम्।''

यहाँ पर अग्नि को पुरोहित स्वरुप, यज्ञ का ऋत्विज्, होता और रत्नस्वरुप माना गया है। जहाँ एक ओर अन्य सभी तत्त्व दूषित हो जाते हैं वहाँ अग्नि को दूषित नहीं किया जा सकता। हमारे ऋषि अग्नि की इस विशेषता से भली-भाँति परिचित थे। इसलिए हवन और दूसरे सभी वैदिक कर्म में अग्नि का विशेष महत्त्व होता है।

दूसरा तत्त्व पृथ्वी है इसे स्वच्छ, सुन्दर और निर्मल कहा गया है सभी जीवों के जीवन का आधार है। पृथ्वी एक ही है जो वपन किये हुए बीजों को अनेक मात्रा में प्रदान करती है। अठारह महापुराणों में एक वामन पुराण में भूमि अर्थात् पृथ्वी को स्वच्छ बनाये रखने के लिए अविसर्जित पदार्थो का परित्याग करने का निषेध बताया है। पुराणों में पृथ्वी को देवी रुप में सम्मान दिया गया है। मानव तथा भूमि का सम्बंध पुत्र और माता की भाँति बताया गया है:

''नमो मातरे पृथिव्यै, माता भूमि पुत्रोऽहम् पृथिव्याः
पादस्पर्श क्षमस्व मे।''

- अथर्व वेद

-12/1/12

पृथिवी-अथर्ववेद 8/9/9 (कतमस्याः पृथिव्याः) में कहा है कि

ISSN 2277-5587

पृथ्वी अनेक है। सूर्य सिद्धान्त में इस पृथिवी का व्यास 1600 योजन बताया है। 4 कोश या 5 मील का योजन होता है, अत: 8000 मील हुआ। पृथ्वी की परिधि 2500 मील है। सूर्य पृथ्वी को धारण करता है। इसकी पुष्टि निम्न स्थल पर है:

''सविता यन्त्रै-
पृथिवी मरम्णादस्कम्भने।''

- ऋ.10/12/9/9

में सूर्य ने यन्त्रों (नियमन साधन) किरणों से अनाश्रय आकाश में पृथ्वी को थामा है।

पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के विषय में भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि भुवनकोष: 16 में इस प्रकार कहा है-

''आकृष्ट शक्तिश्च मही तथा यत
खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या
आकृष्यते तत्पततताव भाति
समे समन्तात्क्व यतत्वियंखाम्।।''

पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है, अत: ऊपर की भारी वस्तु को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है और वस्तु गिरती सी लगती है। पृथ्वी की मिट्टी का इलाज में प्रयोग किया जाता है।

''अरु: स्राणमिदं महत पृथिव्या अध्युद्भृतम्।
तदास्रावस्या भेषजं तदु रोगमनीनशत्।।''

- अथर्ववेद काण्ड 2 सूक्त-4, मंत्र-5

अर्थात् पृथ्वी में से उभरी हुई यह बहते घाव को पकाकर ठीक करने वाली मिट्टी बहते घाव का औषध है। वह निश्चय से रोग को नष्ट करती है। आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में शुद्ध मिट्टी की पुलटस विष को मारने, घाव को पूरने, पेडू इत्यादि की पीड़ा का शमन करने में प्रयोग की जाती है। गंगा जी की बालू में चर्म रोगों को नष्ट करने की शक्ति है। मिट्टी गला देती है और मुर्दे को दफन किय जाते है, उनको मिट्टी बना देती है। अथर्ववेद के 12 वें काण्ड पृथिवी सूक्त में पृथ्वी के गुणों के विषय में कहा गया है-

''नानावीर्या ओषधीर्या विभर्ति पृथिवी न: प्रभतां राध्यतां नं:।''

- 2

अर्थात् जो पृथ्वी अनेक प्रकार के गुणों वाली औषधि और वनस्पतियों को धारण करती है। वह पृथिवी हमारे लिए सुखों से विस्तृत हो और युक्त हो और हमारी सब कामनाओं की सिद्धि करें।

''यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापों यस्यामन्नं कृटय: संबभुवु:।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत, सा नो भूमि: पूर्वपेये दधातु।''

- 3

अर्थात् जिसमें समुद्र है, बहुत बड़ी-बड़ी झीलें है, बड़ी-बड़ी नदियाँ है, जिसमें अन्न और अन्य नानाविध भोग्य पदार्थ पैदा होते है, जिस भूमि पर रहता हुआ श्वास लेता हुआ और गतिमान प्राणी वर्ग उत्कृष्टता को प्राप्त होता है। वह भूमि हम सबको परिपुष्ट करने में युक्त करें।

पृथ्वी के भूपटल पर 29 मील के ऊँचाई तक पाये जाने वाले क्षेत्र में मूल तत्त्वों का परिमाण निम्न प्रकार है-

आक्सीजन (49.84%) सिलिकन (26.03%) अलमूनियम (7.28%), लोहा (4.12%), कैल्शियम (3.18%) सोडियम (2.33%), पौटेशियम (2.33%), मैग्नेशियम (2.11%), हाइड्रोजन (0.97%), टिटैनियम (0.41%), क्लोरिन (0.20%), एवं कार्बन (0.19%), तथो शेष (90-10=80 तत्व) (1.0) योग- 100

''अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो विभ्रत्यग्निरश्मसु।
अग्निरन्त: पुरूषेषु गोष्वश्वेष्वग्नय: ।।''

- 19

भूमि में अग्नि है और यह पृथ्वी औषधियों में अग्नि को और जल को धारण कर रही है। इस भूमि पर पड़े हुए पत्थरों में अग्नि विद्यमान है। पुरुषों के अन्दर भी वही अग्नि है और अश्वादि पशुओं में भी वही अग्नि सूक्ष्म पदार्थ अपने से सूक्ष्मतर में ही जाता है।

जल- 'जल' भी पृथ्वी पर शक्तिवर्धक तथा सभी जीवों का प्राण स्वरूप है। इसके द्वारा ही पृथ्वी, वृक्ष, लता, बनस्पति आदि का पोषण होता है।

मनुष्य शरीर का 2/3 भाग और उसके सम्पूर्ण भार का 4/5 भाग पानी होता है। सभी पेड़ पौधों और जीव जन्तुओं के शरीर में भी पानी रहता हे। अत: पानी को शुद्ध करना मनुष्य तथा समाज का अत्यावश्यक कार्य है। वैसे सर्वत्र वायरस जल को दूषित कर देता है। हमारे देश में प्रदूषित जल के कारण अनुमानत: 50 से 60 प्रतिशत लोग बीमार पड़ते हैं और 25 से 30 प्रतिशत लोग मृत्यु को प्राप्त हो जाते है। शहरी क्षेत्रों में पोलियो और पीलिया रोग इसी प्रदूषित जल की देन है। वायरस की वैक्टीरिया प्रोटोनोन्स और वर्म्स आदि कई तरीकों से मानव को नुकसान पहुँचाते है। कुछ तो आंतों पर हमला करके डायरिया को जन्म देते हैं। कुछ तेज बुखार, लिवर बढ़ने, रक्तस्राव और शरीर के द्रव्य में अवरोध सदृश व्याधियाँ करते है प्रकृति में सन्तुलन बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि जमीन से जितना जल लिया जाये, उसमें उतना ही डाल दिया जाये।

सृष्टि निर्माण होने पर पहले आकाश बना था। आकाश से वायु और वायु से जल बना था। बाद में जल ने पृथ्वी को बनाया। आजकल का विज्ञान कहता है कि गैस हाइड्रोजन के 2 मीलिक्यूल तथा आक्सीजन गैस का एक मीलीक्यूल जब मिलता है तो वह उष्णता को विद्युत पद्धति से प्राप्त कर लेने पर पानी में बदल जाता है।

कर्नल जेवियट द्वारा अनूदित आइने अकबरी के पृष्ठ 18 पर एक कपाल यंत्र का उल्लेख है। जिसमें जल भरा रहता था और उससे दिन के आठों पहरों का समय निर्देश होता था। यह पानी के दबाब पर बहाव पर आश्रित हो सकता था।

उज्जैन का महाकाल मन्दिर में वास्तव में इसी सिद्धान्त पर आधारित

काल गणना यन्त्र घड़ी थी।

जल अमृतरुप है। जल प्रक्षालन से अंग प्रत्यंगों से आलस्य दूर भागता है। तांबे के जल पात्र में रखा हुआ जल विशेष प्रभावयुक्त होकर आंतों के रोग को दूर करता है। यह पश्चिमी वैज्ञानिकों का मत है। अथर्ववेद में यह कहा गया है कि सूर्य की धूम में जल सेवन को कल्याणकारी औषधि बताया है।

''देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः।
शं नो भवन्तप औषधीः शिवाः।।''

- 6/23/3

फ्रांस में लुई कूने ने कूने स्नान पद्धति द्वारा टब में स्नान द्वारा पेट ग्रस्त सब रोगों को दूर करने की बात कही है।

सोते समय पैर धोकर सोने से स्वप्न दोष नहीं होता और नींद अच्छी आती है। प्रात:काल खाली पेट पानी पीने से पेट के विकार ठीक होते है तथा मुँह में पानी भरकर दोनों आँखों पर छींटे मारने से न केवल ज्योति बढ़ती है, बल्कि मोतिया बिन्दु तक कट जाता है।

योग पद्धति में कुंजल क्रिया से पेट के सब रोग दूर होने की बात विख्यात है।

खाली पेट जल पीने का रिवाज चाणक्य नीति में एक स्थल पर कहा गया है-

''अजीर्णे भेषजं वारि
जीर्णे वारि बल प्रदम्।।''

अर्थात कुछ अर्जीर्ण रह गया है तो वह प्रातः जल सेवन से ठीक हो जाता है और यदि न भी हो तो खुश्की दूर हो जाती है। शरीर की गर्मी निकालने में भी जल अद्‌भुत है। वह शरीरस्थ यूरिक एसिड और आक्जेलिक एसिड को घोलकर बराबर निकाल देता है। इस जलपात को आयुर्वेद में ऊषा पान की संज्ञा दी गई है और महत्व हेतु निम्न श्लोक वहाँ आया है-

''अर्शः शोथो संग्रहीण ज्वर जठर जरा,
कोष्ठ भेदो विकारः।
मूत्राधाता सपित्त श्रवणगति शिरा
क्षोण शूलाक्ष रोगाः।
ये चान्ये वात्तपित्तक्षयः कफकृताः
व्याधयः सन्ति जन्तोः
तास्तान् व्यास्तास्तु रोगान, निहरति,
पयः पित्तमते निशानाः।''

अर्थात् मूल व्याधि, सूजन, संग्रहणी ज्वर, पेट के रोग, कोष्ठ बद्धता, मोटापा, मूत्र रोग, कान, नाक, आंख, गला आदि सभी रोगों को उषापान ठीक करता है।

रात्रि भर लकडी के स्टैण्ड पर ताम्र पात्र में स्वच्छ जल रखने से उसमें विद्युत शक्ति उत्पन्न होती है। इस जल को सूर्योदय से पूर्व उषाकाल में नाक के द्वारा पिया जाता है। इसे ग्रीष्म ऋतु में प्रारभ करना चाहिए। प्रारम्भ में नाक द्वारा पीन से कुछ कष्ट होगा, पर अभ्यास से वह कष्ट होना बन्द हो जाता है। उसमें तुलसी और बेलपत्र डालें तो प्रथम से कीड़े और द्वितीय से मधुमेह वालों को विशेष लाभ होता है। रूद्राक्ष डालने से उच्च रक्तचाप वालों को लाभ होता है। हमारे देश में एस.एस. नेहरू ने विद्युत प्रभावित जल से पौधों को जल्दी उगाने और उनसे अच्छी फसल लेने के सफल परीक्षण किये है।

आकाशः आकाश तत्त्व का भी पर्यावरणीय दृष्टि से महत्त्व है। आकाश अर्थात् खुला स्थान। जब पर्यावरणीय घटकों को रिक्तता अथवा उप्युक्त स्थान नहीं मिलेगा तो समस्या उत्पन्न हो जायेगी।

वायुः पाँचवा तत्त्व वायु है। वायु हमारे शरीर में अमूर्त्त रुप से विचरण करती है और पर्यावरण का वह महत्त्वपूर्ण घटक है। प्राणियों के जीवन के लिए वातावरण में स्वच्छ वायु का होना अत्यावश्यक है। वायु को पुराण में पवन देव के रुप में मानकर उनकी पूजा की गई है। स्व. पण्डित गुरुदत्त एम.ए. ने वैदिक संज्ञा विज्ञान में वायु के सात गुण वर्णित किये है-

''वावायाहि दर्शते इमे सोमा अरंकृताः
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ।।''

- ऋ0-1/2/1

आयाहि	-	वायु का गर्म होकर उठना, उसका स्थान लेने हेतु इधर-उधर ठंडी वायु का दौड़ पड़ना
दर्शते	-	वस्तुओं का दिखलाने हेतु मीडियम। प्रकाश किरणों का उसमें चलना।
सोमा अरंकृता	-	वनस्पतियों की उत्पादक
तेषां पाहि	-	वनस्पतियों की रक्षक
श्रुधी	-	शब्द की वाहक/शून्य में शब्द सुनाई नहीं देता।

वायु स्वास्थ्य की दाता और रोगों की शमनकर्ता है। यह संकेत ऋग्वेद 10/131/1 में आया है।

''द्वाविमी वाती वात आ सिन्धोरापरावतः।
दक्ष ते अन्य आवातु परान्यो वातु यद्रपः।।''

दो प्रकार के वायु चलते है। एक अन्तरिक्ष और समुद्र से आता है। दूसरा सूखी भूमि से बहता है। प्रथम शरीर को पवित्र करता है तथा द्वितीय जो थल से मलादि के कारण जो अशुद्ध होता है, उसे शुद्ध करता है। प्रथम को देवदूत कहते है क्योंकि उसे प्रभु ने रोग शमन हेतु ही बनाया है। इसीलिए लोग समुद्र तट पर तथा पहाड़ पर मात्र वायु सेवन द्वारा स्वास्थ्य लाभ और रोग शमन हेतु जाते है। पर वायु शरीर के अन्दर रहकर सर्वत्र श्वास प्रश्वास की क्रिया करता है। उससे ही प्राणधारी जीवित रहते हैं। जिस प्रकार इस संसार में पृथ्वी, जल, वायु, आकाश प्रदूषित होते हैं ठीक उसी प्रकार से मानव शरीर में भी इन तत्त्वों का प्रदूषित होना सम्भव है।

पृथ्वी के दूषित होने पर व्यक्ति को समाज में प्रतिष्ठित पद और भव्य

जीवन शैली जैसी सुविधाएं पाने की इच्छा अनियंत्रित हो जाती हैं। जब जल तत्त्व दूषित होता है तो अप्राकृतिक काम इच्छा जागृत होती है। अग्नि तत्व को दूषित नहीं किया जा सकता। योग और साधना से साधक अग्नि तत्त्व के अनुकूल स्तर बनाये रखता है। वायु तत्त्व यह निश्चित करता है कि हृदय और फेफड़े ठीक से कार्य करें और मनुष्य की श्वांस प्रणाली व रक्त संचार प्रणाली भली-भांति रहे। अन्त में दूषित आकाश के कारण थायरायड व पैराथायरायड ग्रंथियों के रोग और श्रवण शक्तियों का क्षीण होना पाया जाता है।

अत: इन सब का मानव शरीर में सन्तुलन बनाये रखना परमावश्यक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *वैदिक वाड़.मय में विज्ञान - डॉ. रामेश्वर दयाल गुप्त, नाग पब्लिशर्स दिल्ली।*
2. *वेद परिचय (स्व. महात्मा नारायण स्वामी)*
3. *वैदिक संज्ञा विज्ञान (स्व. पं. गुरुदत्त विद्यार्थी)*

सामाजिक प्रबन्धन के परिप्रेक्ष्य में धर्मशास्त्रीय वर्ण व्यवस्था

पूजा गौतम
शोधार्थी,दयालबाग शिक्षण संस्थान, आगरा (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

प्रबन्धन एक ऐसी व्यापक प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्ध रखती है। प्रत्येक व्यक्ति इस समग्र समाज की एक लघुतम किन्तु महत्त्वपूर्ण इकाई के रुप में कार्य करता है तथा प्रत्येक व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से समाज की व्यवस्था को प्रभावित करता है। अत: समाज की इसी व्यवस्था को हम सामाजिक प्रबन्धन के परिप्रेक्ष्य में स्वीकार करते हैं जिसकी दृढ़ आधारशिला हमें धर्मशास्त्रों, विशेषत: स्मृति ग्रन्थों में प्राप्त होती है। धर्मशास्त्रीय ऋषियों ने तत्कालीन समाज की समस्त परिस्थितियों, आवश्यकताओं व उद्देश्यों को ध्यान में रखकर सामाजिक व्यवस्था के कुशल संचालन हेतु समस्त कारकों का सूक्ष्म निरीक्षण कर समाज के लिये ऐसी नीतियों का निर्धारण किया जिससे सामाजिक क्रियाकलाप तथा व्यवस्था सुचारु रुप से क्रियान्वित हो सके तथा समाज सफल, स्वस्थ व सुचारु रुप से विकास कर सकें।

इसी सामाजिक प्रबन्धन की शृंखला में धर्मशास्त्रीय वर्णव्यवस्था भी एक सतत् प्रयास था। जो समाज में प्रत्येक व्यक्ति के कार्यात्मक विभाजन से सम्बन्धित था। प्राचीन ऋषियों ने भारत के समाज को निश्चित कर्मों के अनुसार विभिन्न वर्णों में विभाजित किया था। धर्मशास्त्रों का यह विभाजन व्यक्ति की उच्चता, हीनता की दृष्टि से नहीं अपितु व्यक्ति की क्षमतानुसार कर्म एवं व्यवसाय के आधार पर किया था।

किसी भी समाज या राष्ट्र के उन्नयन के लिये जिन प्रमुख मानवीय क्रियाकलापों का होना वाञ्छनीय हो सकता है, प्राय: ये सब धर्मशास्त्रीय वर्णाश्रम व्यवस्था में सन्निविष्ट है। इसी वर्णाश्रम व्यवस्था के संकेत हमें धर्मशास्त्रों में प्राप्त हुए है यथा-चत्वारो वर्णा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रा:।[1]

इसी प्रकार विष्णु स्मृति का भी कथन है-

''ब्राह्मणा: क्षत्रियों वैश्य: शूद्रश्चेति वर्णाश्चत्वार:।''
(विष्णुस्मृति, सवर्णाश्रम वृति धर्मवर्णनम्, श्लोक 1)

समाज के सावयव स्वरुप को स्वीकार करके ही आचार्य मनु कहते हैं-

**''लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहुरूपादत:।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्।।''**[2]

अर्थात्-लोकवृद्धि के लिये ब्रह्मा ने मुख, बाहु, उरु, व पैर से क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र इन चारों वर्णों की सृष्टि की। इस प्रकार आचार्य मनु, याज्ञवलक्यादि जिन आचार्यों ने समाज को चार वर्णों में विभाजित स्वीकार किया उनका मानना था कि प्रथम विराट पुरुष के विभिन्न अंगों जिन चार वर्णों की उत्पत्ति हुई है वह इस तथ्य को व्यक्त करती है कि जिस प्रकार शरीर का एक अंग दूसरे अंग का पूरक है उसी प्रकार वर्णव्यवस्था के ये चारों वर्ण भी अपने-अपने कर्त्तव्यों से सामाजिक प्रबन्धन के पूरक हैं। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मणों की उत्पत्ति का कारण उनका बोलना व लोगों को शिक्षित करना है। इसी सन्दर्भ में आचार्य वशिष्ट

ISSN 2277-5587

का कथन है-

"षट्कर्माणि ब्राह्मणस्य।

स्वाध्यायाध्ययनध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति।।"[3]

इसी प्रकार आचार्य गौतम ने भी ब्राह्मणों के कर्म के विषय में कहा है-

"द्विजातीनां मध्ययमिज्यादानम्।

ब्राह्मणरयाधिका: प्रवचनमं याजनं प्रतिग्रहा:।।"[4]

इस प्रकार प्राचीन भारतीय संस्कृति में विद्या, साधना, धर्म व आचार का आध्यात्मिक महत्त्व होने के कारण उनका संरक्षण और प्रचार करने वाला एक पृथक् वर्ग बना जिसे ब्राह्मण वर्ग का नाम मिला। इस प्रकार अध्ययन, अध्यापन, यजन-याजन, दान, प्रतिग्रह को निष्ठापूर्वक पालन कर ज्ञान व सदाचार की आध्यात्मिक प्रतिष्ठा कर समाज का सही नेतृत्त्व करना ब्राह्मण वर्ग का कर्त्तव्य क्षेत्र रहा है।,

ब्रह्मा की भुजाओं से क्षत्रियों की उत्पत्ति होने का कारण उसकी शक्ति को माना है भुजाएँ शक्ति की सूचक है अत: भुजाओं का कारण शासन संचालन तथा शस्त्र धारण कर समाज की रक्षा करना है। इस प्रकार समाज की सुरक्षा का कार्य क्षत्रिय वर्ग का था।

"प्रजानां रक्षणं दानम् इजयाध्ययनमेच्।

विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समादिशत्।।"[5]

आचार्य वशिष्ट का कथन भी इस ओर संकेत करता है-

"अध्ययनं यजने दानं च शस्त्रैण च प्रजापालनं सर्वधर्मस्तेन जीवेत्।"[6]

अत: समाज में क्षत्रिय की अभिव्यक्ति जिन विभिन्न रुपों में होती है उनमें उसका समाज से सम्बन्ध, उसकी विवेक, बुद्धि, कौशल के मध्य धैर्यपूर्वक, शक्ति के साथ और सफलतापूर्वक चलने की व्यापक कसौटी है। अत: क्षत्रिय अपने साहसपूर्ण कार्य करने की क्षमता, अपने पराक्रम व बाहुबल से समाज को सुरक्षा प्रदान करते हैं तथा समाज में सुनियन्त्रित शासन की स्थापना ही क्षत्रिय वर्ग का प्रमुख उत्तरदायित्त्व रहा था। इसी प्रकार तीसरा वैश्य वर्ग है जिसकी उत्पत्ति उदर या जंघाओं से मानी गई है उसका कारण वैश्य वर्ग द्वारा समाज की उदरपूर्ती करना रहा है, धनार्जन करना ही वैश्य वर्ग का कार्य रहा है, पवित्र कर्मो के द्वारा धनार्जन कर समाज की उदरपूर्ती करना है।

वैश्य वर्ग के सन्दर्भ में आचार्य याज्ञवलक्य का कथन है-

"कुसीद कृषिवाणिज्य पशुपाल्यं विश: स्मृतम्।"[7]

वैश्यों के कार्यभार के विषय में आचार्य मनु का कहना है-

"पशूनां रक्षणं दानम् इज्याध्ययनमेव च।

वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषि मेव च।।"[8]

इस प्रकार कृषि, वाणिज्य व पशुपालन द्वारा राष्ट्र को आर्थिक सम्पन्नता प्रदान करना ही वैश्य वर्ग का प्रमुख कर्त्तव्य था। समाज के पोषण कर्त्ता के रुप में वैश्य वर्ण का प्रमुख स्थान था तथा सामाजिक उदरपोषण कर समाज की जठराग्नि को शान्त करते हुए वैश्य वर्ण सामाजिक चक्र की धुरी को अपने कंधो पर लिये हुए हैं।

शूद्र वर्णव्यवस्था का अन्तिम किन्तु महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है जिनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के पैरों से मानी गई है। इसका कारण यह है कि सभी वर्णों की सेवा का भार शूद्र वर्ण पर था तो जिस प्रकार पैर समस्त शरीर के भार को संभालते है इसी प्रकार शूद्र वर्ग भी अपनी सेवा द्वारा समाज के भार का वहन करता था। आचार्य मनु का इसी सन्दर्भ में कथन है-

"एकमेव तु शूद्रस्य प्रभु: कर्म समादिशत्।

एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।।"[9]

इस प्रकार विराट पुरुष के विभिन्न अंगों से चार वर्णों की उत्पत्ति इस तथ्य को व्यक्त करती है कि चारों वर्णो की भिन्न-भिन्न स्वभागवत विशेषताएँ थी, सबके पृथक्-पृथक् गुण व कर्म थे किन्तु ये सभी वर्ण एक ही विराट पुरुष रुपी समाज के भाग होने के कारण पारस्परिक आत्मनिर्भर थे तथा जिस प्रकार शरीर के किसी भी एक अंग के बिना दूसरा अंग सही रुप में कार्य नहीं कर सकता ठीक उसी प्रकार वर्णव्यवस्था के अभाव में तत्कालीन समाज सही रुप में संचालित नहीं हो सकता था। तथा उस समय ऋषियों ने सामाजिक स्तरीकरण की इस व्यवस्था के माध्यम से समाज का मनोवैज्ञानिक आधार पर कार्यात्मक विभाजन किया था। इस व्यवस्था के द्वारा हिन्दु समाज के संगठन, संरक्षण, संचालन, विकास एवं प्रगति का आधार बनाया गया क्योंकि सैद्धान्तिक दृष्टि से वर्णव्यवस्था शक्तियों का सामाजिक श्रम का और सामाजिक कर्त्तव्यों का सर्वाधिक वैज्ञानिक व उपयोगी विभाजन है जिसका श्रेय मुख्यत: हमारी संस्कृति एवं सभ्यता की रक्षा करने वाले धर्मग्रन्थकारों को है जिन्होंने अपने महत्त्वपूर्ण चिन्तन एवं प्रज्ञा के आधार पर इस प्रकार की महत्त्वपूर्ण वर्ण व्यवस्था को प्रारम्भ किया व सामाजिक संस्तरण, स्तरीकरण व प्रबन्धन की व्यवस्था को बल देकर सामाजिक दशा में प्रगतिशील संजीवनी का आवरण दिया है। इस प्रकार धर्मशास्त्रों में वर्ण व्यवस्था के माध्यम से एक कुशल सामाजिक प्रबन्धन को आधारशिला दी तथा समाज के प्रत्येक मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक क्षमता के क्रमिक विकास के रुप में समाज को संगठित करने व प्रबन्धित करने का सफल प्रयास किया वर्तमान समाज में भी बढ़ रही सामाजिक कुरीतियों, अनैतिकताओं व अराजकताओं के क्षेत्र में धर्मशास्त्रीय सामाजिक प्रबन्धन एक प्रेरणाप्रद स्रोत है जिसमें सभी व्यक्तियों को अपने-अपने कर्त्तव्य व क्षमताओं के सदुपयोग के लिये प्रेरित कर समाज को कुशल रुप से प्रबन्धित किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *वशिष्ट स्मृति, श्लोक 46*
2. *मनु स्मृति-1/34*
3. *वशिष्ट स्मृति (2/19-20)*
4. *गौतम स्मृति (10/1-2)*
5. *मनु स्मृति 2/89*
6. *वशिष्ट स्मृति 2/22*
7. *याज्ञवलक्य स्मृति 1/119*
8. *मनु स्मृति 1/89*
9. *मनु स्मृति 1/91*

ढूँढाड़ क्षेत्र में साहित्य एवं कला का ऐतिहासिक विकास

राकेश देवी
शोधार्थी,सिंघानिया विश्वविद्यालय,झुंझूनूं

shodhshree@gmail.com

हमारे देश में संगीत का एक आदर्श था, उसकी एक साधना थी। संगीत विलास या कौतुहल का विषय नहीं वरन् भक्ति द्वारा ईश्वर साक्षात्कार का साधन तथा मोक्ष प्राप्ति की आमोघ निधि है। भारतीय अनुश्रुति में वैदिक जन-जीवन के दैनिक कार्यो से लेकर विशेष उत्सवों तक में संगीत की अनिवार्यता समाज स्वीकृत रही है। भारतीय (हिन्दुस्तानी) संगीत देहली शाही दरबारों में अधिक पनपा। आधुनिक संगीत प्राचीन भारतीय परसीयन संगीत का मिश्रण है। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के दरबार में संगीतवेत्ताओं का बड़ा आदर था, किन्तु औरंगजेब ने गद्दी पर बैठने के बाद जिद में पड़कर अपने दरबार में संगीत का बहिष्कार कर दिया। तब शाही दरबार के संगीतज्ञों ने जयपुर, बीकानेर आदि राज्यों में आकर आश्रय लिया। मुगल वंश के अन्तिम बादशाह मोहम्मद शाह रंगीले संगीत के विशेष प्रेमी थे।

जयपुर के शासक संगीत व नृत्य जैसी ललित कलाओं को संरक्षण देने तथा उन कलाओं से सम्बन्धित प्रतिभाओं का विकास करने में प्रोत्साहन देते थे। मिर्जा राजा जयसिंह का दरबार कवियों, कलाकारों और संगीत विशारदों के लिए प्रसिद्ध था। मिर्जा राजा बिहारी सतसई के प्रति दोहे के लिए, एक स्वर्ण मुद्रा नित्य कवि बिहारी को देते थे। संगीत रत्नावली ग्रन्थ की रचना मिर्जा राजा के समय में ही हुई।

राज घराने में ऐसी परम्परा थी कि प्रत्येक महाराज कुमार को सभी भाषाओं का ज्ञान अर्जित करने के साथ युद्ध विद्या, शस्त्र विद्या, राजनीति, साहित्य और संगीत की शिक्षा भी विधिवत् दी जाती थी। महाराजा सवाई प्रतापसिंह स्वयं कवि और संगीताचार्य थे। चाँदखाँ गाँधर्व विद्या में इनके गुरु थे। महाराज ने उस्ताद चाँद खाँ को 'बुध-प्रकाश' की उपाधि से विभूषित किया था। उस्ताद चाँद खाँ के वंशज तथा शिष्यगण 'सैनिया' वादक घराने के थे जो अब भी जयपुर में बताये जाते हैं। बुद्ध प्रकाश जी ने संगीत का एक उत्तम ग्रंथ 'स्वर सागर' की रचना की, जिसमें स्वर, तालों में निबन्ध उच्च श्रेणी की बन्दिशें देखने को मिलती है। महाराजा प्रतापसिंह जी द्वारा रचित जो भी गेय पद देखने को मिले उन सभी में उत्कृष्ट कोटि के तालों का प्रयोग हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि उन्हें राग ज्ञान नहीं अपितु तालों का भी उच्च स्तरीय ज्ञान था। इनके प्रत्येक पद पर राग नाम से साथ तालों के भी नाम दिये हुये हैं।

कवि राधा कृष्ण ने 'राग रत्नाकार' नामक संगीत ग्रंथ तैयार किया। प्रतापसिंह के समय चन्द्रमहल में गुणीजन खाना की स्थापना हो चुकी थी। अली अगवान और सदारंग उनके समय के प्रसिद्ध स्वरकार थे। महाराजा प्रतापसिंह स्वयं 'ब्रजनिधि' के उपनाम से रचनाएँ करते थे। इनके चरित्र का भक्त और कवि पक्ष बहुत उज्वल सफल और प्रभावशाली था। वे भगवान कृष्ण और राधा के उपासक थे। इनकी रचनायें ब्रजनिधि ग्रंथावली नाम से प्रकाशित हो चुकी है। आनन्दघन, दिवाकवि, गणपति, बिहारीनाथ, शिवदास, कलानिधि और पद्माकर वे कवि थे जो प्रतापसिंह के कृपा पात्र रहे।

आमेर की सम्पन्नता और महत्ता सवाई जयसिंह के समय बहुत बढ़ी-चढ़ी थी और अपने अन्य कारखानों के साथ जयसिंह ने गुणीजन खाना भी स्थापित किया था। उसके राजत्व काल की अन्याय बातों की जहाँ विस्तृत और प्रचुर जानकारी उपलब्ध हैं, वहाँ संगीत और नृत्य के विषय में अधिक कुछ नहीं मिलता।

ISSN 2277-5587

प्रतापसिंह का काल पोथीखाने का स्वर्णयुग था वैसे ही गुणीजन खाने के लिये भी स्वर्ण युग था। गुणीजन खाने को इसी राजा ने विकसित और सुव्यवस्थित किया। उसके दरबार में कवि बाईसी, वीर-बाईसी, वैद्य-बाईसी और पंडित बाईसी के साथ-साथ गाँधर्व बाईसी भी थी।

प्रतापसिंह की साहित्य, संगीत और कला तीनों में समान रुचि नहीं थी, गहरी पैठ भी थी। उसके समय में गुणीजन खाने के संगीतविदों ने सात अध्यायों में संगीत का एक विशद् ग्रंथ तैयार किया था जिसकी जोड़ का हिन्दी भाषा में इस विषय का दूसरा ग्रंथ नहीं है। इस ग्रंथ का नाम है ''राधा-गोविन्द संगीत सार''। इसी समय की एक अन्य रचना राधा कृष्ण कवि का ''राग-रत्नाकार'' है जो अपेक्षाकृत छोटा रीति ग्रंथ है।

संगीत के साथ जयपुर के कत्थकों ने कत्थक नृत्य की उस शैली का विकास किया जो आज जयपुर शैली अथवा 'जयपुर घराना' कहलाती है। लखनऊ व बनारस घरानों के साथ इस घराने ने शास्त्रीय नृत्य को पाँवों की गीत के विशेष आयाम दिये।

कत्थक एक जाति थी जो शेखावाटी में रहती थी। शेखावत सरदारों के मुगल दरबार की चाकरी में जाने पर उनके नर्तक भी उनके साथ गये और मुगल दरबार में काम करने लगे। मुगल साम्राज्य के क्षय के साथ गायक और नर्तक भी दिल्ली आगरा छोड़कर अन्य प्रांतीय राजधानियों में चले गये। जयपुर ऐसे कलाकारों के लिए बहुत अनुकूल दरबार था। कहते हैं, भानुजी नामक कत्थक का वंशज दूल्हा जी या गिरधारी जयपुर आया था। हरिहर प्रसाद और हनुमान प्रसाद गिरधारी के ही पुत्र थे। इन भाईयों को यहाँ ''देव परी का जोड़ा'' कहते थे। हरिहर प्रसाद ताण्डव को अधिक महत्त्व देता था और हनुमान प्रसाद लास्य को। हनुमान प्रसाद कृष्ण भक्त या गोविन्द भक्त था। गोविन्द जी के मन्दिर को फर्श पर गुलाल बिछाकर वह जब नृत्य करता था तो उसके गतिमान चरण हाथी का आकार बना देते थे।

आज से लगभग अढ़ाई सौ वर्ष पूर्व भारतीय संगीत व नृत्यकला पर मुगल संस्कृति का प्रभाव जम चुका था। मुगल बादशाह औरंगजेब के आतंक से समस्त समाज भयभीत होकर अपनी कला साधना को भूल कर किसी भी प्रकार से जीवन व्यतीत करने का उपाय खोज रहा था। उस युग में बनारस की कला और संस्कृति की लड़खड़ा गई। लखनऊ शहर में नृत्य व संगीत नामक कोई घराना एवं विद्वान तब तक पैदा ही नहीं हुआ था। उस कठिन समय का सामना करने और धर्म व संस्कृति की रक्षा करने का बीड़ा उठाया आमेर नरेश सवाई जयसिंह ने। सवाई जयसिंह का राज्यकाल औरंगजेब के राज्यकाल के समकालीन था। वह एक वीर योद्धा की भाँति राजस्थान की पवित्र भूमि पर जन्म लेकर आया और धर्म व संस्कृति के लिए जो कुछ कर गया, वह आज भी इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

जयपुर के राजसी दरबारी और सामन्ती वर्ग में परिपोषित हुई चित्रकला जयपुर शैली के नाम से विख्यात है। महाराजा सवाई जयसिंह (1699-1743) के जयपुर नगर बसाने से पूर्व कछावा वंश की राजधानी आम्बेर थी इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से जयपुर शैली को कछावा शैली या अम्बर शैली विरासत में मिली।

अम्बर या कछावा शैली के बहुत कम उदाहरण उपलब्ध है और जो है उन पर भी मुगल शैली का प्रभाव अधिक है। 16वीं शती के मध्य में राजस्थान के राजा लोग अकबर की अधीनता करने लग गये थे। उसने सन् 1562 में सबसे पहले राजा भारमल की पुत्री से विवाह करके राजस्थान के राजघराने से अपने सम्बन्धों की भूमिका प्रारंभ कर दी। राजा मानसिंह के समय (1589-1614) मुगल साम्राज्य से कछावा वंश के सम्बन्ध बड़े गहने थे, अतएव कलात्मक आदान प्रदान बहुत स्वाभाविक था। 1600 से 1614 के आसपास का आमेर की छतरियों का भित्ति चित्रण इस शैली का प्राचीनतम उपलब्ध चित्रण है। बैराठ के बाग तथा राजा मानसिंह के जन्म स्थान मौजमाबाद के भित्त चित्र भी अम्बर शैली के प्राचीन उदाहरण है। अकबर कालीन प्रसिद्ध सचित्र रज्मनामा (1584-1588) में कछावा शैली के प्रारम्भिक स्वरुप एवं कलात्मक आदान प्रदान का रुप दृष्टिगोचर होता है।

अम्बर शैली का दूसरा चरण मिर्जा राजा जयसिंह (1625-1667) से प्रारंभ होता है। बिहारी जैसे रीति-कालीन कवि राजा के दरबारी रत्न थे, जिनकी बिहारी सतसई ने अनेक चित्रकारों और रसिकजनों को प्रभावित किया। तत्कालीन ऐसे चित्र बहुत कम उपलब्ध हुये हैं, जिनमें लोक कला की विशेषता और मुगल प्रभाव झलकता है। राजा सवाई जयसिंह ने सन् 1727 में अपने समृद्ध राज्य के अनुरुप नयी राजधानी जयपुर को बसाकर विभिन्न कलाओं के उत्थान में विशेष योगदान दिया। चित्रकला में लोककला के स्थान पर सुसंस्कृत कोमल चित्रांकन को महत्व मिला तथा संस्कृत ग्रंथों और हिन्दी ग्रंथों के आधार पर चित्रण बाहुल्य पुरसर हुआ, किन्तु तत्कालीन चित्रकला पर इतना मुगल प्रभाव है कि उसे मुगल शैली से अलग करना कठिन है।

सवाई जयसिंह का युग कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है। इन्होंने बड़े वैज्ञानिक और नियमबद्ध तरीके से जयपुर नगर को बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। महान गणितज्ञ, ज्योतिष तथा नक्षत्र शास्त्री होने के कारण उन्होंने एक वेधशाला का निर्माण करवाया और 'चन्द्रमहल', 'जयनिवास', 'तालकटोरा' तथा सिसोदिया रानी का महल जैसी भव्य इमारतें यहाँ बनवाई। यही नहीं, सवाई जयसिंह ने अपने राजचिन्हों, कोषों, रोजमर्रा की वस्तुएँ, कला का खजाना, साज-सामान आदि सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए 'छत्तीस कारखानों' की स्थापना की, जिनमें 'सूरतखाना' एक है (यहाँ चित्रकार चित्रों का निर्माण करते थे) इसी समय में 'रसिकप्रिया', 'कविप्रियाँ', 'गीत गोविन्द', 'बारहमासा', 'नवरसा' और 'रागमाला' चित्रों का निर्माण हुआ। ये सभी चित्र मुगलिया प्रभाव लिये हुए थे। एक अपूर्ण किन्तु तिथि युक्त (विक्रम संवत 1766) ''रागमाला'' आमेर में बनी हुई कॉंकरोली कला संग्रह से प्राप्त हुई है, जिससे उपर्युक्त चित्रों का काल क्रम भी निश्चित किया जा सकता है। इस समय के दरबारी चित्रकार मौहम्मद शाह व साहिबराम थे। इसी समय में जयसिंह के दरबारी कवि शिवदासराय द्वारा ब्रज भाषा में तैयार करवाई गई सचित्र पाण्डुलिपि 'सरस रस ग्रंथ' 1737 ई. (संवत 1794) है जिसमें कृष्ण विषयक चित्र 39 पूरे पृष्ठों पर अंकित है।

जयपुर शासकों की साहित्य और कला के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण देन है। जिसका प्रमाण सिटी पैलेस संग्रहालय में सुरक्षित पोथीखाना है जो पहले आमेर के राजमहलों में सुरक्षित था। तत्पश्चात् उसे नई राजधानी जयपुर में स्थापित किया जो अब आम जनता के अध्ययनार्थ विशेष सुविधाओं के साथ प्रदर्शित किया हुआ है। इस पोथीखाना में अनेक तिथियुक्त हस्तलिखित ग्रंथ है। इसमें महाराजा भारमल से लेकर मानसिंह द्वितीय तक की प्रमाणिक सामग्री उपलब्ध है।

इनमें विष्णु सहस्त्रनामा 1557 ई. आमेरगढ़, पुराणसार 1552 ई. जिनदत्त चरित्र आमेर 1554 ई., पाण्डवपुराण 1559 ई. आमेर, हरिवंश पुराण 1559 ई. आमेर आदि तिथियुक्त उल्लेखनीय गंथ हैं। जयपुर के राजा विद्या अनुरागी और विद्वानों के आश्रयदाता रहे हैं। मिर्जा राजा जयसिंह ने बिहारी जैसे महाकवि को अपना दरबारी कवि बनाया, जिन्होंने 1657 ई. में बिहारी सतसई की रचना की थी। इनके शासनकाल में मनोहर महात्मा प्रमुख सुलेख था, जो महत्वपूर्ण ग्रंथों व पाण्डुलिपियों को लिखता था। महाराजा रामसिंह ने पोथीखाना के संग्रह को बढ़ाया तथा जयपुर संस्थापक महाराजा सवाई जयसिंह ने तो पोथीखाना की समृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनकी मृत्यु को विद्या और विज्ञान की मौत कहा गया।

सवाई प्रतापसिंह का काल तो पोथीखाने का स्वर्णयुग था। स्वयं इस कवि महाराजा ने बीस से भी अधिक काव्य ग्रंथों की रचना की थी। पोथीखाना के विशाल संग्रह को चारों भागों में बाँटा गया है, जिसमें पहिला भाग तो 'खास मुहर' संग्रह हैं। इसमें लगभग आठ हजार ग्रन्थ और पाण्डुलिपियाँ हैं। खास मुहर से आषय राजा की अपनी सील की हुई किताबों से है। हर राजा अपनी पंसद की पुस्तकें संग्रहित करवाकर रखता था। तथा जब वे परलोक गमन होते तो कमरे के साथ किताबों की अलमारी को भी सील की दी जाती। इस खास मुहर ग्रंथों के संग्रह ने महाराजा रामसिंह द्वितीय तक की पुस्तकें मिलती हैं। दूसरा भाग 'खास संग्रह' है और इसमें लगभग साढ़े तीन हजार हस्तलिखित और बहुमूल्य चित्रों से सुसज्जित ग्रन्थ हैं। प्रथम के समय सम्राट अकबर के दरबार में लिखी गई तथा उसके नवरत्नों में अबुद फैजी व अबुल फजल के द्वारा तैयार करवायी गयी रज्जमनामा में 129 और षाही रामायण में 172 चित्र हैं। तीसरा महत्त्वपूर्ण भाग सवाई जयसिंह के गुरु रत्नाकार पुंडरीक महाशब्द का संग्रह है। इस संग्रह में लगभग ढ़ाई हजार पाण्डुलिपियाँ व ग्रन्थ है। चौथा भाग अनेक छपी हुई पुस्तकों का है कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे और छपे ये सब इस संग्रह में सुरक्षित है। इसमें कलकत्ता की रायल ऐशियाटिक सोसाइटी ने बिबलियोथिका इंडिका सिरीज इण्डियन आर्ट सिरीज, महाराजा माधोसिंह के समय जयपुर पोर्ट फोलियो आफ आर्कटिक्चरल डिटेल्स की बारह जिल्दें जयपुर के रेजीडेंसी सर्जन टी.एच. हैण्डले ने यही तैयार की थी। इसी अँग्रेज का मेमोरिज ऑफ जयपुर एग्जीबिशन भी चार भागों में प्रकाशित हुई जो इस संग्रह की महत्त्वपूर्ण धरोहर है।

जयपुर का राज घराना राजनैतिक दृष्टि से ही नहीं अपितु कला व संस्कृति के प्रेमी के रुप में भी विख्यात है। उसमें किले, जन्तर-मन्तर, हवामहल, रामनिवास बाग, देवालय आदि सुन्दर वस्तुओं का निर्माण करवाया। जिनके कारण यह आज तक सबकी आँखों का तारा बना हुआ है। जयपुर के राजा साहित्य के बड़े रसिक थे वे हमेशा जागीरी व उपाधियों द्वारा कवियों को सम्मानित करते रहे। वे यदि अन्य दरबारें में सम्मानित किसी कवि की अधिक प्रशंसा सुनते तो किसी न किसी तरह उसे प्रसन्न कर अपने दरबार की शोभा बढ़ाते थे। कुलपति मिश्र, कृष्ण भट्ट जैसे प्रसिद्ध कवि अन्य दरबारों से ही लाये गये थे। जयपुर दरबार अपने कवियों को सर्वथा सम्पन्न और राजसी ठाट-बाट में देखना चाहता था। इसी कारण उन्हें एक-एक दोहे पर एक-एक मुहर तक मिल जाती थी। सफर करने के साथ लाव-लश्कर मिल जाता था। कहा जाता है कि एक बार कविराज पद्माकर के लाव-लश्कर को देखकर बूँदीवालों ने समझा कि उनके राज्य पर कोई चढ़ाई करने आ गया है। तब पद्माकर ने उनका भ्रम दूर करने के लिए अपने आश्रयदाता को सगर्व स्मरण करते हुये कहा, ''नाम पद्माकर डराऊ मति काऊ भैया तुम हम कविराज हैं। प्रताप महाराज हैं।'' कविता के बल पर कवियों को मुसाहिबी जैसे उच्च राज्य पद मिल जाते थे। नरेशों के पारिवारिक और राजनैतिक जीवन पर उनकी बात का महत्त्व हो जाता था।

जयपुर नरेश विद्या के प्रति स्वयं श्रद्धालु थे, इसी कारण कई कवियों का गुरु जैसा आदर करते थे। अपार सम्मान श्रद्धा और वैभव के कारण जयपुर दरबार में कवियों का सदैव जमघट रहा। यों तो यहाँ डिंगल, उर्दू, फारसी, कई भाषाओं कर रचनाओं को सम्मान मिला, किन्तु उनमें प्रमुखता संस्कृत व हिन्दी की रचनाओं की रही।

महाराज विष्णु सिंह के पश्चात् जयपुर नगर संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय का शासन प्रारंभ होता है। इनका शासन काल कछवाहा वंशीय राजाओं के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित है। इनकी प्रत्युत्पन्नमति ने इन्हें सर्वोच्च सम्मान, राजाधिराज व सवाई की उपाधियाँ तथा अन्य पार्श्ववर्ती राज्यों में गहरी मित्रता प्रदान की थी। इनकी विलक्षण बुद्धिमता एवं कलाप्रियता का मूर्तिमान दृष्टान्त जयपुर नगर आज भी भारत के कश्मीर तथा संसार की सुन्दरतम् नगरी पेरिस को अपने सौन्दर्य में पीछे रखता है। कर्नल टॉड ने लिखा है कि-

''शासन में राजनीति और न्याय के नाम पर सवाई जयसिंह का नाम ऊँचा है। इसमें किसी को मतभेद नहीं हो सकता, यह दूसरी बात है कि विदेशी-इतिहासकारों ने निष्पक्ष होकर उसके गौरव का वर्णन नहीं किया ...।''

इस प्रकार एक विदेशी विद्वान् का कथन महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। महाराजा विष्णुसिंह के दो पुत्र थे - जयसिंह तथा विजयसिंह। मार्ग शीर्ष कृष्ण 6 संवत 1745 तद्नुसार 3 नवम्बर, 1688 को राठोड़ महारानी इन्द्रकुंवरी देवी के गर्भ से महाराज जयसिंह का जन्म हुआ था। इसके अध्यापन व शिक्षा के लिये पंडित माधव भट्ट पर्वणकट की नियुक्ति हुई थी। महाराज विष्णुसिंह का देहान्त माघ कृष्ण 7 संवत् 1756 तद्नुसार 1 जनवरी, 1700 को हुआ था। तत्पश्चात् आप आमेर की गद्दी के उत्तराधिकारी बने।

संस्कृत साहित्य का विकास: महाराजा सवाई जयसिंह का समय संस्कृत भाषा के विकास के लिये विशेषत: उल्लेखनीय है। स्वयं महाराजा संस्कृत तथा फारसी के विद्वान् थे। वे ज्योतिषशास्त्र के भी असाधारण ज्ञाता थ। सूर्य-चन्द्र के ग्रहणों तथा ग्रहों के उदय व अस्त

ISSN 2277-5587

की गणित में जो वास्तविक अन्तर उपस्थित हो गया था, उसे देखकर उन्होंने और अनेक विश्व विख्यात ज्योतिष शास्त्र वेत्ताओं को बुलाकर अनेक सारणियों का निर्माण कराया। इस कार्य के लिए अनेक ज्योतिषियों को उन्होंने पुर्तगाल भी भेजा था। चन्द्रनगर से दो फ्रेंच पादरियों को भी बुलवाया था, जो प्रकाण्ड ज्योतिषी थे। जर्मनी से फादर ऐंड्रीज तथा अन्य ज्योतिषियों को आमन्त्रित किया था। इन्होंने ज्योतिष के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का जो अरबियन, पर्सियन और फ्रेंच आदि भाषाओं में थे, संस्कृत में अनुवाद भी करवाया था। बहुत विचार-विमर्श के पश्चात् भारत के 5 सुप्रसिद्ध ज्योतिष यन्त्रालयों (Astgronomical Obserratioties) का निर्माण करवाया था। ज्योतिष सम्बन्धी अनेक नवीन यन्त्र भी बनवाये थे। समरकन्द के ज्योतिषी मिर्जा उलूगबेग से हिजरी सन् 841 (1437 ई.-38 ई.) में यह नक्षत्रों की एक सारणी बनायी थी। जिसके निर्माता को 207 वर्ष बीत चुके थे उसके अनुसार गणित में अन्तर आने लगा था। महाराजा सवाई जयसिंह उस अन्तर को निकाल कर तत्कालीन बादशाह मुहम्मदशाह के नाम से उस सारणी को जिज मुहम्मदशाही नाम से विख्यात किया। इसका अनुवाद फारसी तथा अन्य भाषाओं में भी हुआ। इसी प्रकार 'यन्त्रराज' नामक एक नवीन ग्रन्थ का निर्माण इनकी स्वयं की देन है, जिसमें इस यन्त्र के निर्माण प्रकार, उपयोग-प्रयोग आदि का सविस्तार वर्णन है। यह ग्रन्थ राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से छप चुका है। विश्व-विख्यात भारतीय ज्योतिषियों में सम्राट जगन्नाथ का नाम चिरस्मरणीय रहेगा। जिनमें इनकी प्रेरणा से 'युक्लिड' की सम्पूर्ण रेखागणित को अरबी से संस्कृत में अनुदित किया था। दूसरा ग्रन्थ 'सिद्धान्त कौस्तुभसार' है, जो 'क्लाडिमय कालमी' के 'अलमेजस्ती' के अरबी अनुवाद पर आधारित है। तीसरा ग्रन्थ 'सम्राट-सिद्धान्त' है जिसमें सम्राट यन्त्र के निर्माण प्रकार वेध-विधि उपयोग आदि पर प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ पर्याप्त विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण है। श्री केवलराय ज्योतिषराय ने लागरथम की फ्रेंच सारणी के बहुत अंशों को संस्कृत में अनुवाद कर परिवर्तन के साथ 'विभाग-सारणी' के नाम से प्रस्तुत किया था। भारतवर्ष में उस समय इस लागरथम का प्रचार प्रसार नहीं हुआ था। इसी प्रकार 'मिथ्याजीव छाया सारणी', डी ला. हिरे की ग्रह गणित के आधार पर जयपुर के अक्षांश पर निर्मित 'हक्पक्ष सारणी' तथा 'दृकपक्ष ग्रन्थ' इनकी ही देन है। उलूगबेग के ग्रन्थ से 'तारा-गणित' अंश का कालान्तर संस्कार के साथ अनुवाद कर उसका नाम 'तारा सारणी' रखा गया।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1 *प्रभुदयाल मित्तल - ब्रज की कलाओं का इतिहास, पृ. 446-461*

2 पद्धीर छन्द

''सीखिय सुकव इतहास सर्व।
सास्तर पुरान नय पय्य सरी।।
मीमांसा न्याय ज्योतिष विधान।
व्याकरण काव्य संगीत बान।
अस्त्रह सुसस्त्र विद्या प्रवीन।
मन रहन धर्महिं सुलीन।।''

कूर्म विलास ग्रं.सं. 1913 द्वारा विमल चन्द, पृ. 176

3 *उस्ताद चाँद खाँ का उपनाम दूलह खाँ था जो गान विद्या के आचार्य और महाराज के उस्ताद थे।*
हरिनारायण विद्या भूषण - ब्रजनिधि ग्रंथावली, पृ. 48

4 *हरिनारायण शर्मा - ब्रजनिधि ग्रंथावली, काशी, 1993, पृ. 48*

5 *जे.एन. आसोपा - कल्चरल हेरिटेज ऑफ जयपुर, 1979, पृ. 101*

6 *हरमन ग्वेत्स ने इसे कछावा शैली कहा है।*

7 *वाचस्पति गैरोला ने इसे अम्बर शैली माना है।*

8 *डॉ. रघुवीर सिंह - पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ. 41*

9 *कु. संग्राम सिंह - जयपुरस् यूनिक कान्ट्रीब्यूशन टू राजस्थान : वार्षिकी 63, पृ. 26*

10 *महाराजा जयपुर संग्रहालय सिटी पैलेस जयपुर (आर्ट-गेलरी)*

11 *डॉ. रघुवीर सिंह - पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ. 158*

12 *कु. संग्राम सिंह - जयपुरस् यूनिक कान्ट्रीब्यूशन टू राजस्थान : वार्षिकी 63, पृ. 23*

13 *डॉ. रीता प्रताप - दी ऑरगेनाइजेशन ऑफ सूरतखाना ऑफ जयपुर एण्ड इट्स सैलिब्रेटिड आर्टिस्ट - साहिबराम शोधक, पृ. 27-37, बसंत 2044, 1988, वोल्यूम 17, पार्ट-ए, सिरयल नं. 49*

14 *डॉ. एस. के अन्धारे - एन अर्ली रागमाला फ्राम 'दी काँकरोली कलेक्शन, बुलेटिन ऑफ प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, 22, 1973, पृ. 61*

15 *डॉ. अशोक दास - होमेज टू जयपुर, मार्ग, वोल्यूम, 30, नवम्बर 4, सितम्बर 1977, प्लेट-4*

16 *जेम्सटॉड - रायल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग 2, 1832, पृ. 298*

17 *कर्नल जेम्स टॉड कृत 'राजस्थान का इतिहास' जयपुर का इतिहास, पृ. 638, हिन्दी अनुवाद श्री केशवकुमार ठाकुर द्वितीय संस्करण, अक्टूबर, 1965*

18 *(अ)''कच्छवंश महाकाव्य'' (अप्रकाशित) श्री कृष्णराय भट्ट - दशम् सर्ग, श्लोक 84-99*
(आ) ''जयवंश महाकाव्य'' (प्रकाशित) श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर, 10 सर्ग श्लोक 61-105

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के अध्यापकों में नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता का तुलनात्मक अध्ययन

गौरव सिंह
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

विकास के क्रम में शिक्षा संचेतना द्वारा मानव ने 21वी सदी में प्रवेश कर लिया है परन्तु प्रत्येक आने वाला समय अपने साथ एक चुनौती लेकर आता है। शिक्षा मानव जीवन के लिए एक अमृत कलश है शिक्षा से ही मानव का दृष्टिकोण व्यापक बनता है। अत: स्वतंत्रता के छ: दशक बाद बच्चों के के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के रुप में साकार हुआ। इस अधिनियम के 1 अप्रैल 2010 से लागू होने के पश्चात 6 से 14 वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे को अपने सन्निकट के विद्यालय में शिक्षा पाने का कानूनी अधिकार मिल गया। सम्पूर्ण शिक्षा में प्राथमिक शिक्षा का योगदान प्रमुख है। जिस प्रकार से मकान में नींव का योगदान होता है उसी प्रकार प्रारंभिक शिक्षा मानव जीवन में नींव की भूमिका में होती है। इसी महत्व के कारण हमारे संविधान में कहा गया है। 6 से 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्रदान की जायें। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सरकार द्वारा 86वां संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया और 2009 में शिक्षा के मौलिक अधिकारों को सभी बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 बना दिया गया।

इस अधिनियम के संसद द्वारा पारित किये जाने के समय लोकसभा में 113 तथा राज्यसभा में 54 सांसद उपस्थित थे इसे भारत की महामहिम राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल द्वारा 3 सितम्बर 2009 को मंजूरी प्रदान की गई यह अधिनियम एक अप्रैल 2010 से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह द्वारा दिये गये भाषण से प्रभाव में आया। राजस्थान के माननीय मुख्यमंत्री महोदय ने 13 अप्रैल 2010 को सी.एम.ओ. कॉन्फ्रेंस हॉल में प्रदेश के जिला शिक्षा अधिकारियों को अपने जिले का कप्तान बताते हुए संकल्प शिक्षा का लोक व्यापीकरण कर सर्वशिक्षा एवं सम्पूर्ण साक्षरता का पावन लक्ष्य हासिल करना है।

नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009

शिक्षा के इस अधिकार अधिनियम में 7 अध्याय 38 धाराएं है ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य अनुच्छेद 45 के राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों तथा 86 में संविधान संशोधन में दिखायी देता है।

समस्या कथन में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दावली

जागरुकता – जागरुकता किसी विषय वस्तु के प्रति प्रत्यक्षीकरण करने महसूस करने, अभिज्ञान करने की क्षमता है। अभिज्ञानता के इस स्तर में डाटा की अवलोकन द्वारा पुष्टि की जाती है अत: जागरुकता किसी विषय के प्रति जानकारी रखने की गुणवत्ता है साथ ही जागरुकता एक सापेक्ष संकल्पना है। जागरुकता व्यक्ति के अनुभवों के संदर्भ में पूर्वज्ञान उपलब्ध करवाती है जिससे व्यक्ति किसी विषय वस्तु के बारें में जानकारी प्राप्त करता है।

शोध उद्देश्य – इस लघुशोध में मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार रखे गये–

 ISSN 2277-5587

➢ प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर के अध्यापकों में नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता का अध्ययन करना।

➢ प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण अध्यापकों में नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता का अध्ययन करना।

➢ प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी व निजी अध्यापकों में नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता का अध्ययन करना।

➢ प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालय के पुरुष एवं महिला अध्यापकों में नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के प्रति जागरुकता का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पनाएं

➢ ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों के अध्यापकों में नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता के अध्ययन में सार्थक अन्तर नहीं है।

➢ प्राथमिक स्तर के सरकारी एवं उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालयों के अध्यापकों में नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के प्रति जागरुकता के अध्ययन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

➢ प्राथमिक स्तर के एवं उच्च प्राथमिक स्तर का महिला अध्यापिकाओं में नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के प्रति जागरुकता के अध्ययन में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध की परिसीमायें

➢ यह शोध राजस्थान राज्य के भरतपुर जिले की वैर तहसील तक सीमित रखा गया।

➢ प्रस्तुत शोध में वैर तहसील के ही सरकारी, निजी, ग्रामीण, शहरी विद्यालयों का चयन किया गया।

शोध विधि

इस लघु शोध में सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया।

न्यादर्श

न्यादर्श का आकार लिया गया जिसमें 80 अध्यापक-अध्यापिकाओं को चयनित किया गया।

उपकरण

शोधकर्ता ने स्वयं अपने पर्यवेक्षक के निर्देशन में उनकी सहायता से उपकरण तैयार करने का निश्चय किया। शोधकर्ता ने नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अध्यापकों की जागरुकता मापने के लिए परीक्षण का निर्माण किया जिसमें अनेक पर्यवेक्षक अनुभवी शोधकर्ताओं की सहायता व परामर्श भी लिया गया।

प्रयुक्त मापनी

शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अध्यापकों की जागरुकता मापनी के अन्तर्गत 50 प्रश्न रखे गये जो निम्न आयामों/क्षेत्रों में विभिक्त कर निर्मित किये गये थे।

1 संवैधानिक

2 प्रवेश प्रक्रिया

3 माता-पिता के कर्तव्य

4 विद्यालय एवं अध्यापकों के उतरदायित्व

5 स्कूल प्रबन्ध समिति

अंकन प्रक्रिया

अध्यापकों के लिए मापनी में तीन विकल्प रखे गये उनके अंक निर्धारण किये गये विकल्प एवं उनके अंक इस प्रकार रखे गये-

क्रम सं.	कथन	सहमत	अनिश्चित	असहमत
1	सकारात्मक	3	2	1
2	नकारात्मक	1	2	3

इसके बाद प्रयोज्य द्वारा अर्जित प्रासांकों का उपकरण के विभिन्न आयाम के अनुसार अलग-अलग योग करते हुए कुल योग निकाला गया।

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी तकनीकी प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु टी टेस्ट का प्रयोग किया गया।

तालिका - 1

ग्रामीण एवं शहरी विद्यालय के अध्यापकों में नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता के अध्ययन का विश्लेषण -

आयाम	अध्यापकों की क्षेत्र स्थिति (शहरी / ग्रामीण)	छात्र संख्या (N)	मध्यमान	प्रमापिक विचलन	टी मान	स्वतंत्रता स्तर	सार्थकता स्तर (0.05 पर)
संवैधानिक	शहरी	20	26.63	2.682			
	ग्रामीण	20	26.48	1.935	0.91	78	सार्थक नहीं
प्रवेश प्रक्रिया	शहरी	20	27.15	2.156			
	ग्रामीण	20	26.93	2.748	.41	78	सार्थक नहीं
माता-पिता के कर्तव्य	शहरी	20	27.70	2.472			
	ग्रामीण	20	28.00	2.124	.59	78	सार्थक नहीं
विद्यालय व शिक्षक के उत्तरदायित्व	शहरी	20	28.68	1.488			
	ग्रामीण	20	28.20	2.151	1.63	78	सार्थक नहीं
विद्यालय प्रबन्ध समिति	शहरी	20	28.78	1.143			
	ग्रामीण	20	28.58	1.667	.65	78	सार्थक नहीं
कुल	शहरी	20	139.03	5.418			
	ग्रामीण	20	138.16	5.881	.69	78	सार्थक नहीं

व्याख्या: उपर्युक्त तालिका 1 के अवलोकन से निम्न निष्कर्ष निकलते है।

ग्रामीण व शहरी विद्यालयों के अध्यापकों के विभिन्न आयामों से प्राप्त मध्यमानों तथा प्रमाणिक विचलन के मानों के विश्लेषण के बाद प्राप्त ''टी'' के मान निम्न है।

	आयाम	टी-मान
1	संवैधानिक	.91
2	प्रवेश प्रक्रिया	.41
3	माता-पिता के कर्त्तव्य	.58
4	विद्यालय व शिक्षकों के उत्तरदायित्व	1.63
5	विद्यालय प्रबन्ध समिति	.65
6	कुल	.69

उपर्युक्त आयामों में से सभी आयामों में ''टी'' का मान 78 पर सार्थकता स्तर 0.05 के मान 1.99 से कम आया है। अत: ग्रामीण व शहरी अध्यापकों में नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता के अध्ययन में सार्थक अंतर नही है, इसलिए प्रतिपादित की गई परिकल्पना 1 को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

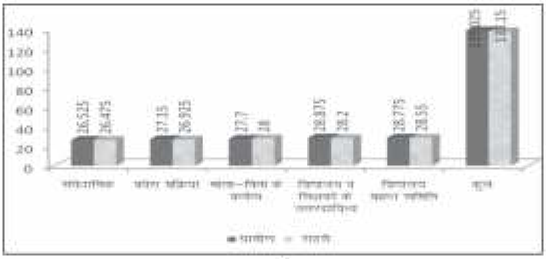

ग्राफ संख्या 1

नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता के संदर्भ में ग्रामीण एवं

शहरी विद्यालयों के अध्यापकों के मध्यमान का ग्राफीय निरुपण

तालिका 2

प्राथमिक स्तर के सरकारी व उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालयों के अध्यापकों में नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता के अध्ययन का विश्लेषण-

आयाम	सरकारी अध्यापक प्राथमिक/उच्च प्राथमिक	कुल संख्या (N)	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	टी मान	स्वतंत्रता स्तर	सार्थकता स्तर (0.05 पर)
संवैधानिक	प्राथमिक	20	25.70	3.406			
	उच्च प्राथमिक	20	27.05	1.849	1.54	38	सार्थक नही
प्रवेश प्रक्रिया	प्राथमिक	20	28.45	1.949			
	उच्च प्राथमिक	20	27.70	2.616	1.74	38	सार्थक नही
माता-पिता के कर्तव्य	प्राथमिक	20	27.20	2.793			
	उच्च प्राथमिक	20	28.00	1.236	2.61	38	सार्थक नही
विद्यालय व शिक्षक के उत्तरदायित्व	प्राथमिक	20	29.05	1.605			
	उच्च प्राथमिक	20	28.50	2.259	.89	38	सार्थक नही
विद्यालय प्रबन्ध समिति	प्राथमिक	20	28.20	1.192			
	उच्च प्राथमिक	20	28.25	2.447	.83	38	सार्थक है
	प्राथमिक	20	136.60	5.105			सार्थक नही
कुल	उच्च प्राथमिक	20	140.50	8.803	2.03	38	

व्याख्या: उपर्युक्त तालिका 2 के अवलोकन से निम्न निष्कर्ष निकलते है।

प्राथमिक स्तर के सरकारी व उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी अध्यापकों के विभिन्न आयामों में प्राप्त मध्यमानों तथा प्रमाणिक विचलन के मानों के विशलेषण के बाद् प्राप्त ''टी'' के मान निम्न है।

	आयाम	टी-मान
1	संवैधानिक	1.54
2	प्रवेश प्रक्रिया	1.74
3	माता-पिता के कर्त्तव्य	2.61
4	विद्यालय व शिक्षकों के उत्तरदायित्व	.89
5	विद्यालय प्रबन्ध समिति	.83
6	कुल	2.03

उपर्युक्त आयामों में से माता-पिता के कर्त्तव्य एवं समस्त आयामों के योग में प्राप्त ''टी'' का मान स्वतंत्रता स्तर 38 पर सार्थकता स्तर 0.05 के मान 2.02 से अधिक आया है। अत: माता-पिता के कर्त्तव्य एवं समस्त आयामों के योग से लेकर प्राथमिक स्तर के सरकारी व उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालयों के अध्यापकों में अंतर पाया गया। अत: इन आयामों में प्रतिपादित परिकल्पना 2 को अस्वीकार किया जा सकता है।

किन्तु संवैधानिक प्रवेश प्रक्रिया, विद्यालय एवं शिक्षकों के उत्तरदायित्व एवं विद्यालय प्रबन्ध समिति के आयामों में प्राथमिक स्तर के सरकारी व उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालयों के अध्यापको में नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता के अध्ययन में अंतर नहीं पाया गया। अत: परिकल्पना 2 को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

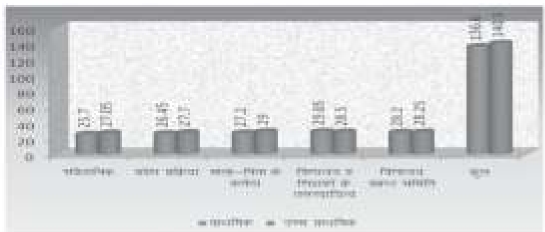

ग्राफ संख्या - 2

नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता के संदर्भ में प्राथमिक स्तर के सरकारी एवं उच्च सरकारी स्तर के सरकारी विद्यालयों के अध्यापकों के मध्यमान का गाफीय निरुपण

तालिका 3

प्राथमिक स्तर की महिला एवं उच्च प्राथमिक स्तर की महिला अध्यापिकाओं में नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता के अध्ययन का

 ISSN 2277-5587

विश्लेषण-

आयाम	महिला अध्यापिकाएँ प्राथमिक / उच्च प्राथमिक	अध्या. संख्या (N)	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	टी मान	स्वतंत्रता स्तर	सार्थकता स्तर (0.05 पर)
संवैधानिक	प्राथमिक	20	26.40	3.152			
	उच्च प्राथमिक	20	27.15	2.134	.88	38	सार्थक नहीं
प्रवेश प्रक्रिया	प्राथमिक	20	25.60	2.288			
	उच्च प्राथमिक	20	26.35	3.167	.27	38	सार्थक नहीं
माता-पिता के कर्तव्य	प्राथमिक	20	26.70	3.045			
	उच्च प्राथमिक	20	28.25	2.124	1.85	38	सार्थक नहीं
विद्यालय व शिक्षक के उत्तरदायित्व	प्राथमिक	20	28.80	2.062			
	उच्च प्राथमिक	20	28.90	1.294	.55	38	सार्थक है
विद्यालय प्रबन्ध समिति	प्राथमिक	20	28.35	.988			
	उच्च प्राथमिक	20	28.85	1.191	1.73	38	सार्थक नहीं
कुल	प्राथमिक	20	136.65	6.769			सार्थक नहीं
	उच्च प्राथमिक	20	139.60	6.154	1.55	38	

व्याख्या: उपर्युक्त तालिका 3 के अवलोकन से निम्न निष्कर्ष निकलते है।

प्राथमिक स्तर की महिला एवं उच्च प्राथमिक स्तर की महिला अध्यापिकाओं में नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के विभिन्न आयामों में प्राप्त मध्यमानों तथा प्रमाणिक विचलन के मानों के विशलेषण के बाद प्राप्त ''टी'' के मान निम्न है।

	आयाम	टी मान
1	संवैधानिक	.88
2	प्रवेश प्रक्रिया	.27
3	माता-पिता के कर्त्तव्य	1.85
4	विद्यालय व शिक्षकों के उत्तरदायित्व	.55
5	विद्यालय प्रबन्ध समिति	1.73
6	कुल	1.55

उपर्युक्त आयामों में से सभी आयामों में ''टी'' का मान स्वतंत्रता स्तर 38 पर सार्थकता स्तर 0.05 के मान 2.02 से कम आया है। अत: प्राथमिक स्तर की महिला एवं उच्च प्राथमिक स्तर की महिला अध्यापिकाओं में नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता के अध्ययन में सार्थक अंतर नही है। इसलिए प्रतिपादित की गई परिकल्पना 3 को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

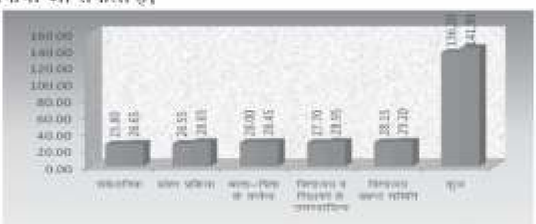

ग्राफ संख्या - 3

नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता के संदर्भ में प्राथमिक स्तर की महिला एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालयों की महिला अध्यापिकाओं के मध्यमान का ग्राफीय निरुपण

अध्ययन के निष्कर्ष

- ग्रामीण एवं शहरी विद्यालय के अध्यापकों में नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता के अध्ययन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। लेकिन शहरी अध्यापकों की अपेक्षा ग्रामीण अध्यापकों में जागरुकता समस्त आयामों के प्रति उच्च है।
- प्राथमिक स्तर के सरकारी एवं उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी विद्यालय के अध्यापकों में नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता के अध्ययन में सार्थक अंतर नहीं है। लेकिन प्राथमिक स्तर के सरकारी अध्यापकों की अपेक्षा उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी अध्यापकों में जागरुकता समस्त आयामों के प्रति उच्च है।
- प्राथमिक स्तर की महिला एवं उच्च प्राथमिक स्तर की महिला अध्यापिकाओं में नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता के अध्ययन में सार्थक अंतर नहीं है, लेकिन प्राथमिक स्तर की महिला अध्यापिकाओं में जागरुकता समस्त आयामों के प्रति उच्च है।

शोध की उपयोगिता

- कोई भी शोध कार्य तभी सफल माना जाता है जबकि उसकी शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगिता हो। प्रस्तुत अध्ययन नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता का पता लगाने के लिए किया गया था।
- अध्यापकों में नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरुकता उत्पन्न करने के लिए प्रस्तुत निष्कर्ष सहायक सिद्ध हो सकते है।
- शिक्षा के अधिकार की जानकारी की दृष्टि से पिछडे क्षेत्रों के चयन तथा उसमें जागरुकता करने हेतु वांछित योजना निर्माण का आधार बन सकते है।
- शिक्षा का अधिनियम 2009 के प्रावधानों की जानकारी देकर जागरुकता विकसित करने में प्राप्त शोध निष्कर्षो को आधार बनाया जा सकता है।
- माता-पिता के कर्तव्य विद्यालय एवं शिक्षकों के उतरदायित्व प्रवेश प्रक्रिया, स्कूल प्रबन्ध समिति क्षेत्रों को शोध निष्कर्ष का आधार बनाकर विद्यालयों में व्यावहारिक रुप से इन गतिविधियों में सुधार लाया जा सकता है।
- शोध कार्यो द्वारा प्राप्त निष्कर्षो का प्रयोग प्राथमिक शिक्षा को और अधिक सरल एवं सुलभ बनाने में कर सकेगें।
- प्राप्त निष्कर्ष शोधकर्ता को इसी विषय क्षेत्र से सम्बन्धित भावी शोध कार्य हेतु प्रेरित करने में सहायक सिद्ध होगें।

शोध सारांश

प्राथमिक शिक्षा उस समूचे भवन की नींव है जो हम बनाने चाहते है एक कमजोर नींव पर बनाया गया। मकान ताश के पत्तों से बनाये गये मकान की तरह गिर सकता है। किसी राष्ट्र की शक्ति और उन्नति का आधार उसके लोगों की शिक्षा होती है। शिक्षा को व्यक्ति की तीसरी आंख कहा गया है। यसार्वजनिक साक्षरता के प्रसार के लिए प्राथमिक शिक्षा अत्यावश्यक है। यह प्रजातांत्रिक संस्थाओं, आर्थिक विकास तथा सामाजिक ढांचे के आधुनिकीकरण में कुशलता से काम करने की एक मूलभूत आवश्यकता है। यह सभी नागरिकों को समानता का अवसर प्रदान करने का अनिवार्य पहले कदम का प्रतीक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1 *गैरिट, एच.ई. (2003): शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी, कल्याणी पब्लिशर्स नई दिल्ली।*

2 *राजपूत, जे.एस. (2004): पाठ्यक्रम परिवर्तन के आयाम एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली।*

3 *एम.एच.आर.डी.भारत सरकार (2004), सर्व शिक्षा अभियान प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु एक कार्यक्रम नई दिल्ली।*

4 *कश्यप, सुभाष (2005), हमारा संविधान नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।*

5 *सरीन एवं सरीन (2009), शैक्षिक अनुसंधान विधियां, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।*

6 *बैरवा अशोक कुमार, शिक्षा के अधिकार के प्रति अभिभावकें तथा अध्यापकों के दृष्टिकोण का अध्ययन एम.एड. लघु शोध प्रबन्ध, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान अजमेर।*

7 *बुच एम. बी., फिथ सर्वे ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, वोल्यूम -II, छब्म्त्ज्ए नई दिल्ली।*

8 *इण्डियन एजूकेशनल एब्सट्रैक्ट्स, एन.सी.ई.आर.टी., 1992, ईश्यू*

ISSN 2277-5587

आधुनिकता के दौर में शान्ति शिक्षा

पूनम शर्मा

सहायक आचार्य,(विस्तार शिक्षा)क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, अजमेर

shodhshree@gmail.com

सभी मूल्य एक दूसरे से संबंधित है और उनमें से यदि कुछ को अधिक विकसित करने का प्रयास हो तब अन्य मूल्यों का भी पुष्पीकरण होने लगता है। श्री सत्य सांई बाबा का कहना है कि ''जब हम सत्य व सद्वाचरण का पल्लू पकड़े रहते है तब हम सर्वोच्च शान्ति अनुभव करते है। हमारे ऋषि मुनियों ने त्रि-स्तरीय शान्ति की कामना की थी। ये स्तर है - भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक। आइए वैदिक शान्ति प्रार्थना का पुनस्मरण करे - ऊँ शान्ति, शान्ति, शान्ति।

शान्ति आज के समाज की आवश्यकता है, आज का जीवन भागदौड़ के कारण व्यस्त है, पैसा कमाना आज के समय की सबसे बडी आवश्यकता होने से हमारे जीवन की शान्ति भंग हो चुकी है। मनुष्य दिन रात अधिक से अधिक धनोपार्जन में लगा रहता है, जिससे एक सामान्य जीवनयापन की कल्पना भी असम्भव प्रतीत होती है।

शान्ति एक ऐसा अमूल्य रत्न है जो कि मनुष्य में अर्न्तनिहित है या हम ऐसा कहें कि मनुष्य पाँच तत्वों से तो मिलकर बनता है परन्तु छठा तत्व शान्ति होता है। जिस प्रकार किसी भी एक तत्व के ना रहने से मनुष्य जीवन की कल्पना ही मिथ्या है उसी प्रकार शान्ति जैसे रत्न के ना रहने से मनुष्य की मनुष्यता उसका इस संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होना शंकित हो सकता है।

परन्तु हम देखते है कि जैसे-जैसे मनुष्य विकास की ओर बढ़ता जा रहा है उसका शान्ति जैसे मूल्यों से विश्वास उठता जा रहा है। जैसे-जैसे हम आधुनिकता की ओर अग्रसर होते जाते है वैसे-वैसे हम अशान्ति, अव्यवस्था तथा अराजकता जैसे प्रवृत्तियों में लिप्त होते जाते है। विश्व में एक ओर जहां भौतिक सुविधाएँ बढ़ रहीं है, वही साथ ही साथ उन राष्ट्रों में कूटनीतिक चालें चलीं जा रही है। विकसित देश विकासशील देशों का शोषण करने लगे है तथा अन्य विकासशील देशों को आपस में लड़वाकर उनके बीच का सौहार्द खत्म करने में लगे है तथा कही तक सफल भी हुए है। पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, समाजवाद, उपनिवेशवाद के कारण आज विश्व में चारों ओर अशान्ति ही अशान्ति फैली है।

अर्थ - शान्ति शिक्षा का अर्थ (What is Peace Education) शान्ति शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त विशाल तथा विस्तृत है, इसके अन्तर्गत निशस्त्रीकरण की शिक्षा, मानव अधिकारों की शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, अहिंसा की शिक्षा तथा शोषण से और अन्याय से उत्पन्न विवादों के शान्तिपूर्ण समाधानों के कौशल विकसित करने की शिक्षा है, शान्ति शिक्षा हमारे समाज में उस संस्कृति का निर्माण करती है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति भय से मुक्त और हिंसा मुक्त होकर अपनी क्षमताओं का भरपूर विकास कर सकते है चाहे मनुष्य का जीवन हो या किसी और जीव का उसमें शान्ति परम आवश्यक है।

आवश्यकता - सम्पूर्ण मानव जाति पर जब-जब अशान्ति रुपी राक्षस मंडराता है तब-तब आवश्यकता होती है कि शान्ति रुपी दैव अस्त्र से उसका नाश किया जा सके क्योंकि यह तो सर्वविदित है कि लड़-लड़ कर

कोई भी देश कोई भी उपनिवेदश खुशहाली को प्राप्त नहीं कर सकता। इसी कड़ी में यूनिसेफ तथा यूनेस्को को शान्ति की शिक्षा के अग्रदूत माना जाता है। इनके अनुसार शान्ति मूल्यों के द्वारा मनुष्य का मनुष्य से तथा मनुष्य का प्रकृति से सामंजस्य स्थापित हो सकेगा तथा विश्व शान्ति की स्थापना का सपना पूरा हो सकेगा।

1 **शान्ति के लिए शिक्षा आज के समय की मांग:** आज के भौतिकतावादी समय में जहां पर मानव जीवन का कोई भी अंग शान्त नहीं है सारी मानव सभ्यता को भ्रष्टाचार, रिश्वत, काला-बाजार, काला धन रुपी दीमक खाये जा रही है जब तक इस दीमक को अपनी मानव सभ्यता से हटाने के लिए व्यक्ति तथा समाज के सुखद भविष्य के लिए शान्ति-शिक्षा मूल्यों को अवश्य ही शामिल किया जाना चाहिए।

2 **रहन-सहन (जीवन शैली) को उन्नतिशील बनाने के लिए:** अगर हम हमारी जीवन शैली को निर्बल बना देने वाले प्रभावों और मानसिक दबावों से बचना चाहते है, अगर हम उन दबावों से बचना चाहते है जो कि निरन्तर हमें समाचार पत्रों, रेडियों, पत्रिकायें तथा भाषणों से हमारे मानसिकता पर दबाव डालते हैं तो उनके विरुद्ध सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण हेतु हमें दैनिक जीवन में हमें शान्ति-शिक्षा का अध्ययन एवं चिन्तन तथा पराचित्त की प्रवृत्ति अपनानी चाहिए।

3 **प्राचीन तथा आधुनिक में समन्वय:** हमारा भारत देश ऋषि मुनियों का देश रहा है जिन्होंने हमेशा सत्य, शान्ति, सौहार्द जैसे गुणों का विकास करने की शिक्षा दी तथा हमारे देश की संस्कृति भी हमेशा उदार हृदय की ही रही है। प्राचीन काल से ही हम प्रेम पूर्वक जीवन जीने के आदी रहे है तथा हमारे देश में मेहमान को भी भगवान माना जाता रहा है ऐसे में जब हमारे विवेक पर भौतिकता तथा पाश्चात्य संस्कृति का आक्रमण होने लगा तो हम अपनी परम्परा, मूल्यों को धीरे-धीरे खोने लगे तथा हमारी आस्था इन मूल्यों से धीरे-धीरे उठने लगी हमारे जीवन में चहुंओर अशान्ति तथा अराजकता और भय ने पांव पसार दिये हैं। हमारी प्राचीन व श्रेष्ठ परम्पराएं आज मृत प्राय: सी होती जा रही है। अत: आवश्यकता है कि प्राचीन तथा नवीन मूल्यों का शिक्षा में समन्वय स्थापित करें तथा इस कार्य के लिए शान्ति की शिक्षा पर आधारित शैक्षिक मूल्य ही हमारी सहायता कर सकते है।

विभिन्न शिक्षण संस्थाएं जहां पर पूरी शिक्षा व्यवस्था शान्ति की शिक्षा के मूल्यों पर केन्द्रित करके दी जाती है ऐसे संस्थाओं को स्थापित किया जाना चाहिए जैसे गुरुकुल, मदरसे, विद्यापीठ आदि जहां पर मनुष्य से मनुष्योचित गुणों का विकास हो सके तथा वह संसार में सर्वश्रेष्ठ प्राणी बन सके।

4 **श्रेष्ठ नागरिको का निर्माण करना:** नागरिकों से ही देश बनता है तथा जैसे नागरिक होंगे वैसा ही देश होगा अर्थात् हमें अपने नागरिकों में ऐसे गुणों का विकास करे कि वे भ्रष्टाचार, धर्म निरपेक्षता, जात-पात, ऊंच-नीच, तेरा-मेरा, जातिवाद, सम्प्रदायवाद से दूर हो सके तथा समाज के जिम्मेदार नागरिक बन सके तथा देश को आगे बढ़ाने में योगदान दे सके।

5 **व्यक्ति के व्यवहार में बदलाव लाना:** शिक्षा का कार्य ही है बालक या व्यक्ति के व्यवहार में परिमार्जन और परिष्कार अर्थात् शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाने में पूरा सहयोग देती है यदि हम उस शिक्षा में शान्ति जैसे अतुलनीय मूल्यों को भी जोड़ दें तो निश्चित ही वे गुण अनायास ही बालक में आ जायेंगे तथा उसके अन्दर करुणा, ईमानदारी, सच्चाई, मधुर आचरण अनायास ही विकसित हो जायेगा वह जब भी कोई व्यवहार करेगा वह एक बार तो अवश्य ही सोचेगा कि क्या यह उचित है या अनुचित ? यह सब शान्ति की शिक्षा द्वारा निरन्तर अभ्यास से सम्भव है।

शान्ति के लिए अन्य सुझाव: स्थायी तथा चिरकालिक शान्ति स्थापित करने के लिए कुछ सुझाव भी आवश्यक है यदि हम निम्न सुझावों पर अमल करेंगे तो निश्चय ही शान्ति जैसे मूल्यों की प्राप्ति सहज ही हो जायेगी।

1 **शान्ति की शिक्षा:** जिस प्रकार व्यक्ति युद्ध कौशल को समाज में रहकर सीखता है उसी तरह से शान्ति से रहना भी सीख सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि विशेष तौर पर हमारी नयी पीढ़ी के युवक युवतियों को शान्ति की शिक्षा देनी होगी जिससे कि वे अपने को पूरे विश्व का जिम्मेदार नागरिक समझ सके और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के रुप में कार्य करे।

2 **अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का विकास:** युद्ध के मूल कारणों को जानने का प्रयास कर सकने में सक्षम हो सके तथा उन्हें दूर कर सकने में अपना सहयोग दे सकें इसके लिए प्रत्येक क्षेत्र में अधिक से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के रुप में कार्य करे।

3 **सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति:** विश्व में से युद्ध को पूर्णतया समाप्त करने के लिए यह परम आवश्यक है कि संसार में कहीं भी सामाजिक और आर्थिक विषमताएं, गरीबी, हताशायें समाप्त हो जायें अर्थात् संसार में लोगो का सामाजिक और आर्थिक कल्याण किया जाना चाहिए।

समस्या और समाधान एक ही सिक्के के पहलू की तरह होते है यदि समस्या मनुष्य जनित है तो उसका समाधान भी मनुष्य के द्वारा ही सम्भव होता है। अत: शान्ति को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि शान्ति की शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाय: ''जैसा बोयेंगे वैसा काटेंगे'' इसी उक्ति को पूर्ण करने के उद्देश्य से यदि हम प्रारम्भ से ही बालकों के पाठ्यक्रम में शान्ति की शिक्षा के मूल्यों को धीरे-धीरे पढ़ाने लगे तो जब वह वयस्क होकर समाज का नेतृत्व करने योग्य हो जायेंगे तो अवश्य ही जिम्मेदार नागरिक बन सकेगे।

क्रियाये:

1 **प्रार्थना:** विद्यालय का प्रारम्भ प्रार्थना से होता है अर्थात् प्रार्थना सशक्त माध्यम है मूल्यों के विकसित करने के लिए

अर्थात् प्रार्थना ऐसी होनी चाहिए जो किसी एक धर्म से ओत-प्रोत ना हो 'सर्वधर्म सम्भाव' की भावना विकसित करे। प्रतिदिन बालकों से छोटी-छोटी शिक्षाप्रद कहानियों का मंचन करवाना चाहिए जिससे कि उनमें उचित मूल्यों का विकास करने की शुरुआत हो सके। समाचार-पत्रों के ऐसे समाचारो का वाचन हो सामाजिक हितकारी तथा शान्ति मूल्यों पर आधारित हो।

2 **खेलकूद:** खेलों के द्वारा बालक का ना केवल शारीरिक बल्कि मानसिक और सामाजिक विकास होता है। सहिष्णुता, सहनशीलता, प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, समानता, व्यवस्था जैसे गुणों का विकास होता है।

3 **राष्ट्रीय पर्वो को मनाना:** महान विभूतियों की जयन्ती मनाना, 15 अगस्त, 26 जनवरी, 2 अक्टूबर आदि पर्वो को हर्षोल्लास से मनाया जाना चाहिए, जिससे विश्व बन्धुत्व की भावना, मानव-प्रेम, देश प्रेम तथा विश्व शान्ति जैसे मूल्यों का विकास हो सके तथा समाज में आपसी सौहार्द का बीज अंकुरित हो सके।

4 **मानव जीवन में रंगमंच की भूमिका:** मानव जीवन की शान्ति में नाटक अपनी अहम भूमिका निभाते है नाटक कला का ही भाग है, नाटक की उत्पत्ति अनुकरण या नकल से हुई है, नाटको के प्रदर्शन से तथा स्वयं करने से जीवन की सच्चाई या घटनाओं का मूर्त चित्रण किया जाता है, विद्धानों की खोज से यह प्रमाणित हो चुका है कि यदि सिर्फ पढ़ा जाये या देखा जाये तो 40% असर होता है यदि सिर्फ सुना जाये तो 20% असर होता है परन्तु यदि देखा व सुना साथ-साथ हो तो 70.80% प्रभावी होता है। अर्थात् विद्यालयों में नाटक का मंचन, शान्ति परक नाटकों एवं नाट्य रचनाओं के निर्माण हेतु विद्यार्थियों को प्रेरित करना होगा और इससे पहले हमें शिक्षकों को इस हेतु उन्मुख या प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है।

5 **कार्यकुशलता (SUPW):** बच्चों को श्रम का महत्व समझाते हुए समाजोपयोगी कार्यो को करने के लिए उत्साहित करना चाहिए जिससे उनमें समुदाय में रहने का गुण, अनुशासन, सामूहिक भावना व सहयोग में कार्य करने का गुण का विकास हो सके तथा शान्ति पूर्वक जीवन जीने की कला को सीख सके।

6 **वार्षिकोत्सव :** हमारे विद्यालयों तथा कॉलेजों में वर्ष के अन्त में वार्षिकोत्सव मनाना चाहिए जिसमें नाटक, गीत, देशभक्ति, लोक संस्कृति से छात्रों का परिचय करवाना चाहिए जिससे समय की पाबन्दी, अच्छा आचरण, श्रमनिष्ठा, सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे दैवी गुणों को विकसित करने के लिए अच्छे वातावरण का निर्माण हो सके।

7 **पुस्तकालय:** यदि हम चाहते है कि अच्छे गुणों तथा मूल्यों को विकास जड़ से करना चाहते है तो बालकों में स्व-अध्ययन की आदत व रुचि बाल्यकाल से ही उत्पन्न करनी होगी इसके लिए उन्हें अच्छा साहित्य उपलब्ध कराना होगा। कहा भी गया है कि पुस्तकें मनुष्य की सबसे अच्छी मित्र तथा मार्गदर्शक होती है। अच्छी पुस्तकों के पढ़ने से देश-विदेश की जानकारी, नेतृत्व, अनुशासन, शान्ति, सहयोग आदि मूल्यों का विकास होगा जो कि समाज में एकरुपता लाने में सहायक होगा।

निष्कर्ष :

आज हमारे देश में ही नही पूरे विश्व में अध्यापक, अभिभावक, नेता, प्रशासनिक अधिकारी, कर्मचारी सभी शान्ति संकट जैसे स्थिति से गुजर रहे है, हम चाहते तो है शान्ति शिक्षा को अपनाना परन्तु उसको आत्मसात नहीं कर पा रहे, क्योंकि सभी यह मानते है कि विद्यालयों से शान्ति मूल्य आधारित शिक्षा का पाठ पढ़ाया जा सकता है, इसी के द्वारा हम ना केवल राष्ट्र बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय मानवता तथा आपसी बन्धुत्व से जुड़ सकते है तथा हमारी विदेश नीति विश्व शान्ति तथा विश्व बन्धुत्व पर आधारित है। अत: हमें आज फिर से शिक्षा में शान्ति जैसे मूल्यों का समावेश करके ना केवल अपने देश वरन् सम्पूर्ण विश्व में अहिंसा शान्ति का अग्रदूत बनना चाहिए। इसके लिए न्यूज, पर्यटन, पत्रिका, लेख, टी.वी. आदि लाभकारी हो सकते है तथा तभी हमारा सपना वसुधैव कुटम्बकम् साकार हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1 हरियन्ना, एम. (1965) 'भारतीय दर्शन की रूपरेखा' राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली।

2 हर्ष, डी.डी. (1989) महाभारत का अर्थ, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर (राज.)

3 'भगवत्‌गीता शंकर भाष्य' (1908), गीता प्रेस, गोरखपुर।

4 राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रुपरेखा 2005 में शान्ति शिक्षा का संदर्भ।

5 जै श्री (2008) 'मूल्य पर्यावरण और मानव अधिकार की शिक्षा' - शिप्रा प्रकाशन, दिल्ली

पूनम शर्मा

सहायक आचार्य
क्ष.शि.सं., अजमेर

प्रस्तावना

....

....

निष्कर्ष

पर्यावरण जागरूकता मापनी
(EAI)

नाम...
पिता का नाम..
कक्षा...वर्ग...
उम्र..................................लिंग..................................छात्रा/छात्र.......................................
विद्यालय...
क्षेत्र...ग्रामीण/शहरी...
विद्यालय का
प्रकार...सरकारी/निजी..

निर्देश :-
(1) सभी प्रश्न अनिवार्य है।
(2) प्रश्नों को जल्दी से जल्दी करने का प्रयास करे।
(3) यह कार्य केवल नीजि शोध तक सीमित है।

व्यावसायिक प्रशिक्षणार्थियों में महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता का अध्ययन

विपिन कुमार
शोधार्थी, महात्मा ज्योतिराव फुले विश्वविद्यालय, अचरोल, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शिक्षा मनुष्य की आंतरिक बुद्धि और विकास की कभी न समाप्त होने वाली प्रक्रिया है। वास्तविक अर्थ में शिक्षा मानवता का मानवीय करण कर जीवन को सांस्कृतिक सुसभ्य और उन्नत बनाती है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य में विवेक, सोच, समस्याओं के निराकरण की क्षमता और रचनात्मकता सकारात्मक दृष्टिकोण आदर्श मूल्यों तथा अपना जीवन यापन करने के लिए विशेष व्यवसाय के प्रति अभिरुचि आदि का विकास होता है।

आज से करीब पचास वर्ष पूर्व की शिक्षा प्रति जो दृष्टिकोण था, अब बिल्कुल बदल गया है। परम्परागत शिक्षा का एकमात्र कार्य ज्ञानात्मक उद्देश्य न रहकर रोजगार प्राप्त करना हो गया है। विद्यार्थी आज की शिक्षा को ग्रहण करने का एक ही उद्देश्य मानता है वह रोजगार की प्राप्ति। आज का समाज आधुनिक शिक्षा से बहुत अधिक अपेक्षा करता है। अब शिक्षा केवल ज्ञान की वृद्धि के उद्देश्य से प्राप्त नहीं की जाती हैं।

अरस्तु के अनुसार ''शिक्षा विशेष रुप से मानसिक शक्ति का विकास करती है जिससे कि वह परम सत्य, शिव और सुन्दर के चिन्तन का आनन्द उठा सके।''

व्यावसायिक शिक्षा का आधार मात्र व्यवसाय के लिए तैयार पृष्ठभूमि पर बालका या युवाआ को लाना ही नहीं होता परन् उन्ह समाज के प्रति अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास भी करना आवश्यक हो जाता है।

व्यावसायिक शिक्षा से सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास, सामाजिक मूल्यो एवं सम्बन्धा को सम्भालने की क्षमता एवं भेदभाव रहित वास्तविकता को देखने की शक्ति आती है।

नारी की गरिमा का अधिकार: अनुच्छेद 23 नारी की गरिमा की रक्षा करते हुए उनको शोषण मुक्त जीवन जीने का अधिकार देता है। महिलाओं की खरीद-बिक्री, वेश्यावृति के धंधे में जबरदस्ती लाना, भीख मांगने पर मजबूर करना आदि दण्डनीय अपराध है। ऐसा कराने वालों के लिए भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत सजा का प्रावधान है। संसद ने अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम,1956 पारित किया हैं। भारतीय दण्ड संहिता की धारा-361,363,366,367,370,372,373 के अनुसार ऐसे अपराधी को सात साल से लेकर 10 साल तक की कैद और जुर्माने की सजा भुगतनी पड सकती है। अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 साल से कम उम्र के लडके या लडकियों से काम करवाना बाल अपराध हैं।

समस्या कथन: व्यावसायिक प्रशिक्षणार्थियों में महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता का अध्ययन।

शोध का उद्देश्य: प्रस्तुत शोध निम्नलिखित उद्देश्यों पर आधारित है -

- व्यवसायिक प्रशिक्षणार्थियों में महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता का अध्ययन निम्न के संदर्भ में किया जायेगा।
- व्यवसायिक विभिन्नता के संदर्भ में।
- लिंगभेद के संदर्भ में।

➢ लिंगभेद के संदर्भ में।

प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त परिकल्पनाएँ

प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता ने परिकल्पनाओं, महत्व, विशेषताएँ तथा इनके अद्वितीय सहयोग को ध्यान में रखते हुये निम्न परिकल्पनाओं का निर्माण किया है –

1 व्यवसाय विभिन्नता के आधार पर महिला अधिकारों के प्रति प्रशिक्षणार्थियों की जागरुकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता।

➢ बीएसटीसी के छात्रों एवं नर्सिंग के छात्रों की महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता।

➢ बीएसटीसी की छात्राओं एवं नर्सिंग की छात्राओं में महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता।

➢ बीएसटीसी के प्रशिक्षणार्थी व नर्सिंग प्रशिक्षणार्थियों में महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता।

शोध परिसीमांकन

प्रत्येक शोध कार्य का परिसीमांकन करना शोध प्रक्रिया का आवश्यक पद होता है। यह शोध कार्य उपलब्ध समय व साधना के कारण निम्नलिखित शोध सीमाओ के अनुरुप सम्पादित किया गया है –

➢ केवल जयपुर के शहरी क्षेत्रों में स्थित नर्सिंग और एसटीसी प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रशिक्षणार्थी लिये गये है।

➢ प्रस्तुत लघु शोध में व्यावसायिक पाठ्यक्रम प्रथम वर्ष के 100 विद्यार्थियों का चयन किया गया हैं।

➢ महिला अधिकारों के राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक पक्षों से संबंधी अध्ययन किया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त विधि

प्रस्तुत लघु शोध पत्र में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त न्यादर्श

प्रस्तुत शोध में 100 नर्सिंग एवं एसटीसी विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

प्रयुक्त अध्ययन में चर

1. **आश्रित चर**

   (क) एसटीसी और नर्सिंग के प्रशिक्षणार्थी

2. **स्वतंत्र चर**

   (क) महिला अधिकारों के प्रति जागरूकता

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

महिला सशक्तीकरण जागरुकता मापनी

प्रस्तुत शोध में स्वनिर्मित प्रश्नावली में प्रत्येक प्रश्न का मापन स्तर है तथा इस संतुष्टि के लिए दो स्तर हाँ एवं नहीं पर आधारित है। प्रश्नों के हाँ पर 1 अंक एवं नहीं के लिए 0 अंक निर्धारित किया गया है।

परीक्षण की वैधता – अंकित वैधता परीक्षण के प्रश्नों के रुप देख कर ज्ञात की गई है।

परीक्षण का प्रशासन – प्रत्येक परीक्षण के प्रशासन की निर्दिष्ट विधि होती है। परीक्षण का प्रशासन प्रदत्तों की विश्वसनीयता एवं शुद्धता को बढा देता है। परीक्षण के प्रशासन से पूर्व विद्यार्थियों को निम्नांकित निर्देश दिये गये।

➢ यह टेस्ट आपके विचारों को जानने हेतु भरवाये जा रहे है।

➢ आपके द्वारा दिये गये उत्तरों को गोपनीय रखा जायेगा।

➢ ईमानदारी से अपने अपने विचारानुसार परीक्षण अर्थात टेस्ट पेपर को पूरा करें।

➢ सभी छात्राएं चुने गये विकल्प के सामने सही का चिन्ह अंकित करें।

अंकन			
क्र.सं.	कथन	हाँ	नहीं
1	सकारात्मक	1	0
2.	नकारात्मक	0	1

प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी टी टेस्ट का प्रयोग किया गया है।

परिकल्पना 1 (i)

बीएसटीसी के छात्रों एवं नर्सिंग के छात्रों की महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता

 ISSN 2277-5587

क्र.सं.	1.	2.
वर्ग समूह	बीएसटीसी छात्र	नर्सिंग छात्र
N	25	25
मध्यमान	33.8	30.92
SD	3.76	2.95
T मूल्य	2.27	2.27
सार्थकता स्तर	0.05	0.05
Table Value	2.01	2.01
		अस्वीकृत

$d = (N_1 + N_2 - 2)$

$25 + 25 - 2 = 48$`

सारणी संख्या 1 ¼ i ½ में बीएसटीसी के छात्र तथा नर्सिंग के छात्रों की महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता के स्तर को दर्शाया गया है। दिये गये मध्यमानों के अंतर की सार्थकता की जांच टी परीक्षण द्वारा करने पर टी का मान 2.27 प्राप्त हुआ जो सार्थकता स्तर 0.05 स्तर पर अपेक्षित मान 2.01 से अधिक है अर्थात दोनों समूहों में छात्रों की महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता में सार्थक अंतर पाया गया। अत: निर्धारित परिकल्पना अस्वीकृत पायी गयी। निष्कर्षत कहा जा सकता है कि बीएसटीसी के छात्रों में नर्सिंग के छात्रों की अपेक्षा महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता अधिक पायी गयी।

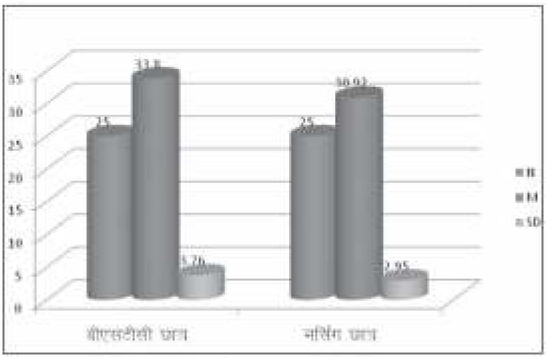

परिकल्पना 1 (ii)

बीएसटीसी की छात्राओं एवं नर्सिंग की छात्राओं में महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता

क्र.सं.	1.	2.
वर्ग समूह	बीएसटीसी छात्र	नर्सिंग छात्र
N	25	25
मध्यमान	32.2	32.32
SD	4.26	2.01
T मूल्य	0.	1063
सार्थकता स्तर	0.05	0.05
Table Value	2.01	2.01
		स्वीकृत

$d = (N_1 + N_2 - 2)$

$25 + 25 - 2 = 48$`

सारणी संख्या 1 ¼ ii ½ में बीएसटीसी की छात्रायें तथा नर्सिंग के छात्रायों की महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता के स्तर को दर्शाया गया है।

दिये गये मध्यमानों के अंतर की सार्थकता की जांच टी परीक्षण द्वारा करने पर टी का मान 0.1063 प्राप्त हुआ जो सार्थकता स्तर 0.05 स्तर पर अपेक्षित मान 2.01 से कम है अर्थात दोनों समूहों में छात्रों की महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

अत: निर्धारित परिकल्पना स्वीकृत पायी गयी। निष्कर्षत कहा जा सकता है कि बीएसटीसी के छात्राओं में और नर्सिंग की छात्राओं में महिला अधिकारों के प्रति सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

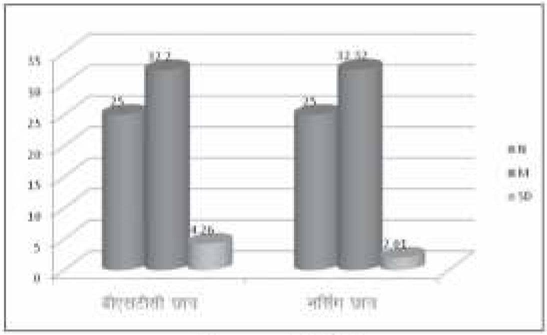

परिकल्पना 1 (iii)

बीएसटीसी के प्रशिक्षणार्थियों व नर्सिंग के प्रशिक्षणार्थियों में महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता

क्र.सं.	1.	2.
वर्ग समूह	बीएसटीसी छात्र	नर्सिंग छात्र
N	50	50
मध्यमान	32.64	31.62
SD	4.05	2.64
T मूल्य	1.5	1.5
सार्थकता स्तर	0.05	0.05
Table Value	1.98	1.98
		स्वीकृत

$d = (N_1 + N_2 - 2)$

$50 + 50 - 2 = 98$`

सारणी संख्या 1 ¼ iii ½ में बीएसटीसी प्रशिक्षणार्थी तथा नर्सिंग प्रशिक्षणार्थियों में महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता के स्तर को दर्शाया गया है।

दिये गये मध्यमानों के अंतर की सार्थकता की जांच टी परीक्षण द्वारा करने पर टी का मान 1.5 प्राप्त हुआ जो सार्थकता स्तर 0.05 स्तर पर अपेक्षित मान 1.98 से कम है अर्थात दोनों समूहों के प्रशिक्षणार्थियों में महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

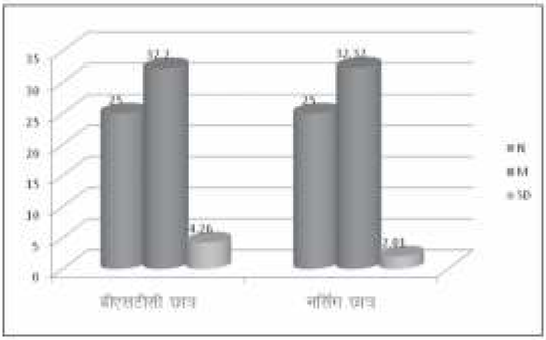

परिकल्पना 1 (iii)

बीएसटीसी के प्रशिक्षणार्थियों व नर्सिंग के प्रशिक्षणार्थियों में महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता

क्र.सं.	1.	2.
वर्ग समूह	बीएसटीसी छात्र	नर्सिंग छात्र
N	50	50
मध्यमान	32.64	31.62
SD	4.05	2.64
T मूल्य	1.5	1.5
सार्थकता स्तर	0.05	0.05
Table Value	1.98	1.98
		स्वीकृत

$$d = (N_1 + N_2 - 2)$$
$$50 + 50 - 2 = 98'$$

सारणी संख्या 1 (iii) में बीएसटीसी प्रशिक्षणार्थी तथा नर्सिंग प्रशिक्षणार्थियों में महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता के स्तर को दर्शाया गया है।

दिये गये मध्यमानों के अंतर की सार्थकता की जांच टी परीक्षण द्वारा करने पर टी का मान 1.5 प्राप्त हुआ जो सार्थकता स्तर 0.05 स्तर पर अपेक्षित मान 1.98 से कम है अर्थात दोनों समूहों के प्रशिक्षणार्थियों में महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गयाअत: निर्धारित परिकल्पना स्वीकृत है निष्कर्षत कहा जा सकता है कि बीएसटीसी प्रशिक्षणार्थी और नर्सिंग प्रशिक्षणार्थियों में महिला अधिकारों के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

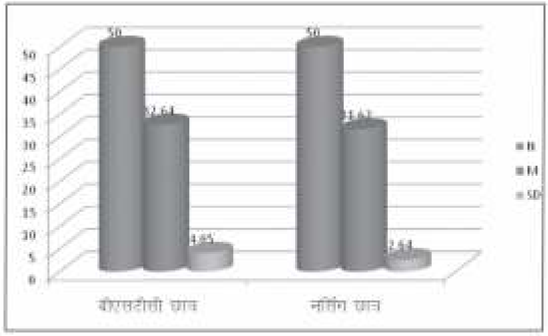

शोध के परिणाम एवं निष्कर्ष

बीएसटीसी के छात्रों एवं नर्सिंग के छात्रों की महिला अधिकारों के प्रति जागरुकता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता। मध्यमानों के अंतर की सार्थकता की जांच टी परीक्षण द्वारा करने पर टी का मान 2.27 प्राप्त हुआ जो सार्थकता स्तर 0.05 स्तर पर अपेक्षित मान 2.01 से अधिक है अर्थात दोनों समूहों में छात्रों की महिला अधिकारों के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया। अत: निर्धारित परिकल्पना अस्वीकृत पायी गयी। निष्कर्षत कहा जा सकता है कि बीएसटीसी के छात्रों में नर्सिंग के छात्रों की अपेक्षा महिला अधिकारों के प्रति जागरूकता अधिक पायी गयी।

शोध निष्कर्ष

कोई भी कार्य अपने आप में तभी पूर्ण होगा जब कि उसके तर्क आधारित निष्कर्ष निकाले जाए किसी भी शोध कार्य की प्रमुख विशेषता यह होती है कि उसके निष्कर्ष आंकड़ों व तर्को पर आधारित हो। प्रस्तुत अध्याय से जो निष्कर्ष प्राप्त हुए है वे पूर्णतया विद्यार्थियों द्वारा किये गये उत्तरों की व्याख्या एवं विश्लेषण से प्राप्त हुए है।

जो शोधकर्ता शोध के प्रतिकल्प के निर्माण की समस्याओं से परिचित नहीं होता है वह अपने तथ्य सामग्री के विश्लेषण में कोई कठिनाई अनुभव नहीं करता।

विश्लेषण के अन्तर्गत प्राप्त आंकड़ों को क्रमबद्ध रूप प्रदान किया जाता है तथा उनको संघटक भागों में इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है ताकि अनुसंधान प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये जा सके।

भावी अनुसंधान के सुझाव

- सूक्ष्म शिक्षण के प्रति बीएड छात्र एवं छात्राओं की अभिवृति का अध्ययन किया जा सकता है।
- सूक्ष्म शिक्षण के प्रति बीएसटीसी छात्र एवं छात्राओं की अभिवृति का अध्ययन किया जा सकता है।
- इस अध्ययन को राजस्थान के बडे स्तर पर लिया जा सकता है।

➢ सूक्ष्म शिक्षण के प्रति अन्य व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का अध्ययन किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. अस्थाना, बी.पी.: वूमेन्स मूवमेंट इन इंडिया, विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1974
2. आई.बी.पी.: वर्किंग वीमेन इन चेंन्जिग इंडिया एम्लायमेंट ऑफ वीमेन विद्- फेमिली रेस्पोन्सिबिलिटी, जिनेवा 1964
3. एस्टीन, एच.एड् - द् मिनिंग ऑफ वर्क इन वीमेन लिव्ज ए सोशियों, साइकोलोजिकल मॉडल ऑफ कैरियर चाईस एण्ड् वर्क बिहेवियर, द् काउन्सलिंग साइकोलोजिस्ट, 1979
4. ऐवरेट, गतस्पनना इन्डियन एजूकेटेड वुमैन आपशलन एण्ड कॉस्ट्रियन हिन्दुस्तान पब्लिकेशिंग इण्डिया, दिल्ली, 1979
5. गुटके, बी.ए. लारवुड: वूमेन्स केरियर डवलपमेंट, सेज पब्लिकेशन न्यूबरुरी पार्क बेवेरील हिल्स, लंदन 1998
6. गिंजबर्ग ई. एण्ड एसोसिएट : लाइफ स्टाइल ऑफ एजूकेटेट वूमैन, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रोसिस, 1967
7. गाडगिल, डी.आर.: वूमेन इन द वर्किंग फोर्स इन इंडिया, दिल्ली यूनिवर्सिटी प्रेस, 1965
8. गुलाटी: जे.एड - कैरियर फॉर वूमेन, वाई.एम.एम.सी.ए. पब्लिकेशन हाउस, 1965 (एच)
9. गुप्ता, सेन पद्मिनी: द् स्टोरी ऑफ वूमैन ऑफ इन्डिया, इन्डियन बुक कम्पनी, न्यू दिल्ली, 1974
10. चतुर्वेदी, गीता: वूमैन एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ इन्डिया एडमिनिस्ट्रेशन स्टडी ऑफ सोशियल इकोनोमिक एण्ड् बैकग्राउण्ड एण्ड एटिटयूड ऑफ वूमेन एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ राजस्थान, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स 1985
11. डीसुजा, अल्फेड: वूमेन इन कन्टम्प्रेरी इन्डिया (एड) ट्रेडिशनल इमेज एण्ड् चेजिंग रोल, इन्डियन सोशन इन्स्टिटूट मोनाहार नई दिल्ली 1997
12. थॉमस पी.: वूमैन एण्ड् मैरिज इन इंडिया, लंदन जार्ज एलन एण्ड यूनिविन लि. ओ. 1939।

एडुसेट : नई राह - नई दिशा

मीना
शोधार्थी,राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है जो आदिकाल से औपचारिक तथा अनौपचारिक रुप से चली आ रही है। वर्तमान में बाल केन्द्रित शिक्षा पर जोर है। ऐसी शिक्षा जहां ज्ञान को थोपा न जाये वरन् विद्यार्थी स्वयं ज्ञान की रचना करें, शिक्षक केवल सुविधादाता, मार्ग प्रशस्तक हो अर्थात् सीखने की प्रक्रिया में विद्यार्थी स्वयं ज्ञान का सृजनकर्त्ता हो। शिक्षा के इस बदलते परिवेश में प्रौद्योगिकी का महत्व भी बढ़ गया है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में छात्रों द्वारा त्वरित एवं प्रभावी अधिगम हो, इस हेतु नवीन विचारों, विधियों, व्यूह रचनाओं तथा प्रविधियों की खोज एवं विकास हेतु सूचना एवं संप्रेषण तकनीक का प्रयोग किया जा रहा है।

हमारे दिन-प्रतिदिन के अनुभवों पर दृष्टि डाले तो ज्ञात होता है कि विद्यार्थियों की गुणवत्तापूर्ण अधिगम व निष्पति ज्यादातर कक्षा-कक्ष में संपादित प्रभावपूर्ण शिक्षण पर निर्भर होती है। परन्तु भारतीय परिवेश में एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय के शिक्षण में भिन्नता के साथ ही शिक्षकों की गुणवत्ता में भी अंतर दिखाई देता है।

शैक्षिक तकनीकी

जब शैक्षिक तकनीकी शब्द विशेष का पहली बार प्रयोग हुआ तो इसे शैक्षिक तकनीकी कहा गया, जिसका अर्थ विभिन्न प्रकार के ऑडियो-विजुअल एड्स का उपयोग पढाने के काम में करने से था। उस समय प्रेषक-प्रासकर्ता संरचना इतनी अधिक प्रचलित थी कि शिक्षाविदों ने इन साधनों को मुख्य रुप से पाठ्य सामग्रियों का 'ट्रांसमीटर' माना।

जैसे-जैसे शैक्षिक तकनीकी की अवधारणा का विकास होता गया, शब्द विशेष ''शिक्षण की तकनीकी'' प्रचलित होने लगा। यहाँ शिक्षण का एक विस्तुत अर्थ लगाया गया जिसमें बहुत सारे पक्षों जैसे छात्र का प्रवेश के समय व्यवहार, उद्देश्य, विषय-वस्तु विश्लेषण मूल्यांकन आदि शामिल थे। 1970 के मध्य तक आते आते शैक्षिक तकनीकी ने प्रबंध अध्ययन से प्रणाली उपागम और साइबरनेटिक्स' से 'करेक्टिव फीडबैक' शब्द विशेष उधार में ले लिए। इससे शैक्षिक तकनीकी के क्षेत्र का और विस्तार हुआ क्योंकि सिखाने की प्रक्रिया को भी अब संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखा जाने लगा।

''डिजिटल कंवर्जेट'' मीडिया के आने से अन्त: क्रिया तथा परस्पर संपर्क प्रक्रिया को भी प्रोत्साहन किला। यही नहीं शैक्षिक तकनीकी को इससे एक नया आयाम मिला। एक विषय के रुप में और भी विकसित होने की प्रेरणा मिली। एक तरफ जहाँ यह क्षेत्र विकसित हो रहा था, वहीं हमारी समस्या यह थी यह किस प्रकार सीखने वालों की प्रभावकारी और पारिस्परिक क्रिया के आधार पर सीखने की प्रक्रिया में मदद् की जाए।

कुछ लोग शैक्षिक तकनीकी शब्द विशेष का उपयोग छोड़ देना चाहते है। इसके पीछे एक ऐतिहासिक संचेतना है और वह यह है कि भारत में शैक्षिक तकनीकी के उपयोग की शुरुआत उन मशीनों और शिक्षा संबंधी

ISSN 2277-5587

''सॉफ्टवेयरों'' से हुई जो इससे जुड़ी थीं इस तरह की व्याख्याओं को समझना आसान है। प्रक्रियाओं के आधार पर उपागमों को समझ पाना ज्यादा कठिन है। यहाँ हम उन प्रक्रियाओं के बारे में बता रहे है जिन्हें शिक्षाविदों के द्वारा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में मौजूद समस्याओं को हल करने में अपनाया गया। उन्हें वांछित शैक्षणिक लक्ष्यों को पाने के लिए सीखने की प्रक्रिया को उन्नत करने की दिशा में भी इनसे मदद मिली।

शैक्षिक तकनीकी की विश्वभर में स्वीकृत परिभाषा के अनुसार यह प्रक्रियाओं, विधियों और तकनीकों उत्पादों, संसाधनों तथा तकनीकी का एक सार्थक समन्वय है। एक कक्षा की बहुस्तरीय संरचना की आवश्यकताओं को समझना जैसे-एक अनुकूल कार्यक्रम की संरचना के साथ-साथ उसके व्यावहारिक पक्ष की भी डिजाइनिंग शैक्षिक तकनीकी का उतना ही अभ्यास है जितना 'ऑडियो विजुअल' माध्यम या सूचना संबंधी तकनीकी का प्रयोग।

शैक्षिक तकनीकी के प्राथमिक सिद्धान्त हमेशा से किसी भी सफल शिक्षण-अधिगम की पद्धति में रहे है चाहे वह शैक्षिक तकनीकी के रुप में न भी जाना जाता रहा हो। उदाहरण के तौर पर, पुरानी गुरुकूल पद्धति में व्यक्तिगत अनुदेशन तथा सीखने के ऊपर विशेष जोर के रुप में शैक्षिक तकनीकी के लक्षण दिखते है। गुरुकुल में प्रशिक्षण कार्यक्रम विद्यार्थी की आवश्यकता तथा योग्यता के अनुसार बनाया जाता था। यह ''एक के साथ एक'' की पद्धति थी परंतु इसका मतलब यह नहीं था कि शिक्षा यंत्रवत् रहने वाली या गुरु की बात आँख मूँद कर मान लेने वाली थी। एक संस्कृत सूक्ति 'शिष्येत इच्छेत पराजयम्' यह कहती है कि गरु की सबसे बडी इच्छा यह होती है कि शिष्य उससे आगे निकल जाए। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण का कार्यक्रम सिर्फ शिष्य की आवश्यकता तथा योग्यता देखकर नहीं बल्कि शिक्षा के निर्धारित लक्ष्य में शामिल सामाजिक आवश्यकता को भी ध्यान में रखकर बनाया जाता था।

इस तरह का लक्ष्य के एक उदाहरण इस प्रकार देखा जा सकता है कि जब लिखने की पद्धति अनजान थी तब वेदों को मौखिक रुप से याद करने की परपंरा थी। शब्दों के सही उच्चारण और उनमें कहाँ जोर डालना है इन बातों का विशेष खयाल रखकर उन्हें सुरक्षित रखना महत्वपूर्ण समझा जाता था। जो विधि अपनाई जाती थी वह थी पाठ-सामग्री को याद कर लेना और इसके लिए जो तकनीक अपनाई जाती थी वह भी विभिन्न पाठों या क्रमों का उपयोग करना जो कि एक के बाद एक उच्चारित किए जाते थे, यह देखने के लिए कि कोई विचलन न हो।

शैक्षिक तकनीकी हेतु सरकार द्वारा आरंभ किए गए प्रयास

रेडियो तथा टेलिविजन जैसे जनसंचार माध्यम (मास मीडिया) का शिक्षा के क्षेत्र में छुट-पुट प्रयोग लंबे समय से किया जा रहा है। शैक्षिक टेलिविजन चैनल शरु करने का सबसे पहला बडे स्तर पर किया गया व्यवस्थित प्रयास था-सेटेलाइट इंस्ट्रक्शनल टेलिविजन एक्सपेरिमेंट, जिसके अंतर्गत 6 राज्यों में प्रसारण किया गया और जिनका भलीभाति दस्तावेजीकरण भी किया गया। 1975-76 साइट प्रयोग के दौरान कई उपयुक्त हार्डवेयर के खोजने तथा फैलाने के दौरान कई नवाचार किए गए और नया सॉफ्टवेयर बनाया गया। इस सॉफ्टवेयर का निर्माण दूरदर्शन के अलावा बहुत सी अन्य संस्थानों द्वारा किया गया क्योंकि इससे पूर्व विडियों के उत्पादन एवं प्रसारण में दूरदर्शन का ही एकाधिकार था।

इस दिशा में आकाशवाणी द्वारा विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए वैज्ञानिक सूचनाओं के प्रसार के लिए 'विज्ञान विधि' प्रोग्राम एक बहुत ही सार्थक प्रयास था। आकाशवाणी द्वारा महाराष्ट्र तथा राजस्थान राज्यों में संयुक्त रुप से चलाया गया 'प्रोजेक्ट रेडियो प्रोग्राम' भी इस दिशा में एक सार्थक कदम था पर इनके लिए आवश्यक सहायक संरचना के अभाव में ये लंबे समय तक नहीं चलाए जा सके। शिक्षा के क्षेत्र में प्रथम टेलिविजन प्रयासों के लिए कोई सार्थक सहायक संसाधान उपलब्ध नहीं थे।

1970 में शिक्षा मंत्रालय ने शैक्षिक तकनीकी की एक योजना को अपने कार्यक्रमों में शामिल किया था। शैक्षिक तकनीकी की एक इकाई इस कार्यक्रम के तहत मंत्रालय में खोली गई। 1974 में एन.सी.ई.आर.टी में शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र नामक एक संस्था खोली गई।

अंतरिक्ष अनुप्रयोग केन्द्र, अहमदाबाद की शैक्षिक संचार एवं विकास इकाई तथा सी.ई.टी. ने पहली बार अपने द्वारा बनाए गए कार्यक्रमों का शोधों के द्वारा 'समेटिव' और 'फॉरमेटिव' मूल्यांकन किया। सी.ई.टी. ने सेवाकालीन शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए एक मल्टीमिडिया कार्यक्रम बनाया जो काफी सफल रहा।

एक उत्तम शिक्षक के ज्ञान का लाभ उठाने से अधिकतर विद्यार्थी वंचित रहते है। किसी विद्यालय में गणित का अध्यापक उत्तम है तो सामाजिक अध्ययन व अंग्रेजी भाषा का नहीं तो कहीं इसका विपरीत है। शैक्षिक उपग्रह अर्थात् एडुसेट के माध्यम से इन संकुचित सीमाओं के दायरे से बाहर निकला जा सकता है। एडुसेट एक संचार उपग्रह है जो भूस्थानिक कक्षा में स्थापित है। यह शिक्षा को समर्पित पूर्णत: स्वदेशी उपग्रह है जिसका लक्ष्य सभी को समान शिक्षा प्रदान करना है जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा आम आदमी की पहुंच में हो तथा पिछड़े व दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों का शैक्षिक विकास संभव हो सके। शैक्षिक उपग्रह की सहायता से उत्तम शिक्षकों के द्वारा गणित, विज्ञान या इतिहास, किसी भी विषय का लाभ सभी विद्यार्थियों द्वारा उठाया जा सकता है। इसमें यह उत्तम शिक्षक अपलिंक स्टेशन (स्टुडियों) पर एकत्र होकर शिक्षण कराते हैं जिसका अधिगमकर्त्ता अपने उपकरण (सिस्टम) के द्वारा लाभ उठाते हैं व अन्त:क्रिया करते हैं।

भविष्य में डिजीटल रिकॉर्डिंग के माध्यम से पुन: इन व्याख्याओं का उपयोग किया जा सकता है। यह प्रक्रिया प्राकृतिक तरीके से अधिगम गुणवत्ता के स्तर को बढ़ाती है।

वर्तमान समय में शिक्षक के लिए कक्षा-कक्ष वातावरण में सजीवता लाने के लिए विभिन्न माध्यमों व अनुदेशनात्मक सामग्री का प्रयोग करना आवश्यक हो गया है। नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा अधिनियम के फलस्वरुप कक्षा-कक्ष में छात्रों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए उनके लिए उत्तम ढंग से शिक्षण-अधिगम की परिस्थितियां उत्पन्न करके ज्ञान के संचार-प्रवाह में शैक्षिक उपग्रह (एडुसेट) को प्रभावशाली माध्यम माना जा सकता है। शैक्षिक उपग्रह के माध्यम से प्रसारित होने वाले शैक्षिक कार्यक्रम लघु आकार फिल्मों के समान होते हैं जो कक्षा-कक्ष वातावरण को वास्तविक परिस्थितियों से जोड़ने तथा विद्यार्थियों को विषय वस्तु को अधिक तेजी से सीखने व लंबे समय तक याद रखने में सहायक सिद्ध होते हैं। एडुसेट विद्यालय, महाविद्यालय तथा उच्च स्तरीय शिक्षा तक पहुंच बनाने के साथ-साथ अनौपचारिक शिक्षा में भी संप्रेषण की सुविधा प्रदान करता है। एडुसेट के प्रक्षेपण के पश्चात् अनन्त संभावनायें नजर आने लगी हैं। यह ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के मध्य दिखाई देने वाले शैक्षिक स्तर के अंतर को समाप्त करने के साथ-साथ वर्च्यूअल कक्षाओं के माध्यम से निम्न छात्र-शिक्षक अनुपात की समस्या से निजात पाने में भी कारगर कदम साबित होगा।

शैक्षिक उपग्रह परियोजना - मुख्य लक्ष्य

- चयनित शिक्षण संस्थाओं में पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों की विषयवस्तु एवं शिक्षकीय मार्गदर्शन ऑनलाईन उपलब्ध कराना।
- विभिन्न स्तरों पर प्रचलित पाठ्यक्रम एवं बेहतर शिक्षण विधियों को एडुसेट के माध्यम से विभिन्न तकनीकों द्वारा वर्च्यूअल कक्षाओं तक पहुंचाना।
- निष्क्रिय अधिगम को सक्रिय अधिगम में परिवर्तित करना।
- दूरवर्ती शिक्षा में दो तरफा संप्रेषण की प्रक्रिया का विकास करना जिससे शिक्षक शिक्षार्थी में संवाद कायम हो सके।
- संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग के जरिये शिक्षक और शिक्षार्थी को शैक्षिक अन्तर्वस्तु के साथ जोड़ना।
- शहरी शिक्षण संस्थानों (जिनमें विकसित शिक्षा ढ़ाचा उपलब्ध है) को उपग्रह के जरिये दूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों व पिछड़ें क्षेत्रों के शिक्षण संस्थानों (जहां ढ़ांचागत सुविधाएं न के बराबर हैं) से जोड़ना।
- उम्रदराज लोगों, विद्यालयीय व्यवस्था को त्यागने वाले किशोरों तथा अन्य लोगों की बडी तादाद को वैकल्पिक तरीके से शिक्षित करने की संभावना का विकास करना।
- उच्च शिक्षा की बढ़ती मांग के आलोक में सर्वव्यापकता हेतु शैक्षिक पाठ्यक्रमों/विषयों का विविधिकरण करना जिससे कम खर्च में समान रुप से वे विषय/पाठ्यक्रम विषय विशेषज्ञों की सहायता से बड़ी तादाद् तक पहुंच सके।
- शिक्षकों का सेवाकालीन एवं सतत् प्रशिक्षण तथा उनके ज्ञान और कौशल के स्तर में सतत् वृद्धि करना।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *Agrawal, Binod C. (1978). Television Comes to Village: An Evaluation of SITE (Technical Report) Bangalore: Indian Space Research Organisation.*
2. *Basu, S. (1996). "Regular Telecast by IGNOU: Feedback from Students", Indian Journal of Open Learning, 5 (1) : 34-43.*
3. *Gandhi, Divya (2007), I EDUSAT a Turkey in the Sky? Published on 13 March, 2007 in the Hindu, New Delhi Edition and New Delhi.*
4. *Gullick, A., Sinha, R.K. and Singh R. (2005). "Use of information technology in education", Indian Psychological Review, Vol. 64, No. 4, pp. 179-184.*
5. *Singh J and Sing, A.K. (1986). "Satellite Technology for Primary Education", The Primary Teacher, pp.22-24.EDUSAT Utilisation Programme - NESAC*
6. *www.nesac.gov.in/satcom-edusat.htm*
7. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 शैक्षिक तकनीकी राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार-पत्र*

पत्र-पत्रिका

- राजस्थान पत्रिका
- दैनिक भास्कर
- राजस्थान बोर्ड शिक्षण पत्रिका अजमेर

ISSN 2277-5587

Devadasi System And Social Legislation In Tamilnadu

Dr. R. Velmurugan
Asst. Professor, K.M.Centre for P.G.Studies (Autonomous),Lawspet, Puducherry

shodhshree@gmail.com

The history of any society or any community or any nation is mainly based on the development of women in social, economical and political aspects. The empowerment of women is important in the present world. The government should realize the role of women in modern society – that is how their education, employment contribute towards social and economic changes for national development. In India both central and state governments are continuously taking steps for empowering women in various aspects.

At the beginning of the twentieth century the status of women was low in most society. They were subjected to various hardships in the form of brutal customs like sati, child marriage, polygamy, devadasi and purdha system. The warm was humiliated, abused and discriminated. She suffered untold miseries. Devadasi system was one of the evil practices in Tamilnadu.[1] The system prevailed to the post colonial period many social reformers like Muthulakshmi Reddy and other women played decisive roles to bring out social reform in Tamilnadu. This paper focuses on the abolition of devadasi system and social legislation in Tamilnadu.

Devadasi

The devadasi was an important functionary of Hindu society. The role of the devadasi was a part of religious services in a long history of temple institution. Devadasi means a woman who performed the service for some deity in a temple. They were unmarried temple servants who had been dedicated to temple deities as young girls through rites resembling Hindu Marriage ceremonies. Devadasi (Skt. devadasi, Ta. tevataci, lit. slave of god), the term is to be a sanskritized form of the Tamil term tevaratiyal which means a woman who is enslaved for the service of some specific deity or sacred object.[2] The word is the feminine form of deva-dasa, a man who is enslaved for the service of a deity.

Devadasis were a common feature in almost all the major brahmanical temples. The devadasi or temple woman was one, who was a dancer and one who was associated with temple and also provided sexual services to their

clients. Edgar Thurston described devadasis as dasis or deva-dasis as dancing-girls attached to the Tamil temples, who subsist by dancing and music, and the practice of 'the oldest profession in the world.'

Monier Williams described devadasis in a way that they were held to be married to the god, and had no other duty but to dance before his shrine. Hence they were called the god's slaves (deva-dasi). Marglin considered devadasis as a specialized, unusual group of women in the society.[3]

Theories Related To The System

There are many speculations and theories regarding the origin of the devadasi system. The theories are occupation and mother goddess theory, religious tradition theory, sanskritization theory, racial theory, political or selfless citizen theory, matriarchy to patriarchy theory, lineage continuation theory and traditional theory.[4] The system of dedicating women for the ritual service was an ancient and universal practice. The customs differed from country to country on the basis of the period and their culture. Generally the practice of dedicating women in the name of religion is termed as theogomy. James Frazer viewed that theogomy is the result of the worship of the Mother Goddess.[5] The custom was found in ancient India.

Historical Development

Though the system existed in early centuries it was much practiced and prevailed in early medieval period onwards. M.G.S. Narayanan believed that the expansion of the temple system and growth of the bhakti movement brought into existence the class of temple dancing girls.

The temple was the hub of the social and economic life in a locality. Temples with devadasi drew liberal patronage from both rulers and private individuals. Even outside the temple devadasi was an integral feature of the social life. They emerged as sub-caste, with their own traditions, rules of behaviour and etiquette. The inscriptions also reveal that the 11th and the 12thcenturies marked the period of maximum growth.[6] Though the system started and flourished even before 10thcentury the development of the institution was not uniform everywhere. This was concentrated in some particular pockets which were economically and politically developed during 14th and 15th centuries. The custom got support from religious, political, economic and social situations which prevailed in the society in the period and region.

Even in South India the development of the devadasi institution was not uniform in nature. In South India the system existed. The supernatural beings were not much affected by the non-Hindu invasions or influence from outside. So the details of the rituals were completely deep-rooted in the minds of the people in the rest of South India. As a part of Hindu ritual structure, devadasi custom had its own status, roles, rules and functions to play. In South India, temples became the hub of the social and economic life in a locality.[7] Temples with devadasi drew liberal patronage from both rulers and private individuals.

The Devadasi System Through The Ages In Tamilnadu

The Age of Sangam

In Sangam literature, the dancing women are frequently mentioned. But there was no evidence of temple women. During early medieval period onwards the devotional literature of Alvars and Nayanars from 6th to 9th centuries AD referred to women as celestial and human, offering worship to temples and to singing and dancing. The earliest literary source which mentioned the association of devadasi was the hymns of Tamil Nayanmar Campantar one who lived in 7th century AD. The Tamil bhakti ideologies of self-surrender and devotion to service had a huge impact on the society. They were the most important ritual performers and no festive occasion was complete in the temple without the performance of the temple girls. Hence, the employment of these dancing girls became customary on the part of the devasthana (temple), which gradually institutionalized into a professional organization and the institution of devadasi became an integral part of medieval temple organization.[8]

The Age of Cholas

Devadasis were commonly found in most of the temples of the Chola period. An inscription at the

ISSN 2277-5587

time of Kulottunga III (1215 C.E.) recorded that the king resumed about fifty six sacred festivals (tirunals) in the temple and also revived some of the old practices found mentioned in some earlier records. The system further extended during the period of Kulottunga III and Rajaraja III. The later Pandyas also paid keen attention an the institutionalization of the devadasi custom.[9] An inscription dated 1203 C.E. recorded that a queen probably of Jatavarman Kulasekhara I promoted the devadasi system in the temple of Tirupattur and the system was further extended in the Sucindram temple around the same period in Tamilnadu.

The Age of Post Chola Period

The emergence of the Vijayanagara rule in South India marked a significant move in the reformulation of the system. Kumara Kampana captured Tondaimandalam from Sambuvarayas and following that event the restoration of the devadasi system also occurred. After the decline of the Vijayanagar Kingdom the system also started to degrade from its nature. The political instability of the state, the loss of the importance of the temple institution, frequent political interlude among devadasi, repeated transfers of the devadasis from one temple to another, the graded hierarchical order of the system, distracted from their so called sacred principles of the divine services, and poverty were the few causes for the degradation of the system.[10]

The Age of Medieval Period

From the medieval period until 1910, the Pottukattu or tali-tying dedication ceremony was a widely advertised community event requiring the full cooperation of the local religious authorities. It initiates the young girl into the devadasi profession and is performed in the temple by the priest. In the Brahminical tradition marriage is viewed at the only religious initiation permissible to women. Thus the dedication is a symbolic marriage of the pubescent girl to the temple's deity.

The Age of Colonial Period

During the colonial period they were criminalized as prostitutes. They were illustrated even outside the temple institution. They became an integral feature of the social life and every important social occasion would not be complete without the presence of devadasi. The morality of the temple virgins was affected by the moral degeneration of the priests and general public. The castes which dedicated their girls to gods invariable carried on the most nefarious trade of prostitution. This custom of dedication of girl to gods had been responsible for bringing into existence and perpetuating these castes of hereditary prostitute. So generally the young unmarried girls who were dedicated to gods carried on the most immoral trade of prostitution.[11]

Customs

The poor ignorant and superstitious families fell victims to this custom. The government gave inams certain lands and other allowances to them. But they believed in the customs and did not hesitate to dedicate their daughters to the evil practice. For the sake of money, she was forced to yield to the wishes of the man by the elderly persons in the family, whether he was old or young, healthy or diseased when the first man left her generally after a few months. She had to find another man on a lower payment probably. But there were instances that being the mistress of one man for the long time and remained caste even after the death of their masters. According to the census of 1901, 1500 people were carrying that trade in Madras.[12]

But in due course of time, the tradition changed. The dasis began to drag the imprudent and the unwary youth of the country into immorality. But the practice was prevalent only among certain parts of Southern India. It affected the morality and the purity of Hinduism on a large scale. The most pathetic condition was that even from childhood, the training to immoral life was started. That was the age when they could not think and act for themselves. Such unhealthy and superstitious belief was dinned into the minds of the girls from their childhood. When they had grew up they did not think of their shameful and free life which they had chosen. Such evil practice was recognised by the society and encouraged immoral life in women.

The British Policy And Devadasi System In

Tamilnadu

The British Colonial Government introduced various social reform in India. In 1860, there was an enactment of the Indian Penal Code and imposed certain restrictions on the adoption of female children for prostitution in the name of religion. In 1873 the Governor General's council also decided to put on end to the practice of dedicating female children to idols. For long the system established brothel houses in cantonments, presidency capitals and port towns though they were under Government control.[13]

The agitation for the abolition to this evil started even from 1868, when the agitation was started by the eminent English Woman Josephine Butler in England. As a result the system was abolished in England and other colonies. When a devadasi from Visveswaraswamy temple in Coimbatore district approached weeder burn the local district magistrate in 1874, for grant of dedication of minor girl that case was sought reference from the Advocate General H.H. Cunningham. He advised that the right course of action was to refuse sanction.[14] The Government accepted that and sent circulars to the District Magistrate and Inspector General of Police to be cautious in that matter and not to grand permission if sought. In 1886 British Government abolished devadasi system in Tamil Nadu. But this system continued now and then and they took minor girls to other neighbouring status and fulfilled the ceremony of dedication to gods there. Many minors girl from Tanjore and neighbouring districts were taken to Karaikal and Pondicherry for dedication to idols of temple and turned into Devadasis.

Anti-Devadasi Movement

From the beginning of the twentieth century protests were made against the presence of devadasi in temples. The movement became popular and conferences were convened to discuss the practice. The anti devadasi campaign was carried in Madras under the leadership of Muthulakshmi Reddy. The members of the WIA also vehemently opposed the evil practice.[15] The Devadasi women's association such as the Isai Vellalar Sangam in Tanjore and Mayavaram and the Sengundar Maharaja Sangam in Coimbatore also organized meetings and conferences, supporting the abolition of devadasi system in Tamilnadu.

Legislation Initiatives

The people from different parts of the country even from within the devadasi community requested the British government in Tamil Nadu to enact a law to prohibit the adoption of minor girls by dancing women. On 18th September 1912 Dadaboy introduced the protection of women and girl bill in the Central Legislative Council with provisions to prohibit the practice of dedication of minor girls. Followed that Amrita Gauri who was the member of WIA passed a resolution and recommending to the Tamil Nadu Legislation for the purpose of prohibiting the traffic of minor girls for immoral purpose ostensibly intended as Devadasis was adopted by the Assembly on 27th February 1922. The bill became an act in 1924. The main objects was to deal with the evils caused by the devadasi system Muthulakshmi Reddy, Amrita Gauri, Tharabai and the members of WIA protested against the dedication of girls for a long.[16]

Muthulakshmi Reddy

There are many personalities who had rendered their valuable service for the liberation of women from various social evils like sati, child marriage devadasi system dowry etc. Dr. Muthulakshmi Reddy was one of the outstanding leaders of Tamil Nadu who worked for the upliftment of women in the society. Muthulakshmi Reddy worked for the emancipation of women in Tamil Nadu through organization and legislative measures for eradication of such social evils.[17] Basically she was a brilliant doctor at Egmore and had contact with Sarojini Naidu and Annie Besant. She became interested in social service for the Welfare of Women and Children and became the member of Madras Legislative Council in 1926.[18]

Social Legislation

The Madras Legislature initiated legislation for the abolition of Devadasi system under her able guidance. Muthulakshmi Reddy relentlessly waged a crusade demanding abolition of devadasi system.[19] She introduced a resolution on 5th November 1927, demanding the Madras Government to recommend to the Government of

India a legislation at a very early date to end the practice of dedication of young girls and young woman to Hindu temples for immoral purposes in the name of caste, convention or religion.[20] Finally the council unanimously passed a resolution infavour of it. Therefore S. Muthulakshmi Reddy drafted a bill on abolition of devadasi system and to get the sanction of the Government of India. Orthodox Hindus opposed the Bill and wanted to protect the existing system and also affect in future their religious rights and interests.[21] On the other side devadasi bill was appreciated from individuals, recognised social association as well as public bodies.

The Act India National Conference held in Madras in 1927 whole heartedly greeted the efforts taken by Muthulakshmi for the abolition of devadasi system.[22] The bill introduced in the Madras Legislative Assembly during 1928-1929. After a long deliberation abolition of devadasi bill was passed. The Act was enforced during the O.P. Ramaswamy Reddiar's Administration.[23] The Act put an end to the practice of dedicating young girls as devadasis in the Hindu temples and the devadasi community developed a sense of self-respect and dignity. Madras Legislation was the first province in British India to undertake such social practice and to attack upon the centuries old custom.[24]

Conclusion

The twentieth century witnessed many efforts and legislations passed against the social maladies. The social problems of the Indian society was clearly reflected the British Policy of non-interference in socio-religious issues. The influence western education and liberal ideology which subsequently made them start social reform movements and fought for social equality of women, to promote the status of women and Economic Independence from orthodox Hindu society. The institution of devadasi system, eradicated of serious efforts made by Muthulakshmi Reddy in the Tamilnadu Legislative Assembly.

References

1. *Edgar Thurston and K. Rangachari, Castes and Tribes in Southern India, Vol.II, 1990.*
2. *Ibid.*
3. *A.S. Altekar, The Position of Women in Hindu Civilization, Banaras, Motilal Banaras Das, 1956.*
4. *Kamji Dwarakadas, Prostitution Under Religious Customs, Bombay, 1928.*
5. *Amritsrinivasan, The Devadasi and Her Dance, Economic and Political Weekly, Vol.XX. No.44, Nov 2, 1985.*
6. *Asha Ramesh, Impact of Legislative Prohibition of the Devadasi Practice in Karnataka-A Study, May 1993.*
7. *B.B. Sahoo, Revival of the Devadasi System, Indian Journal of Social Work, Vol.58, No.3, 1997.*
8. *Sujana Mallika and Krishna Reddy, Devadasi System, A.P. History Congress at Warangal, January 1990.*
9. *Edgar Thurston, Op.cit.*
10. *Ibid.*
11. *Ibid.*
12. *Ibid.*
13. *Central Legislative Council Proceedings, April 1912, Vol.I, 1913, P.85.*
14. *G.O.No.266, Home Department, Government of India, August 1873.*
15. *G.O.No.41-48, Judicial Department, 4th December 1892.*
16. *C. Ramachandraier, Collection of Decisions of the High Courts and Privy Council.*
17. *G.A. Natesan, Madras Congress and Conference, Madras, 1909, Pp.12-13.*
18. *Central Legislative Council Proceedings, Vol.II, 1913, P.13.*
19. *File No.791, Home(Judicial) Department, 1927, Nos. 1-4.*
20. *Madras Legislative Assembly Debates, Vol.XIII, August 1939, P.290.*
21. *Muthulakshmi Reddy, Auto-Biography, Madras, 1964, P.65.*
22. *G.O.No.4079, Law (General) Department, 20th December 1927, Pp.17-18.*
23. *Muthulakshmi Reddy, My Experience As a Legislator, Madras, 1930, P.110.*
24. *Madras Acts, 1924-1935, Pp.98-100.*

Personal financial literacy among Women - A boon to freedom

Dr Minakshi Kumawat
Pune(Maharastra)

shodhshree@gmail.com

*"If you are not willing to learn, No one can help you.
If you are determined to learn, No one can stop you." – Zig Ziglar*[1]

In the modern era women have touched the heights of success in every field of life. But contrarily also lagged in personal financial matters and financial education. The author observed that they have less enthusiasm, lower confidence and less willingness in learning personal financial matters. Financial literacy is all about managing the money. According to the Organisation for Economic co-operation and development (OECD)[2] "financial literacy is a combination of awareness, knowledge, skill, attitude and behaviour necessary to make sound financial decisions and ultimately achieve individual well being."

The old age illiteracy taboo among women is fading and today women are getting education on equal footing with men. According to census 2011, INDIA TV[3], Literacy rate among Indian women is 65.46 % and this is increasing day by day. But the major issue is related to the lack of awareness of personal finance among the Indian women. Financial literacy is somehow affected by several factors like race, nation, gender, age, income level, education, geography, Demographic and socio-economical etc.

Hitherto the researches, including OECD shows that need of financial awareness among women are highly lacking both at national as well as international level. Personal financial literacy will be the first step towards women independence and their financial freedom. In India, household financial planning remains mostly with men and women do not actively participate because of financial unawareness. Since average life expectancy of women is higher than their counterpart, they are required to be sufficiently financially literate to manage the life at later stage when they are alone.

Present scenario

According to a Survey conducted by VISA[4] in 27 countries with 25000 Women participant, to gauge the strength and weakness of financial education worldwide among women, India stood at 19th place with an overall score of 36.8 as compared to Brazil's score of 50.2 which is at first place. India is behind

 ISSN 2277-5587

from some of small countries in Asia Pacific even such as Malaysia and Thailand.

The following chart depicts the country wise literacy ratio of women literacy.

Chart-1: **Women's overall ranking by country** (Most financially literate, left to right.)[5]

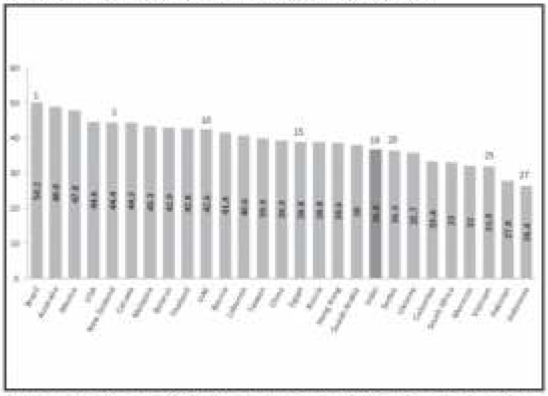

Women financial literacy in India is best depicted by a survey made by Jago Investor which concludes that only 4 % women has excellent financial literacy level whereas 44% women has almost Zero Financial Literacy Level. There is a large difference between women having "Very Little" and "Good" Knowledge of personal finance.

Chart-2: **Financial Literacy Level for women in India**[6]

Need or necessity of financial literacy in India:

Personal Financial Literacy is no longer a choice but it has become an essential part of our financial life. There are number of reasons why women must gain personal financial literacy. Some of them are given here under:-

I **High Average Expectancy Rate of Women**

"There is one thing women can never take away from men. We die sooner. "

- P.J. O'Rourke[7]

This is hard to accept for women but yes; it is true. According to Manisha thakor[8], personal finance expert of women US, a research stated that 80% of men died married and 80 % of women died single. According to The Times of India[9], the average India Women lived 3 years more than her male counterpart in 2008. The life expectancy at birth for women was 67.7 years, for men it stood at 64.6 years. This means that most of the Women have to sail alone at final vulnerable stage of their life.

ii **Sudden Responsibility**

Because of population pressure and unsafe traffic conditions, the accident rate is increasing day by day. It is very scary if we look at the rate of accidents in India. According to www.dw.de[10], India has the worst number of road accidents in the world. With over 130,000 deaths annually, the country has overtaken China and now has the worst road traffic accident rate worldwide. Every hour 40 people are died in road accidents under 25, around the world. As per WHO, this is the second most important cause of death for 5 to 29 year old.

Another main cause of sudden responsibility is divorce that hearts badly the women, emotionally as well as financially. According to Mark Dummit BBC news Delhi[11], there has been 100% increase in divorce rates in the past five year alone.

Ultimately the women have to suffer the pain of loneliness, with sudden financial responsibility. This is also a big reason for women to think again the necessity of personal financial awareness.

iii **Maximum Utilisation of Personal Financial Resource**

It is believed that Women have better understanding of long-term expenditures, retirement planning, and child marriage etc. Financial literacy will give them wisdom to utilise their personal financial resources, so

if women think on this important aspect of their life, their long-term financial planning can be effective. They can invest their funds in proper manner to get better gains, maximum tax benefits, insured life and ultimately maximum financial freedom. All this requires commitment and few steps towards personal financial literacy.

iv **Shorter Working Life**

Women have shorter working life because of their own personal reasons. They have comparatively more family responsibility in term of household work, Pregnancy, children, and family involvement. All these responsibilities make her earning life comparatively shorter. But if they get themselves involved in family financial matters then they can get maximum benefit out of their resources.

v **Future Risk Protection**

Awareness on personal Finance is required at every stage of life. Financial Challenges of life becomes a monster for Women who live longer than their counterpart and those who are separated from their husband. There is a need for them to plan for future requirements and here comes the necessity of financial awareness to fight the risk monster.

Women Psychology on personal financial planning

There are many misconception and excuses on personal financial Literacy among women. Some of factors responsible are as under.

I. **Time**

If women don't want to do something then this is the best weapon for them. This attitude doesn't allow them to understand the value derived from taking time to derive the Value in Life. They have household work and Family responsibilities and it is difficult to find the time but understanding the personal finance is even important to give them freedom and security in life. Not finding time for such an important matter is nothing but a psychological barrier which needs to be broken by better time management.

II. **Dependency on Husband**

"Man is not a financial plan"
- The wealthy women.[12]

Most Women are worried about their money but when it comes to manage, invest, creating emergency fund, retirement planning etc. then they pull their hands and leave this all on their husband's shoulders. Waring, a former London city worker turned personal advisor, was horrified by how many women avoid dealing with their finances because they "don't do maths". She says: if you're bright enough to be scientist, doctor, lawyer, bringing up a family of three kids and manage to get them all to the right school, right football practise, right ballet lesson at the right time, then you are actually bright enough to get to grip with your finances".

Improving knowledge in personal finance is the only way to become financial independent and confident. It is the action that must be taken by every woman.

III. **Fear of Complex Calculation**

Generally women have a fear of numbers which is again a misconception where they feel that they are not good at calculation. They have a fear that they will make mistakes when working with numbers. They should stop making fool their self and starts taking action on this vital part of life.

Again it is their myth that personal finance means very complex calculations. Here, personal finance doesn't means very deep knowledge of finance, ratios analysis, shares, etc. A woman can make herself financially confident and independent by improving her knowledge on retirement planning, investments, online banking, mortgage management, child education etc.

IV. **One Who Earns, has to Manage**

Women leaves all personal financial matters on the shoulder of her husband by saying that, it is earned by him so he will manage it all. This is only to hide themselves from

ISSN 2277-5587

money matters. Future is uncertain and ignorance and hiding attitude of women may cost a lot. It is not important that money is earned by whom but to stand firmly in every crucial financial situation make sense. If they think sincerely on this, they can gain the benefits of, avoiding long term investment loss, earning extra money, better retirement life, better child education and marriage plan

Personal Financial Literacy Tools

There are so many ways by which women can gain personal financial literacy. But to get fruitful results from all these tools, they need to be motivated and determined to learn. Some of the sources from where the knowledge of personal finance can be achieved :

- Web
- Blog
- Books
- Financial Awareness Seminars
- Get Involved in family Finances
- TV Shows
- Online Financial Boot camps
- Govt. Door to Door Schemes

Suggestions

Going along with gender differences in personal financial knowledge study depicts that this literacy not only improves the quality of life but make them more self dependent. Realizing that women has less interest and confidence in financial management and are ill prepared for mathematics, we need better curriculum courses and additional care programme for good socio-economic status in society.

Some suggestions are advanced for improvement of women personal financial literacy :

- Teaching Personal Finance must be included as a mandatory subject in education curriculum.
- Initiative from Government to organise frequent financial awareness seminars.
- Seminars and camps related to Women financial Literacy should be free or at nominal charges so maximum number of women can participate.
- These Seminar and camps must be advertised so more and more people can benefit from these.
- Women should take initiative to get involved in family finance related matters.

The study may be best concluded with a slogan given by Nora Ephron women should
"be the heroine of your life, not the victim."[13]

References

1. *Zig-Ziglar - Hilary Hinton was an American author, sales man and motivational speaker.*
2. *OECD/INFE Evidence, Survey and Policy Responses- June2013*
3. *India TV - India's Top 10 States with highest Women Literacy rate.*
4. *VISA's International Barometer of women's financial Literacy- April17,2013 The overall country scoring is a 0-100 index based on the 5 individual 0-100 scores for Budgeting (25%), emergency savings (25%), frequency in talking to children about money (25%), Perception of young peoples' money skills (12.5%) and the desired age to begin formal personal finance lesson (12.5%)*
5. *Data extracted from VISA practical money skills.*
6. *Jago Investor.com,- "women and personal finance in Indi" a by Manish Chauhan*
7. *Patrick Jake O'Rourke, is an American Political satirist, most often known as PJ O'Rourke*
8. *Manisha Thakor , personal financial expert for women, US ,www.manishathakor.com*
9. *Average Indian's Life expectancy up 4.6 years- The times of India- October 2012*
10. www.dw.de/india-has-the-*highest-number-of-road-accidents-in-the-world*
11. *Not so happily ever after as Indian Divorce rate doubles- By Mark Dummett, BBC News Delhi, 1 Jan-2011*
12. *"The wealthy women". A book by Women financial Advisor and money guru Mary waring.*
13. *Nora Ephron was an American journalist, essayist, playwright, screenwriter, novelist, producer. Director and blogger.*

Relevance of the NAM and Indian policy

Dr. Shahnaz Khan
Jaipur

shodhshree@gmail.com

The phrase non-aligned suggests a political space of neutrality, a definition by negation-between two powerful blocks, East and West, Socialist and Capitalist to put it starkly. But the club's purpose, domain and actions were far greater than the literal international relation. The key word was "movement". The club became a movement for claiming sovereignty for the newly liberated nations from superpowers , as also the independence to design their future from their own history, culture and economic landscapes, sovereignty and liberation were the key words .[1]

Political world divided into two hostile camps engaged in cold war. Many newly emerged sovereign States of Asia, Africa and Latin America of the post-war period decided to remain away from these camps, the cold war and its alliances. They did this with a view to maintain their independence in international relations. The policy, which guided the path of such states, came to be gradually known as Non-alignment. The movement owes its origins to the Asian Relations Meeting of New Delhi (1947) and the Afro-Asian Conference at Bandung, Indonesia (1955) where Prime Minister Nehru played a very dynamic role. As a movement, however, Non-alignment was formally launched at the Belgrade Conference. The pioneers of the notion of Non-alignment were Mr. Nehru of India, Marshall Tito of Yugoslavia, President Nasser of Egypt and within a span of four decades, the movement which started with only 25 members at Belgrade, rose to 116 during the 13th NAM Summit. Thus the NAM took bold stands on issues affecting the newly independent and developing countries and was decidedly, a force that neither of the two super powers could afford to ignore.

The NAM as a movement of the small, newly-independent and developing countries has been determined to carve out an independent path of development and not to remain an appendage of any colonizing power or super-power. This objective helped NAM in making a significant head way throughout the cold war era. The crusade against imperialism and racism met with greater success with large number of colonies.

NAM was not a form of isolationism but more of an aversion to power politics and alliances so as to preserve the freedom of judgment, national interest and

ISSN 2277-5587

identity of a state, the principles of non-alignment reverberated with the principals of peaceful co existence that are deeply entrenched in Indian culture and history, and to some extent are inherently entwined in the historical Indian identity.

However, in the context of the cold war, newly independent India could not afford to be aligned with the two power blocks given that national reconstruction was of utmost importance. The extent to which India was truly 'non-aligned' during the cold war remains questionable, as relations with soviet Russia were adequately amicable.

Non-Alignment And Non-Alignment

The recent release of a report, Non-Alignment a foreign and strategic policy for India in the twenty first century has reignited debates surrounding the resurrection of the NAM. Indian foreign policy is often criticized as ad hoc, lacking consistent strategic and ideological underpinnings with the intention of counter such allegations, Non-Alignment seeks to provide an ideological alternative for the future of Indian international relations that centers itself on the fundamental notion of strategic autonomy.[2]

Non-alignment is an attempt to identify basic principles that may guide Indian foreign and strategic policy in the decades to come and beyond. It identifies an essential link between India's domestic policy and foreign policy and suggests an outside in approach to understanding the way in which foreign policy will forge and influence domestic politics, emphasizing that domestic development will hinge on the management of international opportunities.

According to the report, a future policy of India must be centered on three "core objectives": to ensure that India did not define its national interest or approach to world politics in terms of ideologies and goals that had been set elsewhere, that India retained maximum strategic autonomy to pursue its development goals, and that India worked to build national power as the foundation for creating a just and equitable world order.[3]

This very fact raises questions on the viability of the very Ideological of Non-Alignment and Non-Alignment in an increasingly interdependent world of the 21st century. Since the end of the cold war and India's economic reform, the legacy of non-alignment has been side stepped so as voraciously grasp "rising power status" by adopting a different outlook and embracing a proactive role in the international sphere.

Non-Alignment propagates open and free markets fuelled by globalization, especially with the intention to fulfill India's development goals. But it is impossible to overlook the fact that alliances, strategic, political and economic are central for this purpose.[4]

The very context for India to 'non-align', itself has drastically changed the world order is no longer divided between two ideologically heavy power blocs.

Indian foreign policy cannot grasp onto the same ideological weight in its post colonial and anti-imperialist nations. Very simply put, times have changed and the leaders of the world and the international system are faced with different challenges now. India needs to read just and define its ideology in contract to these changes, issues such as climate change, resource wars, nuclear proliferation, cyber crime, international terrorism, a challenging neighborhood, and a potential UNSC permanent seat are what need to be addressed.[5]

Even though Non-Alignment claims to tackle issues facing rising India, as expressed through the themes of its table of contents, such as India and the Asian theater, international order, hard power, internal and non-conventional security issues etc. the report fails to provide refreshingly new perspective and nuance to the debate on the future of Indian foreign policy. Whether it is the attachments to its very name or the repetitiveness and over emphasis on the vague idea of "strategic autonomy", Non-Alignment fails to provide anything substantively different.

Relevance of The NAM Today

NAM has been subjected to more ruthless criticism in the post-cold war period than in its long career. In the changed international

scenario the collapse of the former Soviet-Union and the end of the cold war, the question has been posed as to whether NAM remains valid or not, it is often argued that since Non-Alignment was born and brought up in the cold war context. Why should it not be renounced in the post cold war world?

The 21st century is for NAM's rebirth under new democratic philosophy. The tectonic shifts in international relations over the last decade have challenged NAM to adopt itself to effectively tackle the new contemporary challenges.

NAM should have a clean consensus on the key issues of common concern to all of us. Multilateralism, reform of the UN system, global disarmament and combating global terrorism should be the political elements of this agenda. The collapse of bipolarity and the rise of unilateralism have given a unique cause of this developing body to strive for multilateralism in international relations. NAM should develop into a major pole in a multi polar world.

The NAM should strive to restore the central role of the UN in the global economic issues, development and maintenance of peace and security in the world. Non-discriminatory, time-bound nuclear and general disarmament should be the objective towards which the movement should endeavor. The entire world today is facing a unique crisis in transnational terrorism, which is striking country's political, economic and social edifice with immunity. The members within the NAM framework needs to work out a realistic strategy to counter this danger in collaboration with the international community in a war footing.

Perhaps the most important role for NAM today lies in framing a concrete economic agenda for a just and fair international economic order. The globalization and liberalization trends worldwide have generated complex economic problems. The rich-poor divide has widened. The WTO rules and procedures have failed to provide adequate economic gains to the third world. WTO summits have failed to reach a consensus on many issues. Its role in WTO negotiations to advance and protect the trading rights and opportunities of developing countries and in muscling up their negotiating position and skills would be the chief concern. It should strive to reform and reorient the globalization process through a strong developmental agenda. NAM has an effective role to play in this regards provided member countries try to see the benefits from a unified angle without any partisan considerations.

South-south cooperation should become a major economic plank of the movement. Its role in the present century would be strengthened by more south-south cooperation, which would mean, by and large, collaboration between and among the NAM countries and defending their interest from fast expanding economic and technological power of the North.

NAM should develop a progressive agenda on the fundamental values of democracy, human rights and pluralism. The preservation and consolidation of democracy throughout its membership is a major challenge.

NAM's spectrum could be further enlarged with the increasing concern worldwide over environmental issues over green houses gas emissions, health concerns especially AIDS, Drug trafficking rising instances of poverty and un employment mostly within the NAM members.

To quote M.S. Rajan, Non-Alignment is dynamic policy and retains its continuing relevance in world affairs by adopting itself to the changing international countries and the needs of non-aligned community of nations. In the words of former prime minister P.V. Narasimha Rao, the pursuit of non-aligned foreign policy is ever more relevant (today) than ever before non-alignment basically consists of the espousal of the right to nations to independence and development, regardless of the bloc phenomenon.[6]

Now is the time for India choose whether to accepts or replace the path it has previously followed, one that has historically set India apart from the rest, with nations such as India's exceptionalism that came to the fore under the Non-Alignment Movement during the cold war, contrastingly India can choose another path wherein it can follow the footsteps of the great western powers by defining its role and power

ISSN 2277-5587

based on the size of its economy and strength of its military.

However, this alternative universality itself an attempt to challenge western centricity and foster indigenous foreign policy, should not be detached from the reality of the international system, but also, and more importantly, the exact challenges India faces, it must provide new alternatives as opposed to reinventing the historical wheel.

References

1. *Kapur, Harish: "India's foreign Policy; 1947-1992 shadows and substance". Sage Publications Pvt. Ltd., New Delhi, 1994*
2. *Non-Alignment: A foreign and Strategic Policy for India in the Twenty First Century (A Report, 2012)*
3. *Ibid*
4. *Ibid*
5. *Bandhopadhyay,j,: "The NAM and International Relations", India quarterly, New Delhi, 1977.*
6. *Rajan, M.S.: "Non- Alignment; Dichotomy Between Theory and Practice In perspective". India Quarterly, New Delhi, 1980.*

Empowering Women: Planning and Policy in India

Santosh Kumar
Research Scholar,V.B.U., Hazaribag(Jharkhand)

shodhshree@gmail.com

The purpose of this paper is to highlight the issues related to empowering women in India's Planned economic development from the First to the Tenth Five Year Plans. The Study concludes how economic empowering of women in the need of the hour.

Since Independence the Government of India has been laying considerable emphasis on economic development and empowerment of women. The main motive has been to bring them into the main stream of development. The year 2001 was observed in India as the "Year of Women Empowerment". This indicates the nation's urge to give importance to the status of women in the society.

"The problems of women in India are not uniform. Eighty-Five per cent of them live in rural areas. Their lives, livelihood and status are deeply affected by policies relating to agriculture, water resources, forests, land distribution and utilization and employment resulting from agricultural, industrial and technological policies. This is especially true of poor rural women."

In India, the Five Year Plans have always placed emphasis on economic development and integration of women into the mainstream of the economy. According to the First Five Year Plan (1951-1956), " the social health of any community will depend a great deal upon the status, functioning and responsibilities of the women in the family and in the community." The Second Five Year Plan (195-1961) was closely associated with the overall approach of intensive agricultural development. A sum Rs. 14 crores was provided for the Central Social Welfare Board Schmems.

The Third Five Year Plan (1961-1966) pinpointed female education as a major welfare strategy. During the Second Plan, a total outlay of about Rs. 15 crores been incurred on social welfare. In the Third Plan, provision was made for programmes involving a total outlay of Rs. 28 crores, Rs. 16 crores at the centre and Rs. 12 crores in the states. The Fourth Five Year Plan (1969-1974) continued the emphasis on women's education. According to the Fourth Five Year Plan statement, "a major programme which will be continued in the central sector is that of the family and child welfare projects in rural areas. The

Fifth Five Year Plan (1974-1979) emphasized the need to train women in need of income. Vocational training in women's occupations was given importance.

The National Plan of Action (1976) identified areas of health, family planning, nutrition, education, employment, legislation and social welfare for formulation and implementing action programmes for women and called for planned interventions to improve the conditions of women in India.

An immediate outcome of the National Plan of Action was the setting up of the Women's Welfare and Development Bureau in 1976 under the Ministry of Social Welfare to act as a nodal point within the Government of India to coordinate policies and programmes and initiate measures for women's development.

The Sixth Five Year Plan (1980-85) devoted a whole chapter on 'Women and Development'. For the first time a shift was perceived from welfare to development approaches for women. According to the Plan : "The low status of women in large segments of Indian society cannot be raised without opening up of opportunities of independent employment and income for them. But the process of change to raise the status of women would require sustained effort over a period of time."

The Seventh Five Year Plan (1985-90) acknowledged the long hours spent by women in activities within the household. According to the plan, "women play an important role in agicultural production, animal, husbandry and other related activities such as storage, marketing of produce, food processing etc. Apart from these, they spend almost 10-12 hours per day doing household chores, including fetching of water and fathering of fuel... but the quantification of this activity, in terms of work hours contributed, or its income generating equivalent was not attempted or recorded."

According to the Plan, "In the field of science and technology stress would be laid on evolving devices to reduce the drudgery of women, so that the time saved is utilized for development activities ... Efforts would be made to extend facilities for income generating activities and to enable women to participate actively in socio-economic development."

Again it has been emphasized "there is considerable scope for mobilizing the large S & T potential, expertise and facilities in the country for accelerating the pace of rural development and widening its horizons. The needs in the country side will have to be carefully analyzed from the viewpoint of the contribution that S & T can make. To assess the real needs inputs from those who have lived and worked in rural areas and who understand the interplay of economic, social and cultural factors in that environment would be essential."

According to the Approach to the Eighth Five Year Plan (1990-95) "improvement in the well being of the mass of the people will require substantial inputs from sciences and technology." Further importance is also given on (a) "Research on and development of solutions to locally specific problems on a project basis, (b) Adaptation of relevant technologies to suit local conditions and procure relevant technologies from national laboratories, state councils, universities etc.; (c) Demonstration of such adopted technologies through demonstration centres; (d) Imparting of skills required to utilize and even improve these technologies in day-to-day life through training programmes.''

"According to the U.N. International Fund for Agricultural Development (IFAD) of about four billion people living in the developing world close to one billion – almost one fifth of the world's total population – live below the poverty line. The IFAD report says that a disproportionate percentage of those living below the poverty line are women – about 564 million, 46 percent more than two decades ago. The report notes that if women are provided with resources and support, their enormous productive potential can be unleashed."

Efforts to improve women's position need to focus on women as economic actors. According to the Document of the World Bank Gender and Poverty in India (1989), 35% of Indian households below the poverty line are headed by women and, thus, in most cases dependant exclusively on female income. Even where there

is a male earner women's earnings form a major part of the income of poor households. Moreover, women contribute a larger share of what they earn than men to basic family maintenance and increases in women's income translate more directly into better child health and nutrition."

According to the World Labour Report (1987), "in developing countries women spend much time and effort in preparing food, in carrying water over long distances and in gathering fuel or household needs. Various time use surveys indicate that a rural women's typical day includes some 12 to 16 hours of work, which is a serious threat to her health.

Technology Policy Statement (TPS) of the Government of India (1983) underlined the need of technologies to meet the needs of weaker sections of the community particularly in rural areas. It clearly spelt out the role of science and technology for rural development. The salient features of TPS included provision of gainful employment for the rural women. The emphasis of TPS is on promotion of production oriented and employment generating technologies which are complimentary to the ongoing rural development programmes.

According to the Report of the National Commission of Self Employed Women and Women in the Infromal Sector (1988), "Development of simple or appropriate technology in the form of tools, implements and protechtive devices to remove or reduce the work related hazards faced by women must be given top priority and taken up on a warfooting". Further it stated "the development of new technologies for traditional, or even modern occupation must be prioritized." It also recommended training courses for women, training for skill upgradation.

The Sixth Five Year Plan laid emphasis on raising the employment status of women. The Eighth Five Year Plan advocated equality : women to function as equal partners and participants in development. The Ninth Five Year Plan (1997-2002) laid emphasis on economic empowerment of women. The Ninth Plan document emphasized that "the women are critical to the process of moving their families out of poverty." and called for "redesigning present policies and programmes to make them more responsive to the special needs of women in abjectly extremes poverty." The Plan also committed to allocate 30 percent of development resources for "women's development schemes." Further the Plan document also envisaged that all states/ UTs be equipped with women's Development Corporation (WDCs) to provide with forward and backward linkages for credit and marketing facilities to women entrepreneurs. The Plan document while emphasizing on economic empowerment of women envisaged (i) to organize women into self help groups (SHGs) and thus mark the beginning of a major process of empowering women. (ii) to equip women with necessary skills in the modern upcoming trades which could keep them gainfully engaged besides making them economically independent and self reliant, (iii) to increase access to credit through setting up of a Development Bank's for Women Entrepreneurs in small and tiny sectors.

The various schemes have been launched for the economic empowerment of women. For example, Indira Mahila Yojna (IMY), Development of Women and Children (DWCRA), Support for training and employment (STEP), Training cum employment cum production centers (TEPC), Mahila Samridhi Yojna (MSY), etc. In 1993 a Rastriya Mahila Kosh (RMK) was established to meet the credit of the poor women.

The National Population Policy, unveiled on Februrary 15, 2000 suggested that the need of the hour is to empower women so that they can make an informed choice in birth control. Every mother dreams of the best for her offspring, whatever may be her own economic status. The best security for the child lies in a happy and clean upbrining . On May 11, 2000 India's population figure officially stood at a dreaded one billion. The small family norm is still an anathema to a vast number of Indians. Women from the upper strata of society are more aware of the advantages of restricted families, those living in extreme poverty have little say in planning their families. Such families may not way to exercise birth control, for every child can mean supplementary income, when he or she

grows up, by working in the fields, shops or homes, or even begging. Women can be made aware o the need to control families by resorting to literacy drives and educative campaigns.

"In the context of adopting human development as the ultimate goal of all our developmental efforts, empowerment of women and development of children gains priority on the country's development agenda. Women, as an independent target group, account for 495.74 million and represent 48.3 percent of country's total population asp per the 2001 Census. Empowering women as a process demands a life-cycle approach. Therefore, every stage of their life counts as a priority in the planning process."

This is stated in India's Tenth Five Year Plan (2002-2007) The Plan recognizes that the success of empowering women depends upon the holistic impact of various sectoral achievements. Efforts will be initiated and intensified during the Tenth Plan to coverage the existing services, resources, infrastructure and manpower available both in the women specific and women related factors with an ultimate objective of optimizing the benefits with greater cost effectiveness. To this effect, efforts will be made to converge the services of health care, nutrition supplementation, safe drinking water, adult/functional/legal literacy, gainful employment both wage and self employment, sanitation, health and nutrition awareness, knowledge and information about management of diseases, counseling towards safe motherhood practices, nutrition, welfare services etc.

One important target of the Plan that directly focus on women is "reduction of gender gaps in literacy and wage rates by at least 50 percent by 2007". Besides this the "Tenth Plan reaffirms the major strategy of mainstreaming the gender perceptiveness is all sectoral policies and programmes and plans of action. This will help achieve the ultimate goal of eliminating gender discrimination and creating an enabling environment of gender justice, which would encourage women and girls to act as catalysts, participants and recipients in the country's development process. Further, women specific interventions will be undertake to bridge the existing gaps."

However, the focus of the Ninth Plan (1997-2002) has been "Growth with Social Justice and Equity" and one of the specific objectives of the Ninth Plan has been "Empowerment of Women". The approach of the Plan was to create and enabling environment where women can freely exercise their rights both within and outside home, as equal partners along with men. For the purpose a "National Policy and Empowerment of Women" was approved in 2001.

Second, the Ninth Plan attempted convergence of existing services, resources, infrastructure and manpower available in both women specific and women related sectors. To this effect, the plan directed both the Centres and the States of adopt a special strategy of "Women Component Plan" through which, not less than 30 percent of funds/benefits had to be earmarked in all the women-related sectors.

The Tenth Plan promises to make the implementation of the Women's Component Plan more effective by not only defending the concept of WCP clearly, but also going a step further in identifying the schemes and programmes of various ministries / departments which should be covered under WCP. The Tenth Plan endorses the recommendation of the working group that the best approach of the Plan for empowering women will be to translate the National Policy for Empowerment of Women (2001) into action.

It becomes clear from the above discussion that through much emphasis has been given on women's development issues in India's planned economic development, yet more thrust and responsiveness to development programmes at all levels is needed.

References

1. *National Perspective Plan for Women (1988-2000) Report of a Debate August 22-23, 1988, New Delhi, P.1.*
2. *Govt. of India, Planning Commission, First Five Year Plan (1951-56) Chap. XXXV, p.614.*
3. *Govt. of India, Planning Commission, Second Five Year Plan (1956-1961) Chap. XXIX, p.603*
4. *Govt. of India, Planning Commission, Fourth Five*

Year Plan (1969-74) Chap. 20, p.403

5. *Govt. of India, Planning Commission, Fifth Five Year Plan (1974-79) Chap. V, p.83*
6. *Govt. of India, Planning Commission, Sixth Five Year Plan (1980-85) Chap. 27. p.423*
7. *Govt. of India, Planning Commission, Seventh Five Year Plan (1985-1990) p. 321*
8. *Ibid.*
9. *Seventh Five Year Plan, 1985-090, Vol. II, Govt. of India, Planning Commission, Chap. 17. p 361*
10. *Approach to The Eighth Five Plan, 1990-95, Meeting of The National Development Council, June 18-19, 1990, Planning Commission, Government of India, p.41*
11. *Ibid p. 43*
12. *The Economic Times, November 23, 1992*
13. *Document of The World Bank Gender and Poverty in India : Issues and Opportunities Concerning Women in the Indian Economy, Volume 1, September 22, 1989, p.11*
14. *World Labour Report 1-2 Women in the Labour Force, ILO, 1987, p.249*
15. *Shramshakti : Report of the National Commission on self Employed Women and Women in the Informal Sector, June 1988, Delhi p.170.*
16. *Ibid.*
17. *Govt. of Planning Commission, Tenth Five Year Plan (2002-2007) Vol. II, Chapter 2.11, p.217*
18. *Ibid, p. 239*
19. *Ibid, p. 239*
20. *Govt. of Planning Commission, Ninth Five Year Plan (2002-2007) Vol. I, Chapter-I, p.2*

The Arab Spring And India-West Asia Relations

Dr. Akila Azad
Lecturer, Govt. College, Kota

shodhshree@gmail.com

In terms of domestics politics, the Arab world continues to face the challenge of modernization. The prospects for the emergence of progressive modernizing forces are quite bleak from an international relations perspective. Regional uncertainty has increased as a result of the Arab uprisings and a number of national security challenges that led to a deterioration of the strategic landscape.

The potential for further deterioration in the region and the risk of additional states being torn by turmoil and civil war and sliding into "failed State Status has increased significantly. Such political entities are characterized by the absence of a monopoly over the use of force; delivery of very limited justice; inability to sustain a legal and regulatory climate conducive to private enterprise, open trade and foreign investment, and difficulty in meeting the basic needs of the population in terms of health, education and other social services.

The focus of the protests had been almost completely domestic – a demand for democracy, for fundamental, political, economic and social reform, for basic human freedoms and had little or nothing to do with external relations. The developments that led to the phenomenal popularly called the "Arab spring", has great significance for India, as well as for the world. The Arab region remained the least democratically changing area in the world since the third democratic wave which took place in 1989.

The advent of the year 2011 represents a critical juncture in the modern political history of the Arab world. Since December 2010, a number of the Arab countries have witnessed an unprecedented popular uprising to call for not only reforms, transparency and the enforcement of law but also regime changes. The parameters of the Middle East is regional order have under gone profound changes as a scale not seen in the Arab contemporary history. Revolutions make possible new domestic political orders and substantial reorientations of foreign politic. Imitative uprisings have far resulted in widespread violence, regime retrenchments and even foreign interventions, although prospects do remain for more positive outcomes.[1]

The region is definitely is political ferment, but whether that presages transitions to democracy remains to be seen. The spread of demands for democracy in the Arab world in 2011 and 2012 rose up expectations of the people far a genuine change. But the imagery is not just premature but also misleading. The evident drama of these events makes it difficult to discern those changes that are superficial and transient from those which will be far reaching and long lasting. More importantly, these events have shifted the power balance in the region, thus, make key global players to reconsider their policies towards the region.

People had risen up spontaneously and in unprecedentedly large numbers demanding not merely reform but regime change.There were several other unique features of this popular upsurge it started without known or identifiable leaders, without the banner of any specific ideology or organization and without instigation from abroad.

It was preeminently a movement spearheaded by the younger generation and was consciously inclusive of all the diverse elements that constitute a national society. The unrest initially began everywhere as a peaceful, non-violent protest against autocratic, corrupt and brazenly repressive rule and the lack of economic development and opportunity for the people at large while the ruling elite lived in luxury.

By examining the historical trajectory of Arab States, it is clear that these uprisings are yet another in a series of calls by the peoples of this region to be governed by legitimate authorities. While no single group has yet been able to effectively take up that mantle in any of the transitioning countries, it is clear that whoever does will employ an ideological mire of Islamism, nationalism and state responsibility for the socio-economic welfare of its people.

It is also clear that these transitions may well take decades to reach their end. The road ahead will likely to be chaotic and unstable. Given that these transition will be unique from each other, but also intimately interconnected. It is our view that the most effective approach for the United States will be to think regionally, but act bilaterally. With a new administration in 2013, now is the time to reshape our objectives, strategies and policies based on the approach, clearly articulating to each country what we seek as they move down uncharted paths of their own.

India And GCC Countries

Cooperation prevailed in western Asia in ancient times, i.e. B.C., and modern history namely in the period from 1258-1498. Despite the flourishing of trade hundreds of years before the period 1258 witnessed the transition of land trade from India and China through Asia to the Indian Ocean passing through Egypt after the Mongol's invaded and captured. Baghdad 1498 was the year marking the discovery of the cape of good hope route, hence, reducing the importance of the Indian Ocean.[2]

Multiple commercial powers that significantly contributed in the trade movement namely the Arabs, Indians, Africans, Chinese and Persians.Western Asia is deemed one of the models constituting an important strategic region containing pivotal states, namely the GCC countries as a regional organization, India and other countries such as Iran and Pakistan, cooperation among them may lead to the rise of a new geostrategic reality that is more positive than the currently prevailing regional atmosphere.[3]

The GCC countries are aware of the strategic importance of Gulf- Asian relationships in general and Gulf- Indian relationships in particular. The GCC countries can establish a cooperative model for security and stability based on economic development and commercial co-operation distinct from strategy of Power Politics.

In other words, the desired co-operation among the western Asian Countries is based on three principals namely:

First:- Common historical and cultural links which constituted a prerequisite for commercial prosperity throughout various phases of history in addition to the geo-strategic reality.

Second:- Common security challenges facing western Asian countries such as illegal trade and piracy.

Third:- Current changes at the regional and

ISSN 2277-5587

international levels which require close co-operation among western Asian countries.

India is risking its far more important relationships with the GCC countries, US and Israel establishing a workable balance in relations between India and Iran on the one hand with that between India and the GCC countries on the other is likely to be the most important challenge for India in west Asia in the next 2-3 years.

World oil demand in 2012 was around 90 million barrels a day (mbd).while the us continued to be the top consumers as of September 2012 with 18.2 mbd, the BRIC countries and Saudi Arabia together took five of the next six spots. China is ranked second with demand of 9.8 mbd, followed by Japan (4.4mbd), India, Russia and Saudi Arabia came next, with demand of around 3.4 mbd each, followed by Brazil (3mbd). The top 10 consumers as a whole accounts for roughly 60% of total global demand.

The production figures of these countries are as follows:

Saudi Arabia – 10.5 mbd, Russia – 10.27 mbd, USA – 9.6 mbd, China – 4 mbd, Brazil – 2.30mbd, India – 954,000/b/d. Apart from Japan therefore, India is the most dependent on the international market for its oil demand.[4]

For fiscal 2011-12, India imported 171.73 million tones of crude. This is expected to go up to 181-185 million tones in the next fiscal, with new refineries being added. In the first quarter of 2013, India's crude oil bill was Rs. 3,654 billion, which is about 18 % higher than the preceding year. If prices or imports or both increase, the bill will be even higher given that India's oil import bill accounts for almost one third of the total imports. Since fuel prices are subsidized, the government has to bear some of the cost by reimbursing the oil marketing companies for selling fuel at lower prices. As a result, the fiscal deficit target is breached time and again, which in turn increases, the government's borrowing costs and keeps interest rates high.[5]

Speaking at a meeting organized at IDSA last year, India's National Security Advisor Shiv Shankar Menon said, " the western developed countries can now afford the chance that the so- called Arab spring is bringing to the middle East. They can actively encourage regime change in the area. The main victims of uncertainly in supply will be emerging economies like China and India who are still to diversify by their sources of supply into long term flexible contracts with other outside the region".[6]

Given that almost 62.6% of India's imports during April-September 2012 are sourced from West Asia, Sandi Arabia is the largest Supplier with 18.3% of the total supplies followed by Iraq, which met almost 13% of total requirement during the period, followed by Venezuela (10.3%) and Kuwait (9.8%), UAE (9.2%).

Iran which was India's second largest supplier earlier, has slipped to the seventh position after Nigeria. This is because the Indian basket of crude Oil comprises Oman and Dubai Brent for sour grades and North Sea Brent for sweet grades in an approximate 60-40 ratio.[7]

The current relationship between the GCC countries and India based upon a unique compatibility which highlights multi-spectrum mutual dependence on one hand and symbiotic synergy on the other. This has been possible largely due to a low key non-intrusive Indian policy approach to the region guided solely by considerations of mutual benefit. This approach is likely to remain the best way forward, supplemented by extending full support to endeavors of the countries of the region in addressing their problems themselves-individually , bilaterally, regionally through their organizations such as the GCC and the Arab League.[8]

The Indian economy underwent structural transformation following the economic reform programs implemented in the early seventies. The average Indian GDP growth in the period from 1980-1991 was 5.1% and it then reached around 6.7% in the period from 1992-2012 as a result of the economic liberalization program. This significant growth was reflected in the contribution of the Indian economy in the global economy, increasing from 2.5% in 1980 to 5.7% in 2012.

One of the feathers of growth of the Indian

economy is the increase of the average external trade of India. In the period from 1997-2011, the size of exports increased from $33 billion to $251 billion and average imports increased from $39 billion to $370billion.[9]

Based on the tangible economic achievements made by the GCC countries and India, there are many dimensions of cooperation between the two sides including:

- A 1500% increase in trade between India and the GCC in the period between 2001-2010 as total bilateral trade between the two sides was $5.6 billion in 2001 and it rose to $88.8 billion in 2010. The GCC countries have become India's most important trade partner in 2010 as their trades represent 18% of India's total external trade.
- The number of Indian workers residing in the GCC exceeded 6 million in 2010 and international remittance of Indian workers reached $55 billion in 2010, 30% of which was from GCC countries. Such labor contributed to various GCC development plans.
- Despite the above, there is still a need to develop aspects of economic cooperation between the two sides including Gulf energy products, which represented around 40% of Indian Imports in 2011, especially when considering that Indian demand for these products will grow over the coming years due to population growth and the increasing needs of India's Industrial sector.[10]
- The Indian economy still needs investments in infrastructure, which present an opportunity for the GCC countries which themselves are still looking for new foreign investment opportunities, i.e., India is one of the promising opportunities in this regards. There is no doubt that the agreement of the Gulf Ministerial Council in 2004 to enter in to negotiations with the Indian government to establish a free trade zone is a solid foundation towards developing economic and commercial relationships between the two sides.
- In addition, estimates indicate that the trade value between the GCC countries and Pakistan will increase from $59 billion to $350 billion by 2020.

The Arab Spring And Opportunities For India

The International scene is currently undergoing important strategic changes, foremost among which is the US withdrawal from several parts of the world including Iraq in 2011 and Afghanistan in 2014 in addition to changes in the energy market.

The current international equilibrium is undergoing profound and historical changes that will lead to unconventional results in the strategic international balance of powers. This is apparent looking at the economic structural problems facing the United States and Europe and the implications of these countries policies such as the "US changing defense policy over the next 10 years".[11]

Indian foreign policy in West Asia lies at its most crucial juncture in two decades.

A sectarian, geopolitical and strategic cold war is unfolding between Saudi Arabia, protector of the Sunni Arab order and Iran, a shia persian revolutionary power with a mission to subvert that status quo. The battle fields are Syria and Palestine, Afghanistan and Iraq for India, the stakes are high.

Saudi-Iranian rivalry has ebbed and flowed for decades, but two developments – the acceleration of Iran's nuclear ambitions and Arab Spring-have sharpened the antagonism. In the coming years, that will likely push Saudi-Arabia closer to Pakistan and exacerbate threats to India.

India has heavy stake in the stability of the region, particularly the stability of the Arab Gulf and Gulf of Aden.

The region's importance not only lies in terms of its uninterrupted supply of oil and gas products, but also as India's largest trading partner, market for investment and largest source of remittances.[12]

For India the region is a major source of raw materials, the home to some of the world's most volatile regions, the incubator of violent extremism, the main theatre for the proliferation

of weapons of mass destruction, the location for a large number of failed and failing states, the littoral is importance for the global economy & great power relations has never been in doubt. Then and now, the big question is about the meaning and consequences of a power transition in the region.

For India, the Gulf of Aden is a crucial sea lane of communication and trade, which, in its interest, should be secured. The same applies for the straits of Hormuz of the Arab Gulf and of Malacca in the far East In India, already an energy deficient country and billed to be one of the highest energy consumers in the coming decades, energy security is of prime concern to the government.[13]

In this context that India's energy supply situation has to be placed. The inter-relationship between energy, resources and National security underscores the country's policy approach to the region. India's domestic demand for oil, which was 3.58mbd in 2012, has been growing exponentially year on year. However, internal production during the same three- year period has been growing marginally –0.86, 0.9 and 0.92 mbd in 2010,2011 and 2012, respectively. This increasing shortfall is being met largely form imports from West Asia, which account for two-thirds of India's oil trade. And this dependence on West Asia for its energy is likely to continue.

India being one of the largest oil consumers and importers in the world-currently the fourth largest importer of oil and given its year-on-year growth in demand, any increases in crude prices can affect the government's fiscal calculations. In the last two years, India saw its average cost of importing crude rise by $27 per barrel, bloating the oil import bill to $140 billion from $100 billion.[14]

Moreover, high international oil price could result in lower growth and higher inflation, albeit based on whether such price increases are passed on to the consumer. For instance, a10% rise in international oil prices would cause a decline in real growth of 0.9% and an increase in inflation by 0.6%. If there is no pass-through, inflation does not rise as the government absorbs the entire shock; however if there is a decline in growth because of a rise in the current account deficit the fiscal deficit to GDP ratio will increase marginally. In a partial pass- through scenario, a 10% rise in international oil prices brings down growth by 0.6% and raises inflation by 0.3%. Over the period of the 12^{th} plan, the adverse impact of oil price shock on macro variables reduces in both the cases of no pass-through and full pass-through.[15]

Therefore, if prices were to fail, either as a result of lower price postings or a supply glut driven by the introduction of unconventional resources, it would be change the geopolitics of the region. Not only would it be beneficial for India, as other oil-importing countries in terms of cheaper supplies, the Asian, including Indian, markets would become preferential destinations for OPEC/West Asian Producers.[16]

Nevertheless, the current energy relationship between the west Asian countries and India, which is more akin to a buyer-seller arrangement need to transform to a more substantial one based on cross-investment and joint ventures in each other's economies and across sectors, including energy, industry, infrastructure and services for mutual benefit. While it would allow India access to investments, including in its energy and infrastructure sectors, it would allow the GCC countries to not only invest in an emerging market but also to diversify their economic partnerships eastwards. At the same time, India should explore whether it could assist in ensuring secure transport of supplies through turbulent sea lanes and chokepoints, particularly in the event of a lower US presence in the region. After all, given that notwithstanding its energy diversification strategy, the West Asian region will remain its most important and largest energy supplier in the foreseeable future, and it is therefore in its interest to contribute towards the region's security.

The rise of political Islam in the context of democratic constitutional frame works should not be a matter of concern to a pluralist democratic India. In fact this approach is likely to help diminish radicalism. Considerations of Islamic solidarity may come into play in greater measure than before but in fashioning external relationships, national interest and pragmatic considerations of direct mutual benefits are likely to be given priority. This in fact has happened

specifically in the case of Qatar, Saudi Arabia and the UAE with whom India today has excellent relations. India's relations and interaction with the new Egypt are very satisfactory.[17]

To conclude, India's example as a successful, pluralistic, secular democracy in the world's most diverse country with a very large Islamic persona and with a strongly growing economy, is the best model for inspiration and emulation for the young generations of Arab. In the context of a rising India, a long standing traditional friend of Arabs, having an empirically established and proven strongly mutually beneficial relationship, and socio-cultural compatibility with the Arab world, India need not fear adverse outcomes.

The dramatic unfolding of the situation in West Asia over the past year poses a challenge to India in terms of a political response. It calls for a quick rethinking of our foreign policy not just from a long term perspective but also to address the challenges in a tactical manner.

Guidelines For Indian Policy

Indian Policy vis-a-vis West Asia in the aftermath of events in the Arab world of the past two years- should be as follows :

- All the problems that India is facing in the region are not bilateral in nature – be they with Israel, Iran , The GCC etc.
- The positive aspect is that India does not have a colonial relations or "cornicing and controlling" relation with this region.
- All the countries in the West Asian region have strategic problems with each other- the Shia-Sunni divide, Iran-Israel tensions and Shia Iran's problems with Sunni-Saudi Arabia, etc. However, India has to give this region its due importance due to meeting its energy needs. India's non oil economic relations with the region are also expanding to mutual benefit. India's national interest are direct linked to peace and stability in west Asia.

Thus, the economic factor becomes the most important factor is not hindering our relations with this region. We must note that though effective military power is regional, economic power is global. The other aspect of great importance is the 6 million Indians that work in this region and form an area of immediate concern to India.

Moreover, the GCC, led by Saudi Arabia, have expressed desire to develop strategic relations with India. The problem, however, is that developing relations with the GCC will put us in a bind vis-à-vis dealing with Iran.

The tension between GCC and Iran will affect Indian relations with either of them for India, two countries that matter above others-amongst- those who possess nuclear arsenals, share common border with it, and are beset with international problems are Pakistan and China.

We should work harder to develop relations with the Gulf States, especially those States that are not in favor of India.

We have to formulate policy for both the long and the short term, especially for the latter, as it is difficult to meet contingencies that India faces now with regard to this region.

However neutrality in certain situation is not an option as our image as an emerging power demands that take a strong, positive stand.

India tries to balance its relations with Israel, USA and the other regional actors, particularly China and Russia, who are clear about their positions.

India's national interest stakes in relationships with individual Arab countries and sub-regions very-very significantly. There cannot be one-size-fits-all reactions and our policies must be country, region and issue specific.

The situation in West Asia is exceedingly fluid and uncertain. There are multiple players, both regional and non-regional, who are proactively involved. An indisputable fact is that whatever India says or does is not likely to influence outcomes on the ground. Therefore, in formulating policies India must be fully conscious of this reality and refrain from statements and actions which in the longer term could be prejudicial to national interest.

The principle of non-intervention in internal affairs has always been sacrosanct for India. India would react strongly to outside comments on

ISSN 2277-5587

internal political matters.

India's policy makers should not be deterred by ideologically motivated domestic criticism about supposedly abandoning a so called independent foreign policy or criticism by foreign countries on this account.

References

1. *Ramadan, Tariq - The Arab Awakening Islam and the New Middle East".*

   Penguin Books, London 2012

2. *Othman, Dr. Shawky Abdul Qawi - "The Indian Ocean trade under the*

   Islamic rule Kuwait". Alam-Al-Marefa Series no. 151

3. *The GCC was founded as a defensive alliance primarily against Iran in 1981, and is composed of Bahrain, Kuwait, Oman, Qatar, Saudi Arabia and United Arab Emirates.*

4. *Indian Oil and Gas Sector - upstream (hi 2012-13 update) ICRA, Research Services, Dec.2012.*

5. *Joshi, Shashank - " Reflections on the Arab Revolution". The RUSI Journal, 2011.*

6. *"Middle East and Central Asia - Regional Economic outlook". World economic and financial surveys, IMF, Nov. 2012.*

7. *Indian Oil and Gas Sector, upstream ICRA, Research Services,2012*

8. *Mishra, Ruchir - " Iraq, Venezuela, Emerging top crude oil suppliers for India". Business Line, Nov. 2012.*

9. *Kumaraswamy - "Persian Gulf 2012: India's Relations with the Region". Middle East Institute in New Delhi, 2012.*

10. *Ibid.*

11. *Othman, Dr. Shawky Abdul Qawi*

12. *Raja Mohan, C. - India's new role in the Indian Ocean", 2011.*

13. *Bhunia, Abhirup - " India will expand global geo-strategic clout by 2022". Aug., 2011.*

14. *India's crude import bill jumps 40% to $140bn in FY12, Business Line, June, 2012.*

15. *N.R. Bhanumurthy, Surjit Das, Sukanya Bose - " Oil Price shock, Pass-through policy and its impact on India".*

16. *Adith Charlie - " Decoding India's response to the Arab Spring". Journal of Turkish Weekly, Jan., 2013*

17. *Ramadan Tariq*

FDI in Retailing Sector: A Model of Inclusive Growth for India

Tara Ram
Lecturer,Govt.College,Suratgarh
Dr. Rajani Vashishtha
Lecturer,Dr. B.R.A. Govt. College, Sri Ganganagar

shodhshree@gmail.com

After removing the barriers to international trade India has entered the twelth plan period with an impressive record of economic growth. the economy accelerated with highest growth rate in tenth plan and India became one of the fastest growing economies in the world. Despite the high growth over the past two decades, concerns have been raised over the growth not being equally distributed Policy makers responded to these concerns arguing for inclusiveness in the eleventh plan in 2007. The 'inclusive growth' as a strategy of economic development received attention owing to a rising concern that the benefits of economic growth have not been equitably shared. Growth is inclusive when it creates economic opportunities along with ensuring equal access to them. Apart from addressing the issue of inequality, the inclusive growth may also make the poverty reduction efforts more effective by explicitly creating productive economic opportunities for the poor and vulnerable sections of the society.

FDI in retail may play an important role in promoting economic growth, raising a country's technological level, and creating new employment in developing countries. FDI in retail works as a means of integrating developing countries into the global market place and increasing the capital available for investment, thus leading to increased economic growth needed to reduce poverty of farmers by getting more price for their jeans and to develop infrastructure.

Future of FDI in Retail in India

Indian economy has been on a growth trajectory over the last two decades along with fast changing demographics, life style and surge in domestic consumption and consumerism. The retail industry in India, is growing at great space and is expected to grow many folds in near future. It provides immense growth opportunity. Only 6% of the total sales are being done by organized retailer. Currently Indian Retail sector have sales of around $500 billion. Retail sector is expected to have sales of $900 billion by 2014. It still far behind China, whose retail sales by 2014 is expected to cross $4500 billion mark. Purchasing power of Indian urban consumer is growing and branded merchandise in categories like Apparels, Cosmetics, Shoes, Watches,

ISSN 2277-5587

Beverages, Food and even Jewellery, are slowly becoming lifestyle products that are widely accepted by the urban Indian consumer.

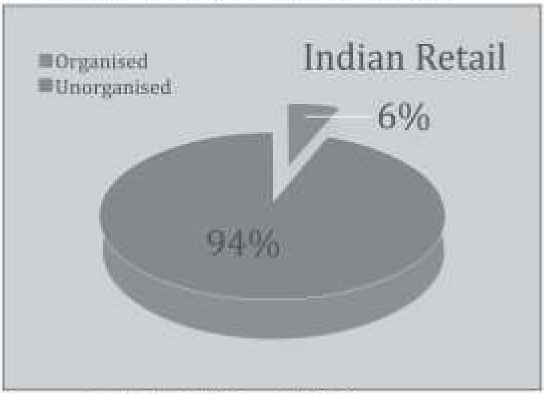

Source: India Retail Report 2013

From the chart it is clear that India has a large unorganized retail trade and there is ample scope of converting it to organized trade. Over the last two decades, Indian economy has witnessed significant rise of FDI flows as well as remarkable increase in growth rate with favourable consequences on employment, infrastructure development and business climate. Fast Growing Indian economy accompanied by growing domestic consumer markets has raised the growth of retail sector at a faster rate mostly in unorganized sector .Organized retail has huge potentiality which is still at a nascent stage, compared to other developing economies. Though the share of retail sector in total FDI flows is very low(0.02%), it has enormous growth potential in India particularly in agricultural sector considering the limitations of the present setup regarding infrastructure ,communication network in rural economy, efficient supply chain.

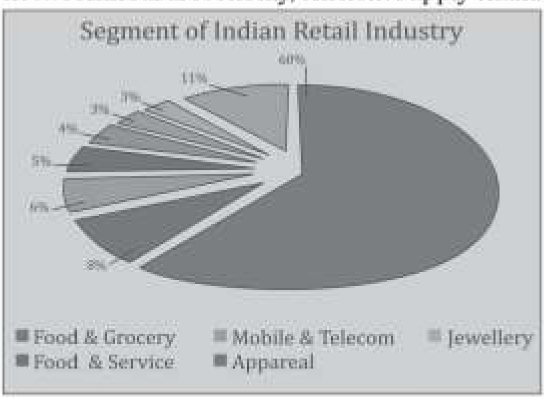

Source: India Retail Report 2013

The figure presents that Food and Grocery is the largest category within the retail sector with 60 per cent share followed by Apparel at 8 % and Mobile segment at 6 %. The Food and Grocery segment is going to have major beneficiary of FDI decision in multi brand retail and it the strongest side of Indian retail sector.

Strong Growth in Indian Retail Industry

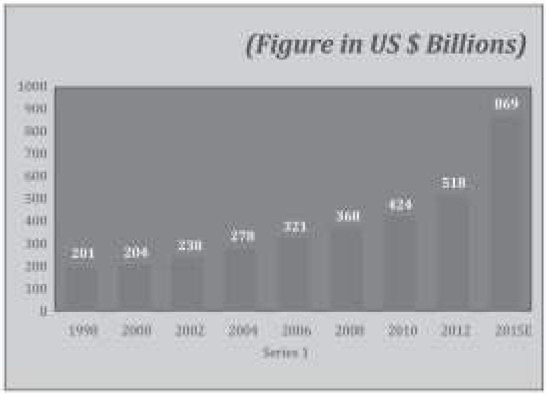

Source: India Retail Report 2013

The figure shows that the Indian retail industry has experienced growth of 10.6% between 2010 and 2012 and is expected to increase to $750-950 billion at CAGR of 18.6 % by 2015. The size of Retail industry was $ 424 billion in 2010 which increased to $ 518 in 2012 and is expected to move to $ 869 billion in 2015. *AT Kearney, a global management consulting firm,* rates India as the most attractive nation for retail investment. The study, presented in the Global Retail Development Index of 2009, is carried out annually for 30 emerging markets, and has rated India highest four times in the last five years. This report expresses even more optimism, and estimates that suggests that India's retail market is expected to be about US$535 billion by 2013, with around 10 per cent coming from organized retail.

Increasing Drivers of Indian Retail Sector

- Rising Income and increase in convergence of consumer taste and preferences.
- Dual family Income.
- Knowledge about different product through different medium like Internet, Television etc. Also knowledge about the latest trend and fashion.

- 47% of the India's population is under the age of 30. This category is driving the consumption story.
- Emergence of new retailing format.
- Availability of Credit Facilities.
- Retail sector is the most decentralized economic activity and providing employment in India after agriculture sector.
- According to AT Kearney, Global Retail Development Index, India is the fifth largest retail destination in the eyes of global investors.
- Income increasing of middle class.

Impact on Economic Activities

- Improve rural infrastructure. It would help build infrastructure and create a competitive market
- At least 10 million new jobs will be created in three years in the retail sector.
- Instead of job losses, FDI in retail is likely to be a massive boost to Indian job availability with improved working conditions. Over 80% of employment will be for people with minimum qualification. These jobs will offer better salaries and social securities than unorganized sector.
- This will help a salutatory impact on food inflation from efficiencies in supply chain. This is why food that perishes due to inadequate infrastructure will not be wasted.
- Sourcing of a minimum of 30% from Indian micro and small industry is a compulsion. This will create a multiplier effect for employment and income generation.
- There is a positive relation between increase in organized retail and increase in tax receipts of a country. The organized retail sector also facilitates the generation of significant tax revenues through the building of a sophisticated supply chain. Direct tax receipts are also increased in a organized sector as a large number of employees get salaries on a paper record.
- Increasing in tax receipts will solve the problem of fiscal deficit of the country.
- While accepting FDI in retail, the forex reserve will increase that will help to make rupee stable.
- Sourcing by global retailers from India will improve balance of payment.

Conclusively, it can be said that allowing healthy FDI in the retail sector will not only lead to a substantial surge in the country's GDP and overall economic development, but will also help to bring inclusive growth and integrating the Indian agricultural retail market with that of the global retail market in addition to providing higher profit margin to Indian farmers which the unorganized sector has undoubtedly failed to provide. In this paper we argue that the potential benefits from allowing large retailers to enter the Indian retail market may outweigh the costs. Evidence from the United States suggests that FDI in organized retail could help tackle inflation, particularly with wholesale prices. It is also expected that technical know-how from foreign firms, such as warehousing technologies and distribution systems, for example, will lend itself to improving the supply chain in India, especially for agricultural produce. Creating better linkages between demand and supply also has the potential to improve the price signals that farmers receive and by eliminating both waste and middlemen also increase the fraction of the final sales prices that is paid to farmers. Experience shows that India is benefited a lot by opening door to large scale investment in the other sectors like telecommunications and IT industries.

References

1. *ASA & Associates, A Brief Report on Retail Sector in India, ASA & Associates, August, 2012,Retrieved from* www.asa.in
2. *Bisen, Ankur , "Foreign Direct Investment (FDI) in Retail", Technopak Advisors Pvt Ltd., Oct., 2012..*
3. *Confederation of Indian Industry (CII), "The impact of FDI in Retail on SME Sector", A survey report, January, 2012.*
4. *Director (DIPP), "Foreign Direct Investment (FDI) in Multi- Brand Retail Trading", Discussion paper, The Department of Industrial Policy and*

Promotion, GOI, July 6, 2010.

5. "FDI Policy in Multi Brand Retail". *Ministry of Commerce, Government of India. 28 November 2011.*
6. *India Retail Report, 2013, published in Image Multimedia Pvt. Ltd., New Delhi.*
7. *India Retail Report, 2013, published in Image Multimedia Pvt. Ltd., New Delhi.*
8. *K Khatri, "The future prospects of Retail Industry", European Journal of Marketing, 41(11)2007*
9. *"Major Benefits of FDI in Retail". The Reformist India. 30 November 2011.*

A Study of Attitude of B.Ed Students Towards Information And Communication Technology

Dr. Parsanjeet Kumar
Principal,Mangalmay Institutes, Greater Noida (U.P)
Ms. Geeta Chaudhary
Research Scholar, Mewar University, Gangrar, Chittorgarh

shodhshree@gmail.com

The teacher's force of tomorrow will need an ART i.e. Alliance, Readiness and Teamwork, to learn more and renew knowledge at every stage of life with the spirit of solidarity and willingness. In this scenario, ICT holds its capability to gradually transform and remould education in India. In India, during the post independence era in-depth reviews of educational policies and practices have been undertaken at various levels and stages. The policies were re-formulated based upon analysis of the existing system, availability of the expertise, resources, possibility of optimum utilization of the same to meet the evolving learning needs of the learners and people and to face the new challenges emerging in a changing world.

Thus education has responded in varying degrees to new methods, approaches, techniques to enrich the teaching-learning process with the help of educational technology and now the present-day information and communication technology (ICT).

The National Policy on Education of 1986 and the program of action documents brought out in 1986 and 1992 highlighted the importance of information technology in the context of education. Information technology was realized as the key factor in the context of globalization for localizing the globe. The potentiality of ICT is such that it can bring forth the entire globe with just a click of the young learner.

- The use of ICT as a knowledge technology and a natural delivery method for teaching and training
- The spin-off of familiarity with ICT as it is used as a delivery device
- Increasing self-initiation, self-motivation and self-reliance among students who are even prepared for self-assessment
- Shift from 'content learning' to 'learning how to learn'
- New distance education possibilities
- New course delivery methods
- Expertise from around the world tapped economically and effectively

Working on same lines, the researcher has tried to find out the attitude of B. Ed students towards ICT at I.P.E.M College, Ghaziabad (U.P).

Need of The Study

The face of classroom is changing; the teacher should prepare to keep up with the technology utility in the classroom. ICT is not only an essential tool for the teachers in their day to day work, but it also offers them opportunities for their own professional development. In conventional teaching, the most of the time consumed for input output and less time left for the process. But, in teaching with ICT, The input/output time is reduced and process time is increased.

Objectives of The Study

- To determine if there is any significant difference in the attitude of male and female B.Ed students towards information and communication technology.
- To determine if there is any significant difference in the attitude of arts B.Ed students and science B.Ed students.
- To determine if there is any significant difference in the attitude of male science B.Ed students and female science B.Ed students.
- To determine if there is any significant difference in the attitude of male arts B.Ed students and female Arts B.Ed students.
- To determine if there is any significant difference in the attitude of female arts B.Ed students and female Science B.Ed students.
- To determine if there is any significant difference in the attitude of male arts B.Ed students and male science arts B.Ed students.

Hypothesis

- There is no significant difference in the attitude of male and female B.Ed students towards ICT.
- There is no significant difference in the attitude of arts B.Ed students and science B.Ed students towards ICT.
- There is no significant difference in the attitude of male science B.Ed students and female science B.ED students towards ICT.
- There is no significant difference in the attitude of male arts B.Ed students and female arts B.Ed students towards ICT..
- There is no significant difference in the attitude of female arts B.Ed students and female science B.Ed students towards ICT..
- There is no significant difference in the attitude of male arts B.Ed students and male science arts B.Ed students towards ICT.

Tools Used

Self Constructed Attitude scale has been used for carrying out this research work.

Sample

In this study researcher has used random sampling technique. In this study 100 students of B.Ed course of I.P.E.M College, Ghaziabad served as sample.

Methodology

Descriptive and statistical method has been used in the research. Descriptive study are designed and conducted to obtain the information about the current status of the phenomenon or about the phenomenon of the immediate past.

Statistical Techniques

For the analysis of data in the present study following statistically techniques has been employed. **Mean, Standard deviation, t-test.**

Data Analysis

The result obtained after analysing the data. Statistical tool like mean, standard Deviation, t-test were employed. Data were divided into various parts on the basis of sex, stream obtained etc.

Table-1

Showing the Mean scores of Attitude of Male and Female B.Ed student towards ICT.

B.ED STUDENT	N	M	SD	T.Value
Male	57	99.56	7.37	1.63
Female	43	104.11	12.01	

The difference found between attitude towards ICT in the Male and Female B.Ed student was not

significant (T=1.63) at 5% confidence level. Hence null hypothesis that "There is no significant difference between the attitude of Male B.Ed student and Female B.Ed student towards Information and Communication Technology is accepted."

Table-2

Showing the Mean scores of Attitude of Arts B.Ed student and Science B.Ed student towards ICT.

B.ED STUDENT	N	M	SD	T.Value
Male	66	100.67	7.77	1.33
Female	34	99.97	6.12	

The difference found between attitude towards ICT in the Arts and Science B.Ed student was not significant(T=1.33) at 5% confidence level. Hence null hypothesis that "There is no significant difference between the attitude of Male B.Ed student and Female B.Ed student towards Information and Communication Technology.

Table-3

Showing the Mean scores of Attitude of Male Science B.Ed student and Female Science B.Ed student toward ICT.

B.ED STUDENT	N	M	SD	T.Value
Male	24	102.5	8.65	.65
Female	10	104.9	9.66	

The difference found between attitude towards ICT in the Male Science B.Ed Student and Female Science B.Ed student was not significant(T=0.65) at 5% confidence level. Hence null hypothesis that "There is no significant difference between the attitude of Male Science B.Ed student and Female Science B.Ed student towards Information and Communication Technology is rejected.

Table-4

Showing the Mean scores of Attitude of Male Arts B.Ed student and Female Arts B.Ed student towards ICT.

B.ED STUDENT	N	M	SD	T.Value
Male	33	97.42	6.81	2.00
Female	33	103.88	10.6	

The difference found between attitude towards ICT in the Male and Female B.Ed student was significant(T=2.00) at 5% confidence level. Hence null hypothesis that "There is no significant difference between the attitude of Male Arts B.Ed student and Female Arts B.Ed student towards Information and Communication Technology is rejected.

Table-5

Showing the Mean scores of Attitude of Female Arts B.Ed student and Female Science B.Ed student towards ICT.

B.ED STUDENT	N	M	SD	T.Value
Male	33	103.88	10.6	.172
Female	10	104.9	9.66	

The difference found between attitude towards ICT in the Male Arts B.Ed student and Arts B.Ed student was not significant(T=.172) at 5% confidence level. Hence null hypothesis that "There is no significant difference between the attitude of Male B.Ed student and Female B.Ed student towards Information and Communication Technology is accepted."

Table-6

Showing the Mean scores of Attitude of Male Arts B.Ed student and Male Science B.Ed student towards ICT.

B.ED STUDENT	N	M	SD	T.Value
Male	33	97.42	6.81	2.00
Female	24	102.5	8.65	

The difference found between attitude towards ICT in the Male Arts B.Ed students and Male Science B.Ed student was significant (T=2.00) at 5% confidence level. Hence null hypothesis that "There is no significant difference between the attitude of Male Arts B.Ed student and Female Arts B.Ed student towards Information and Communication Technology is rejected."

Findings and conclusion

- No significant difference was found between attitude of male and female B.Ed students towards ICT.
- No significant difference was found between attitude of arts B.Ed students and science B.Ed students towards ICT.
- No significant difference was found between attitude of male science B.Ed students and

ISSN 2277-5587

female science B.ED students towards ICT.

- Significant difference was found between attitude of male arts B.Ed students and female arts B.Ed students towards ICT. .
- No significant difference was found between attitude of female arts B.Ed students and female science B.Ed students towards ICT.
- Significant difference was found between attitude of male arts B.Ed students and male science arts B.Ed students towardsICT.

Educational Implications

- ICT as a subject must be made compulsory to the B.Ed students.
- The knowledge of students is highly related with knowledge of teachers so with the increase positive attitude towards ICT will be benefitted.
- To increase positive attitude of B.Ed students towards ICT, seminar and workshops should be organized.
- Computer assisted learning material needs to be developed on various computer-generic topics. This material can be utilized for individualised instruction. Teachers can make use of the computer software through LCD projectors and media projectors.
- The effectiveness of mass media, such as, radio, television and Internet in education is established. There is a need to integrate ER,ETV and Internet in education at all levels of education. All these programmes should be relevant, observe quality and properly managed.

Refrences

1. *Agarwal, J.C. (2005) : Elements of Educational Technology and Management. Vinod Pustak Mandir, Agra.*
2. *Agarwal,S.C and Jaywalk Vijay (2006) : Teacher Empowerment, Indian Institute of educational research, March 2006*
3. *Best, J.W. (2004) Research in Education : Prentice hall India Pvt.Ltd. New Delhi.*
4. *Chandra Kandan, K.Palaniswamy, S. (Ed) (2000) : Advances in Communication Technology.N.D.Indian Publishers.*
5. *Grett, H.E. (2006) : Statistic in psychology and education. Kalyani Publisher, Ludhiana (Eleventh Ed.)*
6. *Gupta, S.P. (2006) : Adhunik Maapan evam Mulyankan. Sharda Pustak Bhavan. Allahabad.*
7. *Kapil, H.K. (2005) : Elements of Statistic in Social Sciences, Vinod Pustak Mandir, Agra.*
8. *Kaushik, V.K. and Prasad, J. (2005) : Advanced Education Technology. Kanishka Publication. New Delhi.*
9. *Kulshetra, S.P. (2007) : Fundamentals of Educational Technology. Vinod Pustak Mandir, Agra.*
10. *Mishra, B.K. and Mohanty, R.A. (2003) : Trends and Issues in Indian Education. Surya Publication Meerut.*
11. *Rai, P.N. (2005) : Anusandhan Parichaya, Laxmi Narayan Agarwal. Agra.*
12. *Sharma, R.A. (2007) : Advance Educational Technology. R.Lall .Book Depot,Meerut.*

Cost Controlling Through Management Information System in Cement Industry of India: An Exploration

Mohd. Sahid
Research Scholar, Jai Narain Vyas University,Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Indian economy is developing in a rapid rate. After a long period of massive development in infrastructure based Indian economy cement industry of India has developed on same rate. That growth of cement industry is due to higher demand of market and infrastructure construction in India. To identify the needs of market and to meet with expectations of customers cement industry is focusing on the MIS. The MIS is providing appropriate information to industry for development of product and adopts proper decision making in Indian cement industry. There is a proper attentions on the cement industry is requirement for us because we are standing at third position in consumption of cement in world, our average consumption is 125 kg per year (Kumar, John, & Senith, 2013). Our consumption of cement is increasing with time it increases and our cement industry producing cent percent with its installed capacity and many companies has announced expansion in their capacity and has installed new machinery and technology to meet with market demand. Increasing demand of cement product is an opportunity for cement industry to earn more on its investment and production strategies. Deepak (2007) cement industry made a massive profit during the construction boom in the fiscal year 2006-07.

Increasing demand of cement product has increases scope of MIS in cement industry to convene with customer expectations. In present time, Indian cement companies are using MIS for the identification of customer needs in quantitative way rather than qualitative mode. Cement producer of India focusing in timely production of cement to encash opportunities of market with meeting time of demand. Cost control or minimization in cost is not any criteria for the managers of cement industry they are mere selling it on competitive market prices, which are higher than global prices. Without focus on pricing and cost cement industry is not utilize its assets in proper way and not creating any core value or asset to compete competitor. In time of technology, Indian cement industry needs more attentions on the research and development with MIS. In present time, Indian cement industry is focusing on sales of cement products without focusing on qualitative standards or pricing advantages. Cement companies of India does not want to enter in the global market due to lack of qualitative advantages and over

ISSN 2277-5587

market demand of cement products in Indian market.

Management information system: Concept and Provisions

Management information system is consisting of three words, which are management, information and system. Management is uses for managing thing, information uses for proper communication and system is stand for arrangement of things (Gabriel & Obara, 2013). It provides all information that required for management of company or firm in a proper way to make decisions in time to reduce cost of its products. Management information system is providing information whereas it helps in communicate with employees and outer world also. Through MIS, a firm can manage its whole system of operation, production and marketing in each aspects of management. Management of firms make a correct management information system in a firm for better planning, organizing, staffing, directing and controlling his personnel, customers and strategies regarding production and marketing of his products. A firm can use technology and technological equipments for better utilization of management information system.

MIS benefits organization in many ways. It helps in effective and efficient coordination; reliable referencing; access to reliable data and information for documentations; more productive labor; improve organizational performance and contact department with world in less time period (Reddy, Shrinivasu, Rikkula, & S., 2009). It is providing and receiving information in less time that helps in timely decision making for deployment of organizational resources. It is works as foundation of decision-making system, which helps organization to take timely decisions as well as helps in communicate it in required or specific time for its application in organization well-being. It frames a boundary for information that helps organization to take decisions, operation of organization and in its functioning.

Simply MIS is a process of collection of data, analyzing, finds result and apply it in required field. These improve the organization strategies and business plans to achieve organizational goals. On use of these data, a manager of organization or management of organization can make a better planning, organizing, staffing, directing and controlling. Through results and survey of data, organization set its standards to achieve some results. Use of MIS increases in removal of shortcomings that facing by organization in its operation. Managers of organizations realize their potentials on use of data and technology of MIS. It satisfies the diverse needs or organization through query system, modeling system, analyzing system and decision-making support system with strategic planning, operational planning and management control of organization. Furthermore, it helps management of organization to identify needs of consumers and produce goods and services with accordance of their needs.

Cost Control: Call for Qualitative Pricing of Products

Every organization, which serves its consumers, has produce or marketing meets with many types of costs. These costs are combination of many facts viz. real expenses of labor, material, fare and other overheads of factory, office and marketing expenses of company. It is that minimum expenses, which bear by an industry or organization in its operation and to survive in market. Cost is representing the actual expenses on operation and marketing of firm. External and internal environment of firm both play role in it. A metric is total of result of process (Sullivan, Steven, & Sheffrin, 2003). It involves monetary value of all elements of production of firm viz. supplier, labor and machinery and asset depreciation. In addition it represent the cost of assets as well as the efficiency of it and it is a monetary and calculated expenses of firm to priced there goods and services for the rewards of industry scarification.

Today, industries facing tough competition in Indian market due to liberalization and globalization. A minor change in cost become the cause of its penetration in a new market or exit from the existing market. In global competition, a single measurement of firm suitability in Indian market is only its cost and price. In this scenario, every organization wants to minimize its cost to

get advantages over the competitor to gain the market share and penetrate in new market. Lower pricing of competitive goods and services attract more customers to utilize their real income in many commodities to satisfying their needs from consumption of more units or many products. Price competition gives more importance to cost of industrial and firm product. Interest of firm has lean towards to reduce the cost of its products to meet with its goals by offering better or reasonable quality goods in lower cost. Whereas, lower cost of quality goods attract consumer to buy for satisfying their needs and it also enhance the real income of consumers. Lower pricing goods, service need not advertising, and it got mouth of words for publicity in its market.

Cost control is a technique in which producer; marketer and service provider maintain and minimize cost of its product and offer on reasonable cost. Under this process producer focus on wastage of material and control it, marketer focus on useless advertisement, free sampling and strategies to reduce cost of additional output. Service provider is focus on the best suitable methods of services providing which can provide services to consumer on less cost. Overall, cost controlling is a process, which focuses on cutting the useless charges that included in producing, marketing and service offering.

Cost Control in Cement Industries of India: Emerging Needs of Infrastructure

Cement Industry of India is world's second largest industry for its manufacturing and production. Pricing of cement industry was free in year 1989 and de-licensed in 1991. It is consist of 190 large cement plants with capacity of 324.5 million tonnes and more than 350 mini industries with capacity of 11.1 tonnes per annum. Some of large plants in India owned and controlled by central and state government of states of Rajasthan. National Council for Cement and Building Material (NCCBM) is an autonomous apex research and development organization under the administrative control of this department.

Cement is not only content of present construction story but it is the base and four pillars of construction story and industry, without it we cannot imagine for construction of building, roads and bridges. Infrastructure is outcome of cement inputs; that based on quality of cement. Today, we need infrastructure for our satisfaction, easiness in life, comfort and get to the bottom of our problems of life regarding all aspects of qualitative and living standards of our life. Comfort of a common person cannot achieve without infrastructure. Demand of comfort increases need of cement in our life. We cannot live without buying cement or without dependency on it. Therefore, there is a need of minimizing its cost to provide a good, better and excelling infrastructure to our country and a comfort life to our citizens. Importance of cement industry and its products can be measure with its market increment that increases 20% per year over last year in Indian market (Udugu & Khare, 2014).

In cement industry, private players are playing role. Pricing of cement products fixes by them on basis of their cost of production and marketing. Sometimes, to make a distinction in competition these companies can use policy for similar pricing or a common person of nation does not identify cartel in pricing of cement industry. But, as far as studies has done in cement industry no one reveal that companies of cement industry uses policy of cartel in their pricing strategies. These companies are openly, playing in competitive market to gain competitive advantage of market. However, Reddy & Rajesh (2013) revealed in his study that Indian cement industries are using traditional technology of production and it is not modernize with comparison of foreign cement companies. Less modernization in industry is not a good sign to it.

Literature Review

MIS is the backbone of control mechanism of any industry that define roles and responsibility of managers and all operating parameters of firm, regular internal audit and check enhance firm's efficiency. Management Information system is playing role in an industry across all levels of production to tune with all levels of production for reduction cost of manufacturing. MIS provide information regarding supply of energy, labor,

ISSN 2277-5587

coal and lime stones for production of cement and it also give information regarding cost of all these to take decision for efficient and effective decision.

Many studies have been show importance of information system in different industries. Sunil Kumar (2008) find in his study industry profitability that profitability of industry can be maximizes by putting benchmarking in the start of the year that benchmarking reduces the cost of industry and it gives chance to industry to utilize its cent percent efforts and efficiency. Irani, Sharif, & Love (2007) find in study of manufacturing sector that knowledge of producer cutting the cost of products and knowledge and information system evaluate manufacturing techniques and change those techniques, which are not beneficial for the industry. (Olugbode, Elbeltagi, Simmons, & Biss, 2008) evaluate performance system of coal companies on basis of information system and find that companies that uses proper management of information system adopt new technology on place of old technology with need and also find that need of market is identified with effective use of Management Information System.

Importance of information system is as important for the managers as well as important for employees also. In decision-making information available to the managers of industry is very important to analyze the conditions and take decisions (Billo, 1987). In relevance of organization, know its Strengths, weakness, opportunities and Threats it is playing important role. Information system provides a flow of information to the managers as flow analysis, line analysis, group analysis and tooling analysis (Agarwal, 1994). Information system is playing vital role for every individual of organization on same hand it is important for each analysis of organization. It provides information to related parties in time and on reasonable and affordable cost (Bogucki, 1995). Timely, decision taking own reduce cost and increases profitability of organization. Studies of Information System from many years have increases the capability of organization with functioning requirements (Lucas, 1981).

Information system is providing information to management to take decision on time. It gives information for the better handling of organization by better functioning from previous facts analysis basis. It gives a light to the studies of previous happenings and takes decision on that basis previous strength will repeated and weakness will be replace with a powerful planning.

Objectives of Study

Cement industry of India is second largest industry of world and we assume that our poor infrastructure and population-increasing factor enhance its demand. Roads, bridges, infrastructural constructions of govt. and houses constructions of common people demand are increasing day by day. Cement industry is the key factor of all constructions and building of infrastructure of nation. Lower pricing of cement can give it a push whereas it has supremacy to enhance to develop it. Cost of industry can lower the price of cement. Pricing of cement is not controlling or regulating by any statuary body of govt. that also increases the scope for research to minimize it with the application of most favorable strategies and tools of cost cutting.

Moreover, it becomes more important for us because India have more scope of international business and export of cement due to ample availability of cement producing inputs. Cement industry can play a vital role in our economy to provide employment and housing facilities to people of nation. The present study of cement industry having following objectives:-

- To understand the roles of MIS in cement industry of India.
- To indentify benefits/ advantages of MIS in cement industry of India.
- To suggest some remedies to cement industry for lowering its cost and take advantages of qualitative products.

Role of MIS for Cost Control in Cement Industry of India

World's second largest industry of cement is basically, working with outdated and traditional technologies. Application of information system is less and unsatisfactory in Indian manufacturing and cement industry, it is not adopting

technologies and system with need of global requirements (Uyar, 2010). Quality of cement is not questionable in India always customers of cement industry buy product without comparisons of pricing or quality with any standards or measurements. No one is in Indian market offering best quality of products in cement industry that seen with shorter range of products of each company. Cement companies of India rely on sales and dealers activity rather than advertisements and publicity over competitor products quality. Mostly, cement dealers in India offer products of two-three companies under a roof, which shows that cement companies products insufficiency and lower range of products to meet with needs of customer by a single company. However, in present time, cement industry of India start to focus on cement quality with its pricing. A number of companies' uses promotional strategy on basis of price and quality both like *Bangur Cement "Sasta Nahi Sabse Accha", Binani cement "Sadiyo ka cement* and *J.K. Cement "Vishwas Hai, Isme Kuch Khas Hai.* All companies shows in the quality of products but without any competition with competitor products or without telling how is qualitative or how much qualitative or selling advantages over competitor's products.

Cement companies of India have not any advantages of pricing, advertisement or competitors lacking features of products due to lower application of Information System sufficiency. To grab market enhance their importance in cement market there is huge scope for Management Information System. Measurement and standards of cement enhance quality and specialization in products. Minimization of pricing and cost in cement is directly applicable with a proper application and specialization. To enhance quality and lowering the cost for penetrate in Indian market on lower pricing it needs following strategies on use of MIS.

Cost reduction is very helpful for the Indian cement industry to grow in global market and take advantages over the global competition. Cost is playing crucial role in the quality and market share of cement industry. Cost of cement industry can be reducing with proper application of previous knowledge and previous experiences and these can be collecting through proper MIS in industry. With proper application of MIS, industry can reduce its cost whereas it can focus on its products quality and can produce higher quality product with use of previous knowledge and creating specialization in its functioning. Higher quality and less cost in production lead industry towards the competitive advantages to penetration in new market of cement.

Table – 1

Advantage of MIS in Cement Industry of India

Features	Advantages
Cost	i. Understand contents of cost ii. Minimize wastage and overuse cost contents. iii. Remove over costing with removal of useless contents. iv. Improve process of production and marketing of products.
Quality	i. Setting of standards ii. Fix minimum standards of quality iii. Improve quality of products iv. Label it on packaging for customer quality awareness
Specialization	i. Division of work ii. Training of labor iii. Fixing of recruitment and selection procedure iv. Education regarding production and quality of cement products.
Competitive advantages	i. Enhance pricing and quality competition in Indian market ii. Advantages of core benefits of firm iii. Qualitative production of cement industry iv. Select bet procedure of production
Penetration	i. Higher range of products in existing market ii. Entry in new market by improve quality of products iii. Encashment of opportunities by lower pricing iv. Reduction in cost and improved quality with minimum standards

MIS provide necessary information to management of cement industry for timely production. On timely production, it can reduce cost by making it free from the overstocking and less demand of its products and can reduce cost of warehouses and stocking of cement. Lower costing of cement product lead it in a new market where it can penetrate its products by using technology and qualitative product that meet with requirements of market. The MIS can reduce the gap between market expectation of customers and actual products of cement industry. In present era of technology, organization can utilizes benefits of technological advantages in industry.

Suggestions and Remedies

Cement industry of India is playing an important role in improvement of infrastructure of nation. Better quality of cement products can provide qualitative infrastructure to nation that can help economy to develop in present scenario. Better quality of cement products can give Excellency to infrastructure therefore; there is need of govt. attentions on functioning and quality of cement products. Cement industry also needed to focus on customers' expectations by using MIS to minimize gap of marketing. Cement industry of India need proper guidelines to reduce its cost whereas Govt. of India needs a proper policy for the cement industry regarding minimum standards of quality and maximum price. It is requiring to take actions against those companies which are providing lower quality of cement on more than market prices to customer or companies which involve in stocking and unfair practices of market. To use competitive advantages of market companies should focus on proper use and application of MIS policy.

Cement industry is providing basic need products to customers of Indian market and households of India. It needs to offer product on ethical prices therefore, there is a need of favorable advertisement for ethical practices in cement industry. Cement companies of India should focus on market analysis to adopt proper policy for the implementation of perfect policy regarding customers' needs and expectations. Further, there is a need of to change regulatory framework of cement industry regarding costing and quality measurement to deal with customers.

Conclusion

Cement industry is a basic need to Indian growing economy for development of supporting infrastructure facility. Indian cement industry is free for pricing and quality measurements. There are no perfect measurements for the quality and it has not any standard regarding production. There is less educational awareness in customers and personal of cement industry regarding its costing, pricing and quality. Cement industry is attracting customers in market on its quality without revealing any standards of it. To grab the market and development of infrastructure it needs a perfect policy of MIS. Further, a perfect policy of MIS can improve quality of cement products and it can help to reduce cost by lower wasting and using proper technology.

On creasing uses of MIS cement industry of India can reduce its cost by providing appropriate information regarding market needs and customers expectations. It is requiring collecting data from market time to time and analysis these with requirement of time. Management and managers of cement industry should take decisions on basis of MIS to make it more transparent and market relative.

References

1. *Agarwal, A., Kamrani, H., & Parsaei. (1994). An automated coding and classification system with supporting database for effective design of manufacturing systems. Journal of Intelligent Manufacturing, 5, 235-249.*

2. *Billo, R. E., Rucker, R., & Shunck, D. L. (1987). Integration of a group technology classification and coding system with an engineering database. Journal of Manufacturing Systems, 6(1), 37-45.*

3. *Bogucki, D. N. (1995). Capturing Flexibility of INformation Technology Infrastructure: A Study of Resource Characterstics and Measures. Journal of Management Information System, 12(2), 37-57.*

4. *Deepak, T. (2007). Changing Growth Dynamic. The Hindu Survey Of Indian Industry.*

5. *Gabriel, & Obara. (2013). Management Information System and Corporate Decision-Making : Literature Review. The International Journal Of Management, 2(3), 78-83. Retrieved from www.theijm.com*

6. *Irani, Z., Sharif, A., & Love, P. (2007). Knowledge*

mapping for information systems evaluation in manufacturing. International Journal of Production Research, 45, 11.

7. Kumar, P., John, S. F., & Senith, S. (2013). A Study on Progress of Indian Cement Industry. British Journal of Marketing Studies, 1(1), 1-15.

8. Kumar, S. (2008). An Analysis of Efficiency Profitability Relationship in Indian Public Sector banks. Global Business Review, 9(1), 115-129.

9. Lucas, H. (1981). Implementation: The Key to Sucessful Information System. New York: Columbia University Press.

10. Olugbode, M., Elbeltagi, I., Simmons, M., & Biss, T. (2008). The Effective of Information Systems on Firm Performance and Profitability Using a Case Study Approach. The Electronic Journal Information System Evaluation, 11(1), 35-40.

11. Reddy, G. S., Shrinivasu, R., Rikkula, S. R., & S., R. V. (2009). Management Information System to Help Managers for Providing Decision Making in an Organization. International Journal of Reviews in Computing, 1-6.

12. Reddy, T. N., & Rajesh, M. (2013). Analysis of Indian Cement Industry through Selected Traditional And Modern Measures. IJSR - International Journal of Scientific Research, 2(7), 247-248.

13. Sullivan, A., Steven, M., & Sheffrin. (2003). Economics: Principles in Action. New Jersey: Pearson Prentice Hall.

14. Udugu, A. K., & Khare, A. (2014). Automation of Cement Industry. IJREAT International Journal of Research in Engineering & Advanced Technology, 1(6), 1-5.

15. Uyar, A. (2010). Cost and Management Accounting Practices: A Survey of Manufacturing Companies. Eurasian Journal of Business and Economics, 3(6), 113-125.

Consumer Protection: Problems and Prospects

Dr. Shalini Chaturvedi
Assistant Professor, Kanoria PG Mahavidyalaya, Jaipur

shodhshree@gmail.com

The consumer movement in India is as old as trade and commerce. In Kautilya's *Arthashastra*, there are references to the concept of consumer protection against exploitation by the trade and retailer with respect to quality, short weight, measurement and adulteration of goods. Yet until the late 1970s, there was no systematic movement in the country for safeguarding the interest of consumers. But now it is widely acknowledged that the level of consumer awareness and protection is a true indicator of development of the country and progressiveness of civil society. The main reason for this is the rapidly increasing variety of goods and services which modern technology has made available. In addition, the growing size and complexity of production and distribution systems, the high level of sophistication in marketing and selling practices and in advertising and other forms of promotion, mass marketing methods and consumers increased mobility resulting in reduction of personal interaction between buyers and sellers, have contributed to the increased need for consumer protection.

India is today one of the six fastest growing economies of the world. The country ranked fourth in terms of Purchasing Power Parity (PPP) . Revolution in the field of manufactured goods coupled with opening up the economy to the globalised market forces, has led to the influx of various consumer goods into the Indian market to cater to the needs of consumers and a variety of services such as banking, financing, insurance, transport, housing construction, entertainment are being made available to consumers. At the same time, the consumers are also assured of adulterated food, lack of clean and potable drinking water, primary health care and adequate and well constructed housing and minimum clothing. We can trace the Indian tradition of protecting consumer interest from its historical past. We can find the references of consumer protection against exploitation by the trade and industry, short weighment and measures, adulteration and punishment for these offences in Kautilya's Arthashastra. Prior to independence, the main laws under which the consumer interests were considered were the Indian Penal Code, Agriculture Production, Grading and Marketing Act, 1937, Drugs and Cosmetics Act, 1940. Consumer Rights and their Effectiveness in India Eight rights are incorporated in the United Nations Guidelines for

Consumer Protection . These are: right to safety, right to information, right to choice, right to be heard, right to redress, right to education, right to basic needs, and right to healthy environment. The Government of India also included the above rights in its Twenty-Point Programme. The Consumer Rights No. 1 to 6 is also enshrined in the Consumer Protection Act, 1986.

Consumer Protection

We all are consumers in one form or another. But in the present socio - economic scenario we find that the consumer is a victim of many unfair and unethical tactics adopted in the market place. The untrained consumer is no match for the businessman marketing goods and services on an organized basis and by trained professionals. He is very often cheated in the quality, quantity and price of the goods or services. The consumer who was once the 'king of the market' has become the victim of it. The modern economic industrial and social developments have made the notion of 'freedom of contract' largely a matter of fiction and an empty slogan so far as many consumers are concerned. With globalization and development in the International Trade and Commerce there has been substantial increase of business and trade, which resulted in a variety of consumer goods and services to cater to the needs of the consumers. In recent years, there has been a greater public concern over Postmodern Openings the consumer protection issues all over the world. Taking into account the interest and needs of the consumers in all countries, particularly those in developing countries, the consumer protection measures should essentially be concerned with – the protection from hazards to health and safety; the promotion and protection of economic interests; access to adequate information; control on misleading advertisements and deceptive representation; consumer education and effective consumer redress.

The consumer deserves to get what he pays for in real quantity and true quality. In every society, consumer remains the centre of gravity of all business and industrial activity. He needs protection from the manufacturer, producer, supplier, wholesaler and retailer. In the early law, the doctrine of caveat emptor was the philosophy of the law of sales. Today it has been replaced by "let the seller beware". As a result of this change of legal philosophy, business is heavily regulated on behalf of the consuming public. Many corporations today have a department of consumer affairs. Product liability suits are already a part of tort law. But the situation in India is altogether different. The consumers are confronted invariably with the non- availability of effective and speedy machinery for redressal of their grievances in the marketplace. It is imperative to consider consumers' problems and their scope and nature of grievances. However some remedies can be suggested which the consumers confront various kinds of problems in the market place which have serious repercussions on their self-respect, self image and also on their decision making processes. The consumer often experience in the market place frustration and sometimes humiliation too, due to the arrogant behavior of the sellers, which is the product of the prevailing scarcity conditions of articles and cancerous tendency of hoarding in India. The consumer's problems are created in the market place from range of frauds and deception to outright rejection of their just protest and right to information about goods. Whatever the remedies which are available in India for the protection of the consumers in the marketplace are by no means sufficient and the consumer find themselves helpless due to ineffective legal machinery for redressal of grievances. If a consumer experiences that he has been cheated owing to the high pressure sales pitch or by scarcity of commodities or reductive advertisement techniques, or any other commercial means of exploitation, he may still remain passive suffer in spite of knowing that he has not received the value of his money for the commodity he paid. So to say, the consumer is powerless to assert his rights and to compel a solution of his grievances in the marketplace.

There is no doubt that the legal system in India provides some remedies for the consumers' problems. Equality before the law is not only a constitutional right but it is an essential ingredient for making a state into just and welfare state. A just legal system has to operate in the defence of their citizens and also ultimately for

ISSN 2277-5587

the establishment of an egalitarian society. The position today that except for law suit in which substantial amounts of money are involved, the law courts have not proved to be an effective or even feasible mechanism geared to serve the needs of harassed and troubled consumers.

The Background of the 1993 Amendments On July 24, 1991 the Government Of India in its Statement on New Industrial Policy observed - with the growing complexity of industrial structure and the need for achieving economies of scale for ensuring higher productivity and competitive advantage in the international market, the interference of the government through the Monopolies and Restrictive Trade Practices Act in investment decision of large companies has become deleterious in its effects of Indian Industrial growth. The pre entry scrutiny of investment decisions by so called monopolies and restrictive trade practices companies will no longer be required. Instead, emphasis will be on controlling and regulating monopolistic, restrictive and unfair trade practices rather than making it necessary for the monopoly houses to obtain prior approval of the central government for expansion, establishment of new undertakings, merger, amalgamation and take over and appointment of certain directors. The thrust of the policy will be more on controlling unfair or restrictive business practices. The newly empowered MRTP Commission will be encouraged to require investigation suo moto or on complaints received from individuals' consumers or classes of consumers.

Despite these positive improvements, the Act failed to fulfill the expectations of consumer activists as it ignored the important recommendation that some services like health services in hospitals run by government and local bodies and the services provided on mandatory. Postmodern Openings basis local bodies should be brought within the purview of the act as they affect the lives of the citizens.

Although the Consumer Dispute Redressal Agencies established under the Consumer Protection Act, 1986 have to a considerable extent, served the purpose for which they were created, the disposal of cases has not been fast enough. Several bottlenecks and shortcomings have also come to light in the implementations of various provisions of the act. With the view to achieving quicker disposal of consumer complaints by the consumer disputes redressal agencies, securing effective implementation of their orders, widening the scope of some of the provisions of the act to make it more effective, removing various lacunae in the act and streamlining the procedure, several amendments have been made in the act by the Consumer Protection Act 2002. Act No.62 of 2002 seeks to substitute section 25 to provide for attachment by the District Forums, State Commission or National Commission, as the case may be, of the property of the person of a person not complying with an interim order.

It also seeks to provide that on application from any person entitled to receive any amount from another person under an order made by a District Forum, State Commission and National Commission which remains due, the District Forum, State Commission and National Commission as the case may be, may issue a certificate to the collector for recovery of the amount as arrears of land revenue. These usually with any new enactment in India, one applauds the efforts of the minds that enacted this legislation. It is an effort towards efficiency and does away with many lacunae in the law. It also leaves ample scope for the courts to interpret and add meaning. What worrie us is the enforcement.

Future Prospects

The Consumer Protection Act has aroused enormous expectation amongst the masses for redressal of their grievances. These expectations can be realised only when the redressal machinery laid down in the Act is made functional. However, the place of establishment of redressal machinery under the Act has been slow. The State Governments did not evince sufficient interest in establishing District Forums and the State Commissions. In fact, the District Forum is the fulcrum of the entire Consumer Disputes Redressal Machinery because a large number of cases are to be covered within the jurisdiction for the District forum. The appeals against the orders of the District Forum are to go to the State Commission and against the orders of the State Commission to the National Commission.

The working of the State Commissions and the National Commission will remain diluted unless the District Forums are set up in all the Districts as envisaged in the Act. These delays and defaults on the part of the State Government brought to the attention of the Supreme Court in a Common Cause v. Union of India, where the Court issued directions that all States and Union Territories to constitute all the District Forums and the State Commissions within six weeks. It appears that the State Government has paid scant regard to this statutory obligation. This is the most unfortunate state of affairs, for they betrayed total lack of concern for the constitution and functioning of the District Forums and State Commissions. There is no reason as to why the State Government could not establish necessary redressal machinery in accordance with the requirements of the Act. Such delay is highly undesirable and inexplicable and may shake the confidence of the public in such legislation.

It is patently obvious that consumers are not only the largest economic group but also the pivots of all the economic activities. It is also true that the very consumers are the most unaware or voiceless group in most of the countries of the world. There are plethoras of laws and other mechanism to ensure the welfare of consumers, yet they have no power to order where he can make his purchase at will. Instead, whenever he turns he sees only a seller's market. The seller's attitude towards consumer is also of "take it or leave it." The Indian consumer is well aware that all is not well with its world today. Food adulteration is graving fast. He is never sure that he receives correct weights and measures, so many and so ingenuous are the ways used to cheat him. Prices keep rising and in times of shortage, profiteering takes place. As for rations, they are also of low Quality. Every individual is a consumer and he affects and is affected by almost every private and public economic decision. Modern business is described as consumer oriented and business-men study the needs and preferences of consumer to produce and supply goods according to their changing demands. Yet the consumer finds himself subjected to all kinds of exploitation. Consumers are constantly afflicted by shortages of essential items, adulterated products, manifold problems associated with a public utility services and variety of deceptive practices adopted by our business. However, they do not find voices rising in protest but continue to suffer in silence. Hence a heavy responsibility rests on the government on one side and Industry on the other. The industry and business circles should realize that consumer preferences are already appearing on the horizon in many of the metropolitan areas and it may not be very far into the future before consumer bodies in India gain the same level of strength as in other countries, to control the quality, reliability and durability of the various products in the market. Before such development hits the manufacturers of substandard goods affecting their existence, they should take timely action to protect them. The first and foremost step for every manufacturer is to incorporate the concept of quality right from the stage of research and development, carrying it forward into design and engineering and all further stages till the product is finally tested and marketed. As in the other countries, design concept should cover quality, round operation, easy maintenance, safety of the user as well as the equipment, utility, convenience in handling, economy appearance and good-looks. In other words, the design should essentially be consumer oriented with a view to give full satisfaction. Consumer Protection Act, 1986 i.e. an act to provide for better protection of the interest of consumers and for that purpose to make provisions for the establishment of consume councils and other authorities for the settlement of consumer's disputes and for matters connected therewith. But no respondent was fully aware about the contents, benefits and protection provided by the act, to safeguard their interest; they only knew that the act was incorporated to protect them from the authorities of shopkeeper, trader or manufacturers. We can conclude that very few consumers were fully aware about the rights, responsibilities and Consumer Protection Act. Hence, it is necessary to educate them on their rights and responsibilities as consumers, to make them vigilant, rational and aware buyers.

Suggestion:

Educate consumers to develop an understanding about their responsibilities as consumers. Consumer should organize together to develop

the strength and influence to romote and protect their own interest. Government should make and implement rules of punishment more harsh so that manufacturer and shopkeeper think twice before adopting fraudulent practices. A campaign should be set in motion to involve each and every consumer for making them more conscious and aware of their right and responsibilities. Government and other consumer agencies should make efforts in the direction of propaganda and publicity of district forum, state and national judiciary established for consumer protection so as to make more and more consumer aware about machinery for their greater involvement and to seek justice in case of grievances. Redress procedure should be made more logical, easy enough to be understood by a large number of consumers. Further procedures shall so designed as to have easy handling and quick disposal of cases.

Consumer protection is always a matter of great concern. In ancient India, effective measures were initiated to protect consumers from crimes in the market place. Ancient law givers ably described various kinds of unfair trade practices and also prescribed severe punishments for wrong doers. Mainly, acts of adulteration and false weights and measures were seriously dealt with. In ancient India, the king was the supreme authority to render justice, but his authority was circumscribed by the rules of *Dharma*. In the medieval period, some Muslim rulers developed well organized market mechanisms to monitor prices and the supply of goods to the markets. During the British period, the modern legal system was introduced in India and many laws were enacted to protect the interests of consumers generally. Today, the civil justice system is tainted with deficiencies that discourage the consumer from seeking legal recourse. However, the Consumer Protection Act of 1986, which provides easy access to justice, has brought a legal revolution to India as a result of its cost-effective mechanisms and popular support. At the same time, these mechanisms pose a great legal challenge to the traditional courts which conduct litigation in orthodox ways. In this age of consumers, the regime of Indian consumer law will undoubtedly rule Indian markets and bestow a new phase on the existing Indian legal structure with its strong ancient legal foundations.

References

1. *Dr. V.K.Agarwal, Consumer Protection Law and Practice: A Commentary on the Consumer Protection Act, 1986, 6th Ed.,New Delhi: B.L.H Publishe.*
2. *Avtar Singh, Law of Consumer Protection (Principles and Practices) (4th edition, Eastern Book Company).*
3. *F. Verma, 'Legal Charisma behind delayed redressal', Consumer Network, 1995, 2(3):3.*
4. *Marc.Galanter, Law and Society in Modern India 15 (1997).*
5. *F. Jhanwar, Consumer Protection: Today, Need, Fight for Right, 2003.*
6. *F Sinha, M.N. Consumer movement in India, Keemat, 2002.*

Gender difference in teacher effectiveness of trained graduate teachers

Dr. Ajay Kumar Attri
Assistant Professor ,ICDEOL, Himachal Pradesh University, Summerhill (Himachal Pradesh)

shodhshree@gmail.com

A lamp has the unique quality of being able to light another lamp without losing any of its own brilliance. If one looks at the extended and expanded role played by the teacher today, then one can definitely appreciate the truth of the above. From time immemorial the member of the teaching community are considered the most important members of the society, as they are responsible for the most treasured of all the resources - the human intellect. Holding the fortunes of other individuals, the society and the civilization in their palms, the teachers have achieved a unique position not only in this country and culture, but in societies all over the world. Therefore there stands a special and important place for the teacher in society as well as in an individual heart at the same time; the effectiveness of the educational system largely depends upon the active, resourceful and competent teachers. An effective teacher not only imparts the entire educational curricula allotted to his in the best and most efficient manner but also ensures the optimum development of the students. In today's scenario where there is fierce competition in all spheres of life, effectiveness of the teachers becomes imperative to empower the students to face global challenges. Effective teaching is a par excellence attribute of quality education. There are many factors, which influence the effectiveness of the teacher viz. intelligence, attitude towards teaching, experience, academic qualification, personality, mental health etc. (Ragu, 1994). The secondary educational commission (1952-1953) has rightly stated: we are however convinced that the most important factor in the contemplated educational reconstruction is the teacher, his personal qualities, his educational qualifications, his professional training, and the place that he occupies in the school as well as in the community.

To assess the teacher effectiveness in terms of his characteristics personality, attitudes etc.), process (teacher pupil interaction etc.) and production variables (outcomes of teaching learning process), five areas were used viz. Preparation and Planning for teaching, Classroom Management, Knowledge of Subject matter, its delivery and presentation, Teacher Characteristics and Interpersonal Relations. These areas cover all the functions of a teacher. A brief description of these five areas is given below:

- Preparation and Planning for Teaching: This area includes the ability of the teacher in preparing, planning and organizing for teaching in accordance with the course objectives by using different material.
- Classroom Management: This area includes the ability of the teacher to successfully communicate, motivate the students and evaluate the teaching learning process and also to maintain discipline in the classroom within the framework of democratic set-up.
- Knowledge of Subject Matter; its Delivery and Presentation including Black Board Summary: This area includes the ability of the teacher in acquiring, retaining, interpreting and making use of the contents of the subject he/she is dealing within the classroom situations. Delivery of course contents and its presentation including Black Board summary constitute essential aspect of the teaching-learning process.
- Teacher Characteristics: This area refers to the personality make-up of teachers and its behavioural manifestations that have their own level of acceptability or unacceptability in the teaching profession. Ability to arouse 'A Perceptive Mass' and seeking active participation of pupils, constitute essential demand characteristics of effective teacher.
- Interpersonal Relations: The ability of the teacher to adopt himself/herself to maintain cordial relations with his/her colleagues, pupils, their parents and other persons in the community with whom he/she is to interact as part and parcel of his/her profession form the basis to this area.

Vijaylakshmi (2004) studied the influence of personal variables (Age, Marital Status, sex) and professional variables (Experience, qualification, subject of teaching, designation, level of college type of college management) on the teacher effectiveness and work orientation of 220 teachers working in junior colleges, degree colleges, and professional colleges of Viziangaram district of Andhra Pradesh. Results showed that there was significant difference between the teachers up to 35 years and above 35 years of age, married and unmarried, teachers with different designation and working in junior and degree colleges with regard to their teaching effectiveness. Amandeep and Gurpreet (2005) conducted a study of teacher effectiveness in relation to teaching competency. The results reveals that female teachers are more effective in their teaching than male teachers; male and female teachers do not differ significantly as far as their teaching competency is concerned; and variable of teaching competency plays significant role in teacher effectiveness of teachers. Bansibihari and Surwade (2006) in their study on effect of emotional maturity on teacher effectiveness found that female teachers were emotionally more mature than male teachers and emotionally more mature teachers were more effective. Cheung (2008) conducted a study entitled, A Comparative Study of Hong Kong and Shanghai Primary In-service Teachers on their Teacher Effectiveness. The teachers from Shanghai proved to be more effective in those factors such as relationship with students and parents and possessing good communication skills. Lew (2010) revealed that experienced teachers who are recognized as effective constructivist teachers performed much better than new teachers in most of the sub-categories of constructivist approach. Riti (2012) found no significant difference in the teacher effectiveness of male and female teachers. Aggarwal (2012) conducted a correlation study of teacher effectiveness and job satisfaction of higher secondary school teachers. The study concludes that all types of government school teachers are endowed with more teacher effectiveness than all types of aided and non-aided school teachers. Ramesh and Sharmini 2012 found a better understanding of experiential learning would allow curriculum planners and implementers of teacher education programmes to come up with ways to increase the teaching and learning experiences of teachers. Pretorius 2012 found that if teachers are to be effective their initial training will have to be effective. Covering the curriculum, structuring of content, appropriate pacing and alignment, clear goal setting, clarity of content and presentation, are a few requirements for effective teachers which have direct implications for teacher education.

Need And Significance of The Study

Teachers are the driving force in improving quality of education. As teachers play an important role in school progress, we cannot overlook their contribution to decision-making. The teacher holds the most important place in the process of education. So, there exists a greatest need for the teacher to be effective. This area of teacher effectiveness draws a keen interest of educationists and researchers. The teacher effectiveness has been studied in relation to various teacher related variables. There may be many others factors also which may have a definite impact on teacher effectiveness. Teacher qualification and experience can be among those factors. The results of this study can be of great importance and far reaching the implications to improve the overall school practices.

Method

Since, the aim of the present study is to find out the present status of teacher effectiveness of trained graduate teachers so in view of the objectives of the present study, descriptive survey method of research was used.

Sample

Sample of 143 Trained Graduate Teachers of Secondary Schools of Mandi District was taken; out of which 78 were Male Trained Graduate Teachers & 65 were Female Secondary School Trained Graduate Teachers. Schools were selected conveniently and Trained Graduate Teachers from these schools were selected using Cluster Sampling Technique.

Tool Used

Teacher effectiveness scale developed by Dr. (Mrs.) Umme Kulsum (2000) tool was used by the investigator for the present study. In this scale five areas of teacher effectiveness were: (1) Preparation and planning for teaching, (2) Classroom management, discipline, motivation, interaction, evaluation. (3) Knowledge of subject-matter its delivery and presentation including B.B. Summary. (4) Personality characteristics of teachers, and (5) Inter-personal relations of teachers with others. These five areas cover all aspects of teachers' functions and have the merit of adequate conceptual framework, validity and reliability.

Statistical Technique Used

In the present study investigator was concerned with finding out the gender difference in Teacher Effectiveness of trained graduate teachers , so statistical technique 't'-test was used by the investigator for analysis of the data.

Analtsis And Interpretation Of Data

Area wise and overall difference in teacher effectiveness of male and female TGTs was analyzed by using 't' test. The result of 't'-test with regard to teacher effectiveness of male and female TGTs are shown in table1

Table 1

Difference in Teachers Effectiveness of Male and Female Trained Graduate Teachers (TGTs)

Areas of Teacher Effectiveness	Male TGTs N=78	Female TGTs N=65	't' value
Preparation and planning for teaching (A)	M=77.22 S.D= 13.411	M= 78.20 SD= 13.295	0.438 NS
Class Room Management (B)	M= 100.60 S.D= 17.645	M=98.89 SD= 16.031	0.601 NS
Knowledge of Subject Matter: its delivery and Presentation (C)	M = 56.10 S.D= 9.075	M= 55.20 SD. 10.427	0.553NS
Teacher's Characteristics (D)	M= 121.33 S.D= 19.744	M=119.98 SD= 20.503	0.400 NS
Interpersonal Relations (E)	M=74.06 S.D=19286	M=70.52 SD= 15.535	1.192 NS
Overall	M= 428.32 S.D= 71.304	M= 421.74 SD= 72.471	0.546NS

NS = Non-significant

It may be seen from table 1 that there exist no significant difference in means scores of male and female TGTs on overall, preparation and planning for teaching, classroom management, knowledge of subject matter, teacher's characteristics and interpersonal relations areas of teacher effectiveness i.e. male and female TGTs have almost similar teaching effectiveness.

Educational Implications of The Study

School effectiveness research shows that teacher effectiveness is the single most important school-based factor in student success. Education systems, such as the Indian system, which grapple with large numbers of dysfunctional schools, should look anew at teacher effectiveness in all school phases. The urgent need for highly effective teachers in every classroom requires that education systems develop a comprehensive definition of teacher effectiveness and create

training programmes to develop it. If teachers are to be effective their initial training will have to be effective. These indicators are broad guidelines for schools of education to stimulate teacher education reform. Preparation and Planning for teaching, Classroom Management, Knowledge of Subject matter, its delivery and presentation, Teacher Characteristics and Interpersonal Relations, are a few requirements for effective teachers which have direct implications for teacher education.

References

1. *Aggarwal, Shweta (2012). Correlation study of teacher effectiveness and job satisfaction of higher secondary school teachers. Edutracks. 12 (2).*
2. *Amandeep and Gurpreet (2005). A study of teacher effectiveness in relation to teaching competency. Recent Researches in Education and Psychology. 71(6) pp. 137-140.*
3. *Bansibihari Pandit, Lata Surwade (2006). The effect of emotional maturity on teacher effectiveness. Edutracks. 6 (1): 37-38.*
4. *Cheung, Hoi, Yan (2008). Teacher efficacy : A comparative study of Hong Kong and Shanghai Primary in-service teachers, the Australian Educational Researcher. 35(1): 103-123.*
5. *Douglas N. et al (2007). Models and predictors of teacher effectiveness: A review of the literature with Lessons from (and for) other occupations.*
6. *Koul, Lokesh (2009). Methodology of Educational Research. New Delhi, Vikas Publishing House Pvt. Ltd.*
7. *Kulsum, Umme (2000). Kulsum Teacher Effectiveness Scale. New Delhi: Psycho-Educational Testing Centre.*
8. *Lew, Lee, Yuen (2010). The use of constructivist teaching practices by four new secondary Science teacher : A comparison of new teacher and experience constructivist teachers, Science Educator. 19 (2) : 10-21.*
9. *Pretorius, S.G., (2012). The implications of teacher effectiveness requirements for initial teacher education reform. Journal of Social Sciences, 8(3): 310-317.*
10. *Ragu, D.V.V.K (1994). A Study of Teacher's Stress in Relation to Teacher Effectiveness and Attitude. Unpublished Ph.D Thesis.*
11. *Ramesh, R. and G. Sharmini, 2012. Enabling critical learners and teacher trainees via experiential learning. Journal of Asian Scientific Research, 2(9): 491-503.*
12. *Riti (2012). A study of teacher effectiveness in relation to school organizational climate and administrative behaviour of school heads of Himachal Pradesh, PhD. Thesis in Punjabi University Patiala.*
13. *Vijaylakshmi (2004). Impact of some personal and professional variable on the teacher effectiveness and work orientation. Recent Researches in Education and Psychology. 9 (I-II).*

Shodh Shree

(International Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

ISSN 2277-5587   RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Subscription Form

Name ....

Designation ....

Name of Organization ....

....

Address ....

....

District ....

State

....

Pin ....

Tel. No. (R) ....

Mobile ....

e-mail ....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April , July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	Virendra Sharma, OBC Bank, Adarsh Nagar, jaipur SB A/C No. 06722151002965, IFSC Code ORBC 0100672, MICR Code 302022005 Subscription Fees 1200 Rs (For Individual and Institution)

Membership No. .... Date ....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I...

hereby declared that the paper entitled'...

......................................'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with..

....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature ....

Name ....

Designation ....

Official Address ....

....

Residential Address ....

....

....

Phone No. .... Pin No. ....

e-mail Address ....

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.
2. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.
3. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.
4. Maximum word limit of research paper up to 1500 words.
5 Special care should be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper otherwise it will not be accepted for publication.
6. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.
7. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.
8. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail:shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

To,

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54–ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर–302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।
मुद्रण स्थल आकृति एड्वरटाईजर्स, जयपुर